"ॐ श्री परमात्मने नमः"

श्रीमद् भगवद् गीता

संस्कृत श्लोक्यि कोंकणि भाषांतर्यि मेळनु



कोंकणि भाषा प्रचार सभा

कोचि - 682 002



"ॐ श्री परमात्मने नमः"

श्रीमद् भगवद् गीता

(संस्कृत श्लोक्यि कोंकणि भाषांतर्यि मेळ्नु)



भाषांतरकार

विजया राजकुमार प्रभु
वैक्कम्।

प्रचोदन्

माता, पिता, गुरु, देवु।

Sreemad Bhagavad Geetha
"Samscritha Slokeyi Konkani Bhashanthereyi melnu"
(Konkani)

Translator : Vijaya Rajakumar Prabhu

Konkani Bhasha Prachara Sabha
Publication No. 36

Publishers : Konkani Bhasha Prachara Sabha,
Konkani Bhasha Bhavan,
Palace Road, Cochin - 682 002,
Phone: 0484-2227479

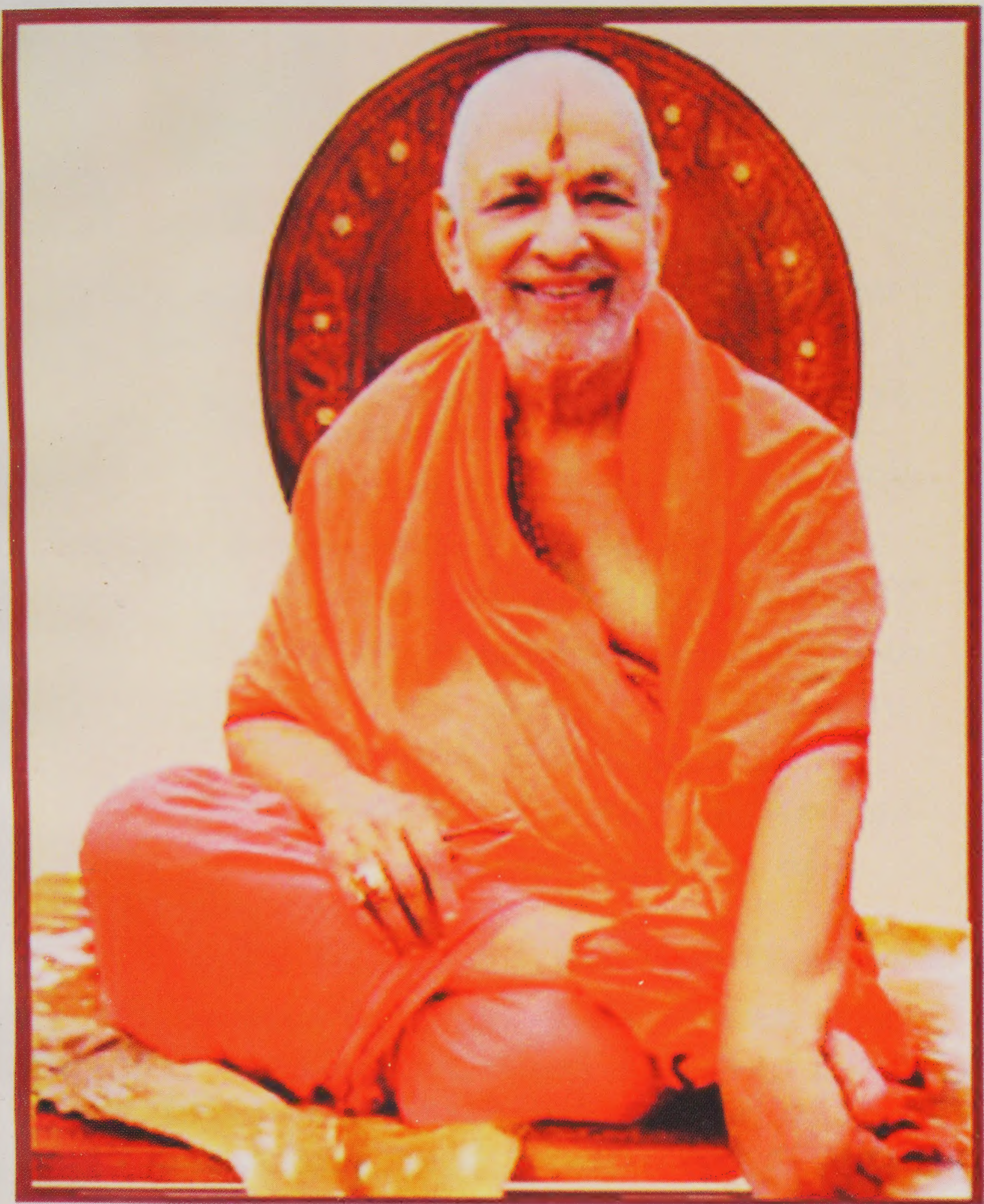
First Edition : 2017

Copies : 500

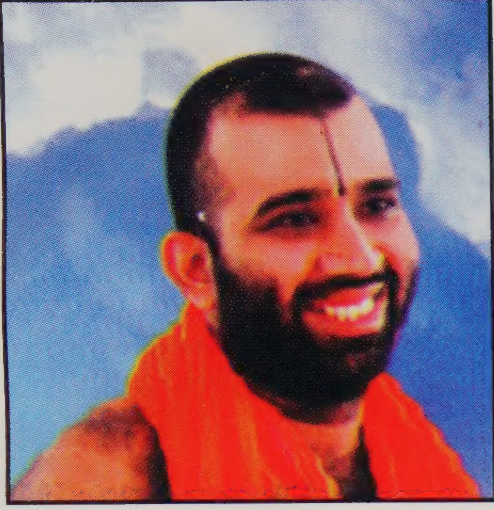
Printed at : Amara Kerala Industries,
Kalabhavan Road,
Ernakulam, Kochi-682 018

Copies available at : Konkani Bhasha Prachara Sabha

Price : ₹ 200/-



काशीमठ् संस्थानाचे मठाधिपति वृन्दावनस्त श्रीमद् सुधीन्द्र तीर्थ स्वाम्यांगेले चरणकमलांचेरि सहस्त्र प्रणाम्।





H.H. SHRIMAD SAMYAMINDRA TIRTHA SWAMI

MATADHIPATHI OF SHREE KASHI MATH SAMSTHAN, VARANASI

Camp : Sri Kashi Math ~~Ambalamedu~~ Date : 17-06-2016 ~~Ref 298~~

Blessings to our beloved disciple Vijaya Rajkumar Prabhu of Vaikom with Meditations of Lord Sri Narayana.

We are in receipt of your Vinanti Patram dt. 16-06-2016 and glad to note that you are publishing "Shrimad Bhagavadgeeta" in Konkani Language and received Kanika of Rs 1001/- by cash.

With Prayers to Shri VyasaRaghupathi for the success in your endeavours and to have enlighten and for Shri Hari seva bhagya to the readers and also for the welfare and Prosperity of you and your family, we are sending our blessings along with Shrigandha Prasad akshatham.

[signature] Swami



V.S.D. VADHYAR
Purohit & Astrolager
Vadhyar Madom, Thazhathangady P.O, Kottayam -5
Mob : 9447156656

Date 26/9/2016

शुभाश्म्स



वेग्ग्ळे समुदाय्यि जावुनु सहकारु च्ड् चोम्कुचे ये सन्दर्भारि अम्गेले भाषेक् प्रचारु ऊणे जावुनु एत्ता अस्स्। त्शिश अस्सिल्ले वेलेरि श्रीमति विजया राजकुमार प्रभुन् श्री भगवत् गीते पस्सून् एक् विवर्त्तन् भाषेक् जाम्का एश्शि ह्मोणु चिन्तन् केल्लेने, भारी महत्व् जावुनु अस्सिन्ने कारण्चि। तज्जे निमित्ती मुक्कारि एम्चे अम्गेले परम्बरेक् भाषाज्ञान् अनीक् सामूहिक ज्ञान् उत्तम जीवित मार्ग्ग् मेळ्ता। गीते पस्सून् वेग् वेगले भाषेन् विवर्त्तन् अस्स्। जल्यारि मातृ भाषेन् केल्लोलो यो सम्रंभु महत्व्चि त्। तंगेले ये प्रवर्त्तनाक् जीवितांतु सग्गले हरि गुरु कृपा कडाक्ष् जाव्ंका ह्मोणु प्रार्थन कोर्नु शुभाश्म्स कर्तायि।

वि-एस् देवानन्द वाद्धार (कोटयम्)
सेकृटरि
जि-एस्-बि- वैदिक सभ
(गौड सारस्वत ब्राह्मण वैदिक सभ)
अम्बलमेड्-कोच्चि।

Phone : 0484 - 2227479



KONKANI BHASHA PRACHAR SABHA
(Regd. under the Travancore - Cochin Literary, Scientific & Charitable Societies' Registration Act. XII of 1955 S. No. ER 32 of 1966)
(A Literary Institution in Konkani recognised by Sahitya Akademi, New Delhi)
KONKANI BHASHA BHAVAN
PALACE ROAD, COCHIN - 682 002.

Ref. No. .... Date ....



प्रस्थावना

केरळान्तुले वैकं ग्रामान्तु वासु कोर्नु एंव्चि श्रीमति विजया प्रभु श्री एन्.आर. प्रभूलि बाय्ल् ती जन्मली चंङनाशेरि ग्रामान्तु एकसास णौशि एकुन्पन्नास कृस्तुवर्षा फेब्रवरि दोनि तारिखेक श्रीनिवास पै-पदमावतिऽमम दम्बतींक् जनन घेत्तल्लि, ती पांबाडि संस्कृत काळेजान्तु शिकीलि। कालिकट विश्वविद्यालयां थकून् बि.ए. बिरुद मेळ्या। नन्तर को-ओपरेषनान्तु जूनियर डिप्लोमा प्राप्त जले। त्या नन्तर केरळा स्टेट् को-ओपरेटीव् अग्रिकळचरल् अनी रूरल डेवलपमेण्ट् बेंक, लिमिटड् तिरुवनन्दपुरम् तंन्तु असिस्टेन्ट मानेजर जाव्नु कामकोर्नु सेवांथकून निवृत्तजली।

तिणे बरैलेले असा निबंद। वैषणवरत्त् मासिकेन्तु बरैलेले निबन्दाक दोनि इनाम मेळे असा।

बेंकाचे निबंधलेखन बरौचेस्पर्धेन्तु इनाम् मेळ्याअसा। ओल् इन्डया रेडियो आकाशवाणीन्तु दिल्या असा निबंद लेखन विविद विषयान्तु अनेक वेळारि अनी ते तिरुवनन्दपुरम् आकाशवाणीचेरि वितरण् केल्या असा।

तिक्का असा दोनि चलीयो वोडली ती करनाटिक संगीतज्ञा। नाव तिजे प्रिया आर.पै. अनी दुसरी ती प्रवीणा संतेषनायक, इंनजिनियर जाव्नु कामकर्ता बोष् कंपनीन्तु कोयंबतूरान्तु। श्रीमति विजया प्रभूलो भरतारु सरकार सेवनेंथकून निवृत्तजलो।

तिरुवनन्दपुरं सोडल्या नन्तर ती अनी तिजो भरतारु अतं वैकं ग्रामान्तु राबप्केले असा आट् वर्ष जल्या।

श्रीमति विजया प्रभु संस्कृत भास शिकिल्या असा। तिका संस्कृत भासेचेरि अतीव प्रीति वडला। तिका महाभारतान्तुले मधे जाव्नु आसचे भीष्म पर्वान्तु वेदव्यासान बरैलेले श्रीमद् भगवदगीता संस्कृतांथकून कोंकणीन्तु रूपान्तर अर्थात् भाषांन्तर करचाक इच्छा अयली। तीणे ते कोंकणीन्तु भाषांतरकेले। ते असा देवनागरि लिपीन।

देवनागरि कोकणीचि यथार्थम्हळ्यारि निज लिपि जाव्न असा। ते अंका कळता "होरतस् इन्डिकस् मलबारिकस्" औषधी विषयान्तु रंगभट्, विनायक पण्डित अनी अप्पुभट तनी बरैलेले साक्ष्यपत्र कोंकणीन देवनागरि लिपीन असा ते कोचि डच गवरणर हेनरिक्वान् रीड् हनी बरा रवंड पुस्त जाव्न प्रकाशित कले एकसास ससि आठसष्टि कृस्ताब्दान्तु। ते प्रथम देवनागरि "बळोक् प्रिन्ट्" छापिले जाव्न असा। मराठि गुजराति हिन्दी भाषेक देवनागरि लिपिन छापिले पयले जाव्न आसा कोंकणीन्तु छापिले। कोचि टि.डि. प्रैमरि शाळेन्तु कोंगणी एक पाठ्य विषयाक जाव्न केरळ सरकारान् दिलेले आज्ञान्तु बारा आगस्त् एकसासणौशि अठसष्टि कृस्ताब्दान्तु सांगिल्या असा "कोंकणी भाषेक लिपि आसा ती देवनागरि"। देरवून भगवतगीता कोंकणीन्तु अणकार अर्थात भाषांन्तर कोरचाक देवनागरि काडिल्यान ते योग्य जाव्न असा। कित्याक म्हळ्यारि कोंकणीचि लिपि असा देवनागरि। भगवत् गीता बरैलेले संस्कृतान्तु देवभाषेन अनी लिपि ती देवाले नागरीन। कोकणीन्तु भांषान्तर करचाक देवनागरि काडिल्यान ते योग्य स्थानारि असा। संस्कृत श्लोक अनी कोकणीन्तु परिभाषा देवनागरीन बरैलेले हस्थ लिखित पुस्तक मका बरौपि श्रीमति विजया प्रभून दोनसास सोळा कृस्तब्द एप्रिल चोविसा दिवसा दिल्या अनी "आमुख" बरौचाक विनंति केल्या। पुस्तक पळैल्यान श्रीमति विजया प्रभून "आमुख" बरैलेले जाव्न असा। ते बरो रूपान तिजे आमुख बरैलेले असा। देखून हावे आमुख बरौचे उचित जायना। तिणे दिलेले अभ्यर्थन मानून प्रस्थावना दिता।

प्रस्थावनेन्तु मका संगचाक असा श्रीमति विजया प्रभून बरैलेले असा या प्रकारि" अम्का भारतान्तु मात्रनयि भायर गावांन्तुयि आसिले अंगेले गौडसारस्वत ब्राम्हिन् जनांक्यि गीता कोळका। तेबगेक गीता वचून अयकून मनांकोरूक् अवसर मेळका। अर्जुनाक देवान दिलोलो उपदेशु कोंकणीभास उलोंचे सर्वैजनांकयि प्रयासु नत्तिले ओगि अंगेलि भास्सेन मन्नांकोर्नु सर्वै जनांलेय् मन्नांतु एक सनू उजवाडु हाडूक् जांका म्होणु आग्रह पावुनु सत्शि अनी एक श्लोक्यि कोंकणी भासेन (देवनागरि लिपीन) भगवत गीता विवरण केल्या। ए कैर्याक देवालेय् कोङकणि भाषास्नेहसिले सर्वालेय् अनुग्रहस्तोलो "(यो उपदेशु देवालुपदेशु सर्वांलेयि मन्नान्तु एकु उजवाडा धारा जावनु रब्बून तंगेल जीवितान्तु समाधान अनिक सम्तोषु हाडूक् प्राप्त् जत्तले म्होणु प्रत्याश कर्ता)" ये तीणे बरैलेले प्रारंबारि खरे जाव्न असा।

तीणे श्लोकांतु संगूचो विषयाचो विवरु दिल्या असा आनी ते एकेक अध्यायाचे। अध्यायु एक अर्जुन विषाद योगु असा। तन्तु एक एक श्लोकाचे विवरण दिल्या। तशि आषा अध्यायाचे विवरण दिल्या। श्रीमत् भगवत् गीतेचे ध्यान संस्कृत श्लोकान आसिले कोकणीन अर्थु सहित विवरण केल्या। त्या उपरान्ते भगवत गीतेचे अध्यायाचे संस्कृत श्लोक सहित कोकणीन पूर्ण रूपान ताचे अर्थु दिल्या। जनाक किते ते श्लोकान्तु सांगिल्या असा म्होणु दिल्या असा। श्लोकान्तुले संस्कृत पदांक युक्त जाव्नु कोकणीन त्या पदांचे अर्थु दीव्नु जनाक संजूचाक जव्चे म्हण्कि बरैलेले असा। ध्यानाचे असा श्लोक सात अनी ताचे अर्थ कोकणीन पदानुक्रमान दिल्या। देरवून श्लोकाचे अर्थु वाचप्यांक जाण जावप् जत्तले।

कोंकणी भाषे विषयान्तु एकेक प्रदेशान्तु एक एक शैलीन उलैयतात। गोय कोंकणीचे मूल केन्द्र। जल्यारि गोयान्तुली कोकणी प्रमाण कोंकणी म्होणु अतं संगचाक जायना। फिरंव्याले आक्रमणान कोकणी लोक गोय सोडून धर्म रक्षणेरवतीरि केरळ, करनाटक, महराष्ट्र इत्यादि प्रदेशान्तु देशांतर जाव्न रबले। गोयान्तु फिरंग्यानि कोंकणी उलोव्चे एक कालाक

निषेधुकेलो हिन्दु लोकानि भास मराठि म्होणु सांगिले। कुस्तमाचानि उलोव्चे पोर्तुगीस म्होणु सांगिले। तशि कोंकणीक कायी राज्याचो आश्रय, अथवा अंगीकार न जलो। गोय स्वतंत्र जल्यानन्तर कोकणीचे विकासाक राजाश्रय मेळो, राजभासजली अनी साहित्य वाडले। जल्यारि प्रमाण कोकणी म्होणु सांगचाक जायना। उदाहरण जाव्न कोचीन्तु "करचाक" (todo) म्होणु उलोव्चे, भाषण करचे, गोयान्तु "करपाक" म्होणु उलेयतायि। जल्यारि साळावे शतमानान्तु गोयचो कृष्णदास शामान बरैलेले रामायणान्तु "करचाक" म्होणु बरैलेले असा। देरवून केरळान्तु उलोव्चि कोंकणी अशुद्ध म्होणु सांगचाक जायना। केन्द्र साहित्य अकादमीन मानून गेतिलेअसा कोकणी विषयान्तु अनी निर्णय केल्या कोकणी जनानि बरोव्चि कोकणी तेते गावान्तु तांग तांगेले शैलीन बरोव्चे जाव्यात। देखून् श्रीमति विजया प्रभून बरैलेली कोंकणी भास तीणे बरैलेलि शैलि त्या रूपान असचे योग्य जाव्न असा। मलयाळि भासेचो प्रभाव सोंगूचे प्रकारि ना म्होणु सांगूचात तरि असा जल्यारि ते भारी उणे। देवनागरीन बरैल्यान केरळान्तुले सर्वै विभागान्तु आसिले, करणाटकान्तु, गोयान्तु, महराष्ट्रान्तु अनी इतर प्रदेशान्तु आसचे जनाक वाचून संजुचाक जत्तले म्होणु हाव निश्चित कर्ता अनी अतं श्रीमति विजाप्रभून बरैलेले श्रीमत् भगवतगीता श्लोक संस्कृतान आशिले अनी त्या श्लोकांचे कोंकणीन संस्कृत पदांचे अनुवाद (अणकार) केलेले अर्थ सहित असा। बरो रूपान जनाक संजूचाक जाव्नु एकेक अध्याय भगवत गीतेन्तु असूचे संस्कृतान्तु आसिल्या त्याचि मण्कि बरौनु अनी पदांचे अर्थ कोकणीन्तु भाषांन्तर कोर्नु बरैलेले लायक जाव्नु असा।

तशि तीणे आष अध्याय सतशि श्लोक भगवत गीतेन्तुले कोंकणीन्तु अर्थसहित संस्कृतान्तु असूचे श्लोक योग्य रूपान बरैलेले जनाभितेरि भक्ति वडतली अनी तीणे केलेली कोकणी मात्रु भाषेचि सेवा अमूल्य जाव्नु असा।

अंतिमेरि मका एक सांगचाक असा कोकणी भाषेचेरि प्रेम आसिले जनानि श्रीमति विजया प्रभून वोडलो प्रयत्नु काणु बरैलेले श्रीमत् भगवत्

गीता संस्कृत श्लोकय् अनी कोकणी भाषांन्तर देवनागरीन तयार कोर्नु प्रकाशित केलेले पुस्तक सर्वै कोकणी प्रेमियानीयि प्राप्तकोर्नु जीवित सफल कोरका म्होणु विनंति कर्ता।

देवान श्रीमति विजया प्रभूक अनी तिजे कुडुंबान्तुले सर्वांकायि अभिवृद्धि अनी विजयप्रद करचाक जाव्नु देवालगि प्रार्थना कर्ता।

म्होणु

मेमासु
5-5-2016

एन पुरुषोत्तममल्या
पद्मश्री अवार्डी
कार्यदर्शि
कोकणी भाषा प्रचार सभा
कोकणिभाषाभवन
कोचि 682 002
अनी
अध्यक्षु, गौडसारस्वत ब्राह्मण
महासभा-केरल.





आमुख्

जनांक् समाधान् मेळ्नु चांग् मार्ग्गारि मुक्कारि वचाक् म्न्नांतु द्रढ् विश्वासु दिस्सोंचो एाकु प्राथान्य्ऽस्सिल्लो महत्ग्रन्थु त् श्रीमद् भगवद् गीता।

अंम्गोलेंक् मात्रनयि लोकांतूले जनाक् सर्वै विनय्, श्रद्ध, विश्वासु, परस्पर स्नेहु, बहुमानु, सत्य्, नीति, धर्म ये सर्वै आजि ऊणे जावुनस्स्। त्रिश जन् दुसर् जनाम्क् (एळ्त-पेळ्तांतु) द्रोहु दिंचांतु सम्तोषु पावुनु स्वय् आत्म नाशु कर्तायि। परस्पर मार्नु दुख् पम्तायि। ये सर्वै कष्टाम्तु थकूनु एाक् मोचन् मेळूक् अम्का आजि अस्सिल्ले होळ्ळे एाक् भाग्य त् "श्रीमद् भगवद् गीता"। महाभारत युद्धारम्भारि स्वन्द बन्ध जनाम्क् दिक्कूनु म्न्यि देहय् कड्कडे्वुनु तेरारि बेस्सल्ले अर्जुनाक् साक्षात् श्रीकृष्णान्चि उपदेश रूपान् दिल्लोलो उज्वाडु, मनोथैर्य् सर्व प्रकारानियस्सिल्लो विवोरु आत्मावूयि शरीरयि इत्तिकी, क्शिकी ह्मोणूयि तें सर्वै क्शि जल्लें ह्मोणूयि, स्वन्द बन्ध इत्तेह्मोणूयि अम्मि कोण् देवु कोण् ह्मोणूयि सर्वै भोल्लोलो एाकु जाम्काजल्लोलो (अम्गोले घरांतु जाम्का जल्लोलो) ग्रन्थु त् श्रीमद् भग्वद्गीता।

कौरवालग्गि च्यूतु खेळ्नु हर्वल्ले पाण्डवाङक् तज्जि शिक्ष जावुनु कौरवानि वाश्दिोर्नु वनवासाक् पेटेयिलि। थम्गा (तेकालाक्) पाण्डवाङक् फले रूपाचे धर्म सङकडाम्तु पोडुका जल्ले। जलयारि तम्गोले सत्य् धर्म्, नीति, दैव भक्ति, द्या ये सर्वै भोर्नऽस्सिल्ले चांङग् गुणंचे जीवितान् "देवान्" तंक सर्वांतूयि विजय्यि समाथान्यि सम्तोषूयि प्रदान् केल्लो।

वनवासु जावुनुगावांतु एय्लेले पाण्ड्वाङक् घराम्तु चोडोंचाक् (कूटांतु रब्बोम्चाक्) कौरव् तय्यार न्यि जल्ले। मात्रन्यि तंका (पाण्डवाङक्) अवकाशु जावुनऽस्सिल्लो गांवु प्र्म्, घर्, थन् कांई पुणै दिम्चाक् कौरव् तय्यार न्यि

जल्लि। साक्षात् श्रीकृष्णान् माध्यस्त् दोर्नु कौरवालग्गि निम्गीले-"पाण्डव् तुम्गेले स्वन्त् बाव् त्। तङकायि अर्हत् जावुनऽस्सिल्ले मेलुकाजल्लेले थन्, गाँवु घर, सर्वै तुम्मि दींक"। जल्यारि कौरव् ये बगेक् तय्यार् न्यि ह्मोणु देवालग्गि संगीने। तेवेलारि- एक् घर् पुणै तंक (पाण्डवाङक्) दी ह्मोणु श्रीकृष्णन् कौरवालग्गि निम्गीने तेवेयि कौरवानि दिम्ना ह्मोण् सङगीने। ये त् चरित्र प्रसिथ्थ् जावुनऽस्सिल्ले (१८-आषा दिस्स चंकिल्ले) पाण्डव-कौरव युद्धाक् प्रथान कारण जल्लेले।

सत्य्, धर्म्, भक्ति, मनुष्, पकृति, कर्म्म कर्म्मफल्, यझ, जनन् मरण्, शरीर, आत्मावु, (एक् मनुष्याक् अजीयि केदनायि जीविताक् जांका जल्लोलो चांग् विवोरु मार्ग्ग् अस्सिल्लो) एश्शि सर्वै प्राथान्य् दीवुनु अस्सिल्लो उपदेशु श्रीकृष्णान् अर्जुनाक् दीवुनु कौरवालग्गि युद्ध कोरूक् अर्जुना मन्नांतु द्रढ् जावुनऽस्सिल्लो एकु उज्वाडु दिल्लोलो महाभारतांतु म्ह्दे "श्री व्यास महर्षीन्" निबन्थन् केल्लेले त् "श्रीमद् भगवद्गीता"।

आजि इङग्लीषान्यि, हिन्दीन्यि संस्कृतान्यि मराटीन्यि मलयालान्यि एश्शि जैते भस्सेन् लोक प्रसिद्ध जावुनऽस्सिल्ले भगवद्गीत अस्स्। जल्यारि अम्क भारतांतु मात्रन्यि भायर् गावांतूयि अस्सिल्ले अंगेलेंक् (GSB) (गैडा सारस्वत ब्राह्मिन्) जनांक्यि गीत कोल्का। ते बगेक् गीत वचूनु अय्कूनु मन्नांकोरूक् अवसर् मेल्का। अर्जुनाक् देवान् दिल्लोलो उपदेशु कोंङकणि भास् उल्लोंचे सर्वै जनांकयि प्रयासु नत्तिन्ने ओग्गि **"अम्गेले भरसेन् मन्नांकोर्नु"** सर्वै जनांलेयि मन्नांतु एकु सनू उजवाडु हाडूक् जांका ह्मोण् आग्रहु पावुनु माता पिता गुरु देवाकयि स्मरण कोर्नु यो सत्शि (७०१) अनि एकु श्लोकूयि कोङकणि भासेन् (देवनागरि लिपीन्) भगवत्गीत विवरण केल्लेया। ऐ कैरेक् कोङकणि भाषास्नेहसिले सर्वांलोयि अनुग्रहस्तोलो ह्मोण् प्रतीक्ष कर्ता।

भगवद् गीता दुस्रीयि दुस्रीयि वचूनु मन्नांकोरूक् देवालेयि, गुरूंगेलेयि, मल्गडेंगेलेयि अनुग्रहान् सन्दर्भु मेळ्ळोलस्स्। नंत्न जैतेकडे चंकिल्लेयि दृश्य श्राव्य माध्यमांतु एंचेयि भगवद्गीता प्रभाषण् ऐक्कूक्यि अवसर् मेळ्ळेले अस्स्। यें सर्वैं ये प्रयत्नाक् प्रचोदन्यि सहायूयि जल्लो। कोल्नत्तिन्ने अंतु इत्तेय् ऊणवु चूकि एय्लेलस्स् जल्यारि महाजनानि क्षम पावुङ्का।

यो उपदेशु (देवालो उपदेशु) सर्वांलेयि मन्नांतु एाकु उजवाडा घारा जावुनु रब्बूनु तंगेले सर्वांलेयि जीवितांतु समाथान् अनीक् सम्तोषु हाडूक् प्राप्त् जत्त्ने ह्मोण् प्रत्याश कर्ता। ये वेलारि देवाकयि मिग्गेले माता, पिता, गुरुंकयि, नमस्कारु कोर्नु यो देवाल् पुस्तकु कोंकणि भास् उल्लोंचे गौड सारस्वत ब्रह्मण (G.S.B.) जनांक् समर्पण् कर्ता। ये प्रयत्नाक् च्ड् प्रचोदन् दिल्लेलें श्री पुरुषोत्तम मल्या (पद्मश्री पुरस्कार विजेता) साराक्यि, तंगेले कुडुम्बाक्यि, यो बूकु प्रसिद्धीकरण् कोर्चे कोंकणि भाषा प्रचार सभेक्यि ये वेलारि हांव् होडि नन्दि सङग्ता।

वैक्कं,
24-4-2016

ह्मोणु स्नेहपूर्व्,
विजया राजकुमार प्रभु.

श्लोकु **विषय विवोरु**

अध्यायु – १ – अर्जुन विषाद योगु

१-११ पाण्डव कौरव सैन्यांतूले प्रथानियांलो विवोरु।

१२-१९ युद्धारंभ् कोलोंचाक् जावुनु दोन्नीय् पक्षाचेय् योदधाव् शंख् गर्ज्जन् कर्त्ताय्।

२०-२७ अर्जुनाल् सेना निरीक्षण्।

२८-४७ दयेन् मूढु; आकुलु अनीक् दुखितु जावुनु अर्जुनु उल्लेयता।

अध्यायु - २ - सांख्य योगु

१-१० अर्जुनाल् शेका पस्सून् कृष्णर्जुन संवादु।

११-३० सांख्य योगु।

३१-३८ क्षश्रिय धर्म्माचे महत्व्।

३९-५३ कमर्म योगु।

५४-७२ स्थित प्रज्ञ लक्षण्यि महत्व्यि।

अध्यायु - ३ - कर्म योगु

१-८ आसक्ति (आग्रहु) प्र्गाल्नु ज्ञानयोगूयि कर्म योगूयि प्रकारि कर्तव्य कर्म कोर्काजल्लेल् प्राथान्या पस्सून्।

९-१६ यज्ञ् कोर्काजल्लेल् पसून्।

१७-२४ देवु सदा प्रर्वर्त्ति कोर्नस्स् ज्ञानीयि तेचि वट्टेनोच्चुका।

२५-३५ ज्ञानीलेयि अज्ञानीलेयि लक्षण्। रागदवेष् प्र्गाल्नु कर्म अनुष्ठान् कोरूक् देवाल् निर्देशु।

३६-४३ आग्रहु त् ज्ञानसम्पादनाक् तडस् ह्मोणूयि आग्रहाक् क्शिश तारण् कोरुयात् ह्मोणूयि देवु निर्देशु दित्त।

श्लोकु	विषय विवोरु
	अध्यायु - ४ - ज्ञान योगु (ज्ञान कर्म सन्यास योगु)
१-१८	सर्व्वेश्वरु जावुनऽसिल्ले देवाल् महत्वयि कर्म योगचे विवरणयि।
१९-२३	तज्जे लक्षण्।
२४-३२	फलेविधानसिल्ले यज्ञाचे कैरींयि तज्जे सर्व फल्यि।
३३-४२	ज्ञानाचे महत्व्।
	अध्यायु - ५ - कर्म संन्यास योगु
१-६	सांख्य योगु, कर्म योगु विवरण्।
७-१२	सांख्य योगिनेयि कर्म योगीनेयि लक्षण्, योग महत्व्।
१३-२६	ज्ञान योगु।
२७-२९	भक्ति सहित् जावुनसिल्ले ध्यानयोग वर्ण्णन्।
	अध्यायु - ६ - अभ्यास योगु (आत्मसंयम योगु)
१-४	कर्म योग विवरण् - योगु मेल्लेलेने लक्षण्।
५-१०	आत्म साक्षात्कार् मेल्लेलेने लक्षण्।
११-३२	ध्यान योग विवरण्।
३३-३६	मन्नाक् नियन्त्रण् कोरूकस्सिन्ने वाट्।
३७-४७	योग भृष्टालि गति अनीक् ध्यानयोग महत्व्।
	अध्यायु - ७ - ज्ञानविज्ञान योगु
१-७	विशेष विज्ञान सहित् जावुनऽसिल्ले ज्ञान्।
८-१२	प्रपञ्चांतूल् सर्वांतूयि देवान् सान्निद्ध्य्।
१३-१९	आसुर प्रकृति, दैवीक प्रकृति।
२०-२३	वेग्ग्ल् देवता उपासन।
२४-३०	देवान् महत्व्।

श्लोकु	विषय विवोरु

अध्यायु – ८ – अक्षर ब्रह्म योगु

१-७	ब्रह्म्, अध्यात्म्, कर्म, अधिभूत्, अधिदैव्, अज्जेपसून् देवु सङ्ग्त।
८-२२	भक्ति योगु।
२३-२८	उत्तरायण् दक्षिणयन् मार्ग्।

अध्यायु – ९ – राजविद्या राजगुह्य योगु

१-६	राजविद्या।
७-१०	देवूयि प्रकृतीयि संसार चकृयि।
११-१५	आसुर प्रकृति, दैवीक प्रकृति; भगवद् भक्ति।
१६-१९	देवु कोण?
२०-२५	सकाम निष्काम उपासना फ्ल्।
२६-३४	निष्काम भगवद् भक्ति माहात्म्य्।

अध्यायु – १० – विभूति योगु

१-७	देवाल् विभूतीयि, योगशक्तीयि ते ज्ञानाफल्यि।
८-११	भक्ति योगु-फलयि महत्वयि।
१२-१८	अर्जुनाल् भग्वत्स्तुतीयि-देवालि विभूतीयि योगशक्तीयि विस्तरान् संगुका ह्मोण् प्रार्थनायि।
१९-४२	देवु कोण् शक्ति इत्ते-वर्ण्णन।

अध्यायु – ११ – विश्वरूप दर्शन योगु

१-४	विश्वरूप दर्शनाक् जावुनु अर्जुनाल् प्रार्थन।
५-८	विश्वरूपा पसून् देवु वर्ण्णन् कर्त।
९-१४	धृतराष्ट्राक् सञ्जयु विश्वरूपापसून् सङ्गून् दित्त।

श्लोकु	विषय विवोरु
१५-३१	विश्वरूप दिक्कून् ब्य्यान् अर्जुनु देवाक् स्तुति कर्त।
३२-३४	युद्ध कोरूक् देवु अर्जुनाक् उत्साहु दित्त।
३५-४६	देवाल् सौम्य्रूप् दक्कोंचाक् अर्जुनु प्रार्त्थन् कर्त।
४७-५०	विश्वरूप दर्शन महात्मय् देवु वर्ण्णन् कर्त, सौम्य रूप् दक्केय्त।
५१-५५	अनन्य भक्तीयि तज्जे फल्यि-दुर्ल्लभ् जावुनऽसिल्ले चर्तुभुज् रूपा पसून् देवु सङ्गून् दित्त।

अध्यायु – १२– भक्ति योगु

१-१२	उपासनाचे महत्वयि देवाले पम्चाकसिल्ले उपाय्यि वर्ण्णन।
१३-२०	देवाल् लग्गि पंचाकस्सिल्ले गूण् मेल्लेलेले लक्षण्।

अध्यायु – १३ – क्षेत्रक्षेत्रज्ञ विभाग योगु

१-१९	क्षेत्र इत्ते, क्षेत्रज्ञु कोण? अनीक् ज्ञानमहत्वयि।
२०-३५	प्रकृति पुरुष विवरण – विज्ञान्।

अध्यायु – १४ – गुणत्रय विभाग योगु

१-१४	ज्ञानमहत्वयि, प्रकृति पुरुप संयोगंतु धक्कून् लोकाचे जनन् गेव्प्यि।
१५-१८	सत्व, रजस् तमोगुण लक्षण्।
१९-२७	देवाले पंचाक्ऽस्सिल्लि वट्यि गुणातीताले लक्षण्यि।

अध्यायु – १५ – पुरुषोत्तम योगु

१-६	संसार वृक्ष वर्ण्णन्यि देवाले पंचाक्ऽस्सिल्लुपायूयि।
७-११	जीवात्मा विवरण्।
१२-१५	परमात्मावूयि महत्वयि।
१६-२०	क्षरपुरुषु, अक्षर पुरुषु, पुरुषोत्तमु।

श्लोकु	विषय विवोरु

अध्यायु – १६ – दैवासुर सम्पद् विभाग योगु

१-५	दैवी सम्बत् आसुरी सम्बत् विवरण्।
६-२०	आसुर सम्बत्तस्सिल्लेले लक्षण्यि गतीयि।
२१-२४	काम, क्रोथ लोभांतु धक्कून् विमुक्तु जावुनु शास्त्रविधि प्रकारानि जीवित् कोरूक् निर्देशु।

अध्यायु - १७ - श्रद्धात्रय विभाग योगु

१-६	श्रद्धापसूनूयि, शास्त्रविरुद्ध जावुनु कठिनतपस्स् अनुष्टान् कोर्चापसूनूयि देवु सङग्त।
७-२२	विविध् जावुनऽस्सिल्लाहारु-यज्ञ, दान्, तपस् अज्जेपसून् देवु सङग्त।
२३-२८	"ॐ तत् सत्" ह्मल्लेलेचो अर्थूयि त्शि सङगुचाचो उद्देशूयि।

अध्यायू - १८ - मोक्ष संन्यास योगु

१-१२	त्यागु इत्ते क्शि?
१३-१८	सांख्य सिद्धांन्ताचे उजुवडांतु कर्माचे कारण् देवु सङग्त।
१९-४०	ज्ञान् कर्म कर्त्तावु बुद्धि, धृति, सुख् एं सर्वे– तीनि गुणनि देवु विवरण् कर्त।
४१-४८	वर्ण्णश्रम धर्मयि तें पालन् केल्लेरि मेल्चे फल्यि।
४९-५५	ज्ञाननिष्ट।
५६-६६	भक्तीनऽसिल्ले निष्काम कर्मानुष्टाना पस्सून् देवु सङग्त।
६७-७८	गीत सिक्कून् प्रचारु कोर्चे महत्वा पस्सून्।

*****

ॐ श्री परमात्मने नमः

ॐ श्री गुरुभ्यो नमः
ॐ श्री गणेशय नमः
ॐ श्री सरस्वतै नमः

श्रीमद् भगवद् गीता ध्यान्

ॐ पार्त्थाया प्रतिबोधितां भगवता नारायणेन स्वयम्,
व्यासेन ग्रथितां पुराणमुनिना मध्ये महा भारतम्।
अद्वैतामृत वर्षिणीं भगवतीं अष्टादशादध्यायिनीम्,
अम्ब! त्वामनुसन्धामी भगवद् गीते भगद्वेषिणीम्।

कुन्दील्पूतु अर्जुनाक् श्रीमन्नारायणन्चि उपदेशु दिल्लोलोयि मर्हषि जावुनऽसिल्ले वेदव्यासान् संविथान् कोर्नु महा भारत कथेचे म्द्दे (मध्य्) भागरि निबन्थन् केल्लेलेयि (मध्य् भागक् दवर्लेलेयि) अद्वैत् जावुनस्सिल्लेऽमृत् दिम्चीयि (जीवात्मावूयि परमात्मावूयि एककूचि त् दोनि न्यि ह्मल्लेले अमृत् जावुनऽस्सिल्ले हो....ड् कैरि मनांकोर्नु दिंचीयि) आषा (१८) अद्ध्यायांतूयि जावुनु संसारा (संसाराचो) दुख नाशु कोर्चीयि जावुनऽसिल्ले भगवत् गीताम्बिकेक् हांव् वन्दन् कर्ता।

नमोऽस्तुते व्यास विशाल बुद्धे फुल्लारविन्दायत् पत्रनेत्र।
येन त्वया भारत तैला पूर्ण्णः प्रज्वालितो ज्ञान मयः प्रदीपः।

महा बुद्धि अस्सिल्लोयि (होल्लो बुदुवन्तु जावुनऽस्सिल्लोयि) फुल्लेवुनु दिग्गयेन् पद्माक्षा द्ळावरि दोलेय्ऽस्सिल्ले व्यास महर्षे! "तुम्मि मू" महाभारत जावुनऽस्सिल्ले तैल् बोर्नुगाल्नु ज्ञानमय् जावुनऽस्सिल्लो यो विशिष्ट दीवो (भगवत् गीत) जोलोवुनु प्रकाशु केल्लोलो! हांव तुम्का नमस्कारु कर्ता।

प्रपन्न पारिजाताय तोत्रवेत्रैक पाणये।
ज्ञानमुद्राय कृष्णाय गीताऽमृत दुहे नमः।

पारिजातवृक्षामतिरीन् आश्रयिजत्तल्लेंक् फल् दिंचोयि (आशृयिजत्तलेंक् रक्षण कोर्चोयि) एकत्तांतु चममटटीयि (तोत्रम्यि) लगाम्यि (कडिज्ञाण्यि) दोर्लोलोयि अनियेकत्तांतु ज्ञानमुद्र दक्कोंचोयि, (ज्ञानमुद्र थारण् केल्लोलोयि) गीत जावुनऽसिल्लऽमृत् दार्काणु दिल्लोलोयि जावुनऽसिल्लेश्रीकृष्णाक् नमस्कारु।

सर्वोपनिषदो गावो दोग्द्धा गोपालनन्दनः ।
पार्थो वत्सः सुधीर्भोक्ता दुग्द्धम् गीताऽमृतम् महत् ।

सर्वे उपनिषत्त्यि गय्योयि, दारकड्चो नन्दगेपराल् पूतु श्रीकृष्णूयि, वस्सूर् जावुनऽस्सिल्लो अर्जुनुयि, दूद् महत् जावुनऽसिल्ले गीताऽमृत्यि, तें पिंचि सर्व्वै (सग्गटेयि) ज्ञानीयि (विवोरस्सिन्नीयि) ह्मोण् सङ्गतायि।

वसुदेवसुतम् देवम् कम्सचाणूर मर्द्दनम् ।
देवकी परमानन्दम् कृष्णम् वन्दे जगद्गुरुम् ।

वसुदेवाल् पुत्रूयि, कम्साक्यि चाणूराक्यि दिंश्मिर्लोलोयि, देवकीक् परमानन्द् दिम्चोयि, लोकांतूले, सर्वांक्यि गुरूयि जावुनऽसिल्लो देवु श्रीकृष्णाक् हांव नमस्कार कर्ता।

भीष्मद्रोणतडा जयद्रथ जला गान्धार नीलोत्पला,
शलयग्राहवती कृपेण वहनी कर्णेन वेलाकुला
अश्वत्थाम विकर्ण्ण घोर मकरा दुर्योधनावर्त्तिनी
सोत्तीर्ण्ण खलु पाण्डवैःरणनदी कैवर्त्तकः केशवः ।

भीष्मूयि द्रोण्रेयि जावुनऽस्सिल्ले तडाक्य् (होल्ले तोलेयि). जयद्रथु जावुनसिल्ले उद्दाक्यि, गान्थारु जावुनऽसिल्लो नीलुपारोयि, (गान्धारा रायु श्कुनि जावुनऽसिल्लो नीलु होलो भत्तोरूयि) शलर्य जावुनऽसिल्ले सिस्सेरीयि, कृर्प जावुनऽसिल्ले उद्क्कापोन्दांतुल् ओळुकूयि, कर्ण्णल् कैरेन् आकुल् म्न्न् जावुनऽसिल्ले तीरदेशूयि अश्वत्थामावूयि विकर्ण्णूयि जावुनऽसिल्ले भयन्कर मकरमल्स्य्यि, दुर्योधनु जावुनऽसिल्ले नीर्चुळीयि (ചുഴി-उदुकांतूल् चुली ह्मलेरि होल्ले नदींतु-तडाकांतु-समुद्रांतु सर्वै (सग्ग्यि) उद्कांतु सोकडेक्डे

वडुकुळें जावुनु उद्दाक् गूवुनु गूवुनु रब्त्ने। तंतु कोणेय् प्ल्लेरि मगीरि (तज्जे उपरांन्ते) रक्ष मेलूक् होड् कष्ट् त्। त्शिश अस्सिल्ले ते युद्ध नदीक् पाण्डवानि तारण् केल्ले। तारि देवोंचो "श्रीकेशेवु" त् अस्सिल्लो (श्रीकृष्णान् त् तारण् कोरूक् सहायु केल्लोलो)।

पाराश्र्य वचः सरोजममलम् गीतात्थगन्धोत्कडम् ।
नानाख्यानक केसरम् हरिकथा सम्बोधना बोधितम् ।
लोके सज्जन षट्पदै रह रहः पेपीयमानम् मुदा,
भूयाद् भारतपङ्गजम् कलिमलः पृध्वम्सिनः श्रेयसे ।

पराशरा पुत्राले (व्यासाले) श्रीव्यासदेवाले उत्तर्-जावुनऽस्सिल्ले सरसांतु (तोलेंतु) जनन् गेत्तन्ने निर्मल् गीतात्थ जावुनऽसिल्ले उद्कड् (होल्ले) ग्न्ध् असिलेयि विविधतराचे उपकथ जावुनऽसिल्ले द्ल् (पत्तीयो) असिल्लेयि हरिकथास्तुतीनि विकसित् (फुल्लेवुनु रब्बिन्नेयि) जल्लेनेयि लोकांतु सज्ज्न् जावुनऽस्सिल्ले बण्डानि दिने दिने (केदनायि-स्ग्ग्दिस्सायि) संतोषान् पान्कोर्चेयि कलीले मालिन्यांक् नाशुकोर्चेयि-महाभारत् जावुनऽसिल्ले ये पद्माक्षा फूल् अम्क श्रेयसाक् जावुनु भविजावो।

मूकम् करोति वाचालम् पम्गुम् लम्घयते गिरिम्,
यत् कृपा तमहम् वन्दे परमानन्द माधवम् ।

कोणलि कृप (द्य) की मूकाक् (उल्लोंचाक् शक्ति नत्तिल्लेक्) वाचालु कर्त (उल्लोंचाक्ऽस्सिल्लि शक्ति दित्ता) मुडन्ताक् (पायु थोम्टो जावुनऽसिल्लेक्) पर्व्वोतु चोडूक् प्राप्तु कर्त, परमानन्द स्वरूप जावुनऽसिल्ले ते माधवाक् हांव् वन्दन् कर्ता।

यम् ब्रहमा वरुणेन्द्र रुद्र मरुतः स्तुन्वन्ति दिव्यैः स्तवैः
वेदैः सांगपदकृमोपनिषदैर्गायन्ति यं सामागः ।
ध्यानावस्थित तद्गतेन मनसा पश्यन्ति यम् योग्नो
यस्यान्तम् न विदुः सुरासुरगणाः देवाय तस्मै नमः ।

ब्रहमावु, वरुणु इन्द्रु, रुद्रु अन्नीयि मरुत्त्यि दिव्य कीर्त्तनानि कोणक् की स्तुति कर्त्तायि – खंचे की देवापसून् सामगानमोण्चिं वेदांग्, वेद्क्चनक्रम्, उपनिषत्त् अज्जानि सर्वै ह्मोणु स्तुति कर्त्तायि- खंचेकी एकलेम्तु प्रवेशन् केल्लेले म्न्नान् तक्क योगीयो दर्शन् कर्त्तायि कोणल्की माहात्म्या परिथीक् (अन्त् नत्तिल्ले माहात्म्य् हमोणु) देव्य् असुर्य् मन्नांक्र्तायि वे ते देवाक् जावुनु नमस्कारु कर्ता।

ॐ शान्ति..... शान्ति..... शान्ति :



ॐ श्री परमात्मने नमः

श्रीमद् भगवद् गीता

अध्याय १

अर्जुन विषाद योगु

धृतराष्ट्र उवाच–

१ धर्मक्षेत्रे कुरुक्षेत्रे समवेता युयुत्सवः ।
मामकाः पाण्डवाश्चैव किमकुर्वत सञ्जय !

धर्मक्षेत्र् जावुनऽस्सिल्ले कुरुक्षेत्रांतु युद्ध कोरूक् आग्रहु कोर्नु एय्लेले मिग्गेले जनानीयि पाण्डवानीयि इत्तिकी केल्ले ह्मोणु कुरुवंशंतु होडु जावुनऽसिल्ले धृतराष्ट्रान् सञ्जयालग्गि निंङगीले। युद्धस्थलारि सर्वै जन् तय्यां जल्लिवे। थंग (ते स्थलारि) इत्तिकी चंक्त-कोण् कोण् अस्सयि- ए सर्वै जाण् जंचाक् धृताष्ट्राक् होल्लि तान् एय्लि, एक्क्शि एक्-१०१ जणलो मल्गेडो जावुनऽसिल्ले तंगेले मन्नांतु एय्लेले दुखान् निंङग्ल्ले त् तें।

सञ्जय उवाच–

२ दृष्ट्वा तु पाण्डवानीकं व्यूढं दुर्योधनस्तदा ।
आचार्यमुपसङ्गम्य राजा वचनमब्रवीत् ।

सञ्जयान् धृतराष्ट्रालग्गि सङ्गीने–

पाण्डव् सैन्य् युद्धाक् तय्यार जावुनु रब्बिल्ले दिक्कूनु दुर्योधनान् आचार्यु जावुनऽस्सिल्ले द्रोणरालग्गि ओच्चूनु सङ्गीने।

३ पश्यैतां पाण्डुपुत्राणामाचार्य महतीं चमूम् ।
व्यूढां द्रुपदपुत्रेण तव शिष्येण धीमता ।

हे आचार्या तुम्गेले बुदुवन्तूयि शिष्यूयि जावुनुऽसिल्लो धृष्टद्युम्नाक् (द्रुपदपुत्रु) व्यूह कोर्नु प्रत्येकतरारि रब्बेयलेले ए होल्ले पाण्डव सैन्याक् चोवुनु मनाम्करायि (दिक्कायि) खयि।

४ अत्र शूरा महेष्वासा भीमार्जुनसमा युधि ।
युयुधानो विराडश्च द्रुपदश्च महारथः ।

५. धृष्टकेतुश्चेकितानः काशिराजश्च वीर्यवान् ।
पुरुजित्कुन्तिभोजश्च शैब्यश्च नरपुङ्गवः ।

६. युधामन्युश्च विक्रान्त उत्तमौजाश्च वीर्यवान् ।
सौभद्रो द्रौपदेयाश्च सर्व एव महारथाः ।

थम्म चोय्यायि ते दिक्कुच्चे सैन्याम्तु भीमूयि अर्जुनूयि मणके (तम्चे मतिरीन्) युद्धकोरूक् अतिसमर्थ् जावुनऽस्सिल्ले जैते जाण् अस्स्यि। तम्तु प्रथान जावुनु अर्जुनालो शिष्यायि युद्धांतु वीरत्व दक्कोम्चोयि जावुनऽस्सिल्लो युयुधाननु", तें नम्त्न विराडु, द्रुपदु, चेकिताननु, धृष्टकेतु, काशिरायु कुन्तीलो पितामहु जावुनऽस्सिल्लो शूरु, युधामन्यु, अभिमन्यु पाञ्चालीले पुत्र् एश्शी महारथ् जावुनऽस्सिल्लें अनेक जनांक् दिक्कु एत्ता।

७. अस्माकं तु विशिष्टा ये तान्निबोध द्विजोत्तम ।
नायका मम सैन्यस्य संज्ञार्थं तान्ब्रवीमि ते ।

हे उत्तम ब्राह्मण (ब्राहमणंतु उत्तमु जावुनऽसिल्ले) अनीक् मिग्गेले (दुर्योधनाले) सैन्यांतु नायक् जावुनु विशिष्ट् जावुनऽस्सिल्ले कोण सर्वै ह्मोणु तुम्का मन्नां कर्ता ।

८ भवान्भीषमश्च कर्णश्च कृपश्च समितिंजयः ।
अश्वत्थामा विकर्णश्च सौमदत्तिस्तथैव च ।

९. अन्ये च बहवः शूरा मदर्थे त्यक्तजीविताः ।
नानाशस्त्रप्रहरणाः सर्वे युद्धविशारदाः ।

तुम्मीयि (द्रोणचार्यर्), भीषमर्, जयशालि जावुनऽस्सिल्ले कृपर्, कर्णु, अश्वत्थामा, नम्तन विकर्ण, सोमदत्ताल् पुत्रु भूरिश्रृवस्, जयद्रथु ए सर्वै मिग्गेले कूटाम्तु अस्स्यि। अम्चे बायर् मिगेल् बगेक जीवु पर्यान् बलि दिम्चाक तय्यार जावुनु जैत्तेतराचे आयुथधारीयि, युद्ध कोरूक निपुण्यि जावुनऽस्सिल्ले वीरा् पुत्र्यि अस्स्यि।

१०. अपर्याप्तं तदस्माकं बलं भीष्माभिरक्षितम् ।
पर्याप्तं त्विदमेतेषां बलं भीमाभिरक्षितम् ।

भीष्माँ जावुनु रक्षण् कोर्चे अम्गेले सैन्याक जाम्काजल्लेल्-पशी ब्ल् ऊणेत् (तुत्तूल् पूरो जल्लेने न्यि-अपर्याप्त त्)। जल्यारि, भीमान् रक्षण् दिम्चे सैन्य् परिमित् (ऊणे जल्यारीयि) ब्ल् अस्सिन्ने त् (पूरोजल्लेने त्)।

११. अयनेषु च सर्वेषु यथाभागमवस्थिताः ।
भीष्ममेवाभिरक्षन्तु भवन्तः सर्व एव हि ।

सर्व दिक्कारीयि निर्द्दिष्ट स्थानारि (एककलीम्चि) तन तनी रबूनु सर्वानीयि ह्मोण् भीष्मराक् संरक्षण् कोर्का।

१२ तस्य संजनयन्हर्षं कुरुवृद्धः पितामहः ।
सिंहनादं विनद्योच्चैः शङ्खं दध्मौ प्रतापवान् ।

१३. तत शङ्खाश्च भेर्यश्च पणवानकगोमुखाः ।
सहसैवाभ्यहन्यन्त स शब्दस्तुमुलोऽभवत् ।

कुरुवंशचो बन्दूयि (बहुमान्यूयि) वयोवृद्धूयि पितामहूयि प्रतापीयि जावुनऽस्सिल्लो भीष्मु दुर्योधनाक् संतोषु प्रदान्कोरूक् जावुनु ओड्डान् सिंहगर्ज्जन् कोर्नु तंग्गेले "शम्खुनाद्" केल्ले। तक्क लग्गूनु, श्ङख, भेरि, आनक्, गोमुख्, एशिशि अस्सिल्ले वाध्य्खोष् सर्वै आरांबीले। तश्शी युद्धक्कल् (युद्धाचोथायु) सर्वै ओल्ले श्बदान् सौदान् भर्ले।

१४. ततः श्वेतैर्हयैर्युक्ते महति स्यन्दने स्थितौ ।
माधवः पाण्डवश्चैव दिव्यौ शङ्खौ प्रदध्मतुः ।

ते समयारि श्रीकृष्णनेयि अर्जुनान्यि द्वे गेडया मम्दिल्ले रथाचेरि रबूनु तं तम्गेले दिव्य जावुनऽस्सिल्ले श्ङख् ग्र्जन् केल्ले।

१५. पाञ्चजन्यं हृषीकेशो देवदत्तं धनञ्जयः ।
पौण्ड्रं दध्मौ महाशङ्खं भीमकर्मा वृकोदरः ।

श्रीकृष्णले "पाञ्चजन्यम्" अर्जुनाले "देवदत्तं' ओल्लो पराक्रमि जावुनऽस्सिल्ले भीमाले "पौण्ड्रं ह्मल्लेले महाश्ङखानेयि त् वज्जिन्ने।

१६. अनन्तविजयं राजा कुन्तीपुत्रो युधिष्ठिरः ।
नकुलः सहदेवश्च सुघोषमणिपुष्पकौ ।

कुन्ती पुत्रु युधिष्ठिर रायु "अनन्दविजयं" ह्मल्लेलो शंङखूयि नकुल सहदेवानि "सुखोषं" मण्पुिष्पकं" ह्मळ्ळेले श्ङखूयि त् वज्जिल्लो।

१७. काश्यश्च परमेष्वासः शिखण्डी च महारथः ।
धृष्टद्युम्नो विराटश्च सात्यकिश्चापराजितः ।

१८. द्रुपदो द्रौपदेयाश्च सर्वशः पृथिवीपते।
सौभद्रश्च महाबाहुः शङ्खान्दध्मुः पृथक् पृथक् ।

विल्लालि वीरु जावुनऽस्सिल्लो काशिरायु, महारथु जावुनऽसिल्लो शिखण्डी, धृष्टद्युम्न, विराडु, हर्व्ण् कोल्नत्तिल्लो सात्यकी, द्रुपद् पाञ्जालि पुत्र्, आजानुबाहु अभिमन्यु एशिश अस्सिल्ले महावीर् सर्वै तं तम्गेले श्ङख्यि वज्जीले।

१९. स धोषो धार्तराष्ट्राणां हृदयानि व्यदारयत् ।
नभश्च पृथिवीं चैव तुमुलो व्यनुनादयन् ।

यो ओल्लो 'सोव्दु' (युधाधैयावेलो सौदु दुर्योधनादीले घृतराष्टाले सर्वालेयि हर्दैबित्तेरि चोणु भायर् एवुनु आकाशरीयि भूमीरीयि अय्क्कून् रबीले।

२०. अथ व्यवस्थितान्दृष्ट्वा धार्तराष्ट्रान् कपिध्वजः ।
प्रवृत्ते शस्त्रसंपाते धनुरुद्यम्य पाण्डवः ।

२१. हृषीकेशं तदा वाक्यमिदमाह महीपते! ।

हे रय्या– सञ्जयु धृतराष्ट्रालग्गि सङ्ग्त, तुम्गेले पुत्र् सर्वैजाण्यि (युधाक तय्यार जल्लेले धृतराष्ट्राले सर्वै जन्) विल्लाळि वीरु जावुनऽस्सिल्ले अर्जुनालग्गी युद्धकोरूक् तय्यार जावुनु रब्बिल्ले दिक्कून् अस्त्र पेटोंचाक् तय्यार् जावुनु धनुष्यि बाणुयि हत्ताम्तु दोरु रब्बिल्ले अर्जुनान् कृष्णलग्गि एशिश सङ्गीने।

अर्जुन उवाचः–

सेनयोरुभयोर्मध्ये रथं स्थापय मेऽच्युत ।

२२. यावदेतान्निरीक्षेऽहं योद्ध्युकामानवस्थितान् ।

कैर्मया सह योद्धव्यमस्मिन्रणसमुद्यमे ।

२३. योत्स्यमानानवेक्षेऽहं य एतेऽत्र समागताः ।

धार्तराष्ट्रस्य दुर्बुद्धेर्युद्धे प्रियचिकीर्षवः ।

अर्जुनान सङ्गीने –

"हे कृष्णपरमात्मा" दोन्नीयि सैन्याचेयि मध्य भागरि जावुनु मिग्गेल् र्थ् रब्बेय्यायि। हांव् कोणलग्गी सर्वै युद्ध् कोरुका ह्मोणूयि दुष्टु जावुनऽस्सिल्ले दुर्योधनाल् प्रीतीक् जावुनु युद्ध कोरूक् एय्लेले कोण् कोण् ह्मोणूयि हांव् एक् चोवुनु मनांकर्ता।

सञ्जय उवाच –

२४. एवमुक्तो हृषीकेशो गुडाकेशेन भारत ।

सेनयोरुभयोर्मध्ये स्थापयित्वा रथोत्तमम् ।

२५. भीष्मद्रोणप्रमुखतः सर्वेषां च महीक्षिताम् ।

उवाच पार्थ पश्यैतान् समवेतान्कुरूनिति ।

सञ्जयान सङ्गीने–

हे भारत कुलाधिपु जावुनऽस्सिल्ले रय्या (धृतराष्ट्र) अर्जुनाले उत्तर् अय्कून् श्रीकृष्णन्-दोन्नीयि सैन्याचेय् मध्य् जावुनुयि भीष्मद्रोणादीले मुक्कारीयि, अनीक् अस्सिल्ले रय्यांक् सर्वै दिक्कूक् एंचे प्रकारीनीयि तंगेले विशिष्ट् जावुनऽस्सिल्लो तेरु रब्बोवुनु एश्शि संगीले "हे अर्जुना युद्ध् कोरूक् एक्कडे जावुनु रब्बिल्ले ये कौरव समूहाक् (कुरुवम्शँतूल् जनाँक्) तू चोयी" खयि।

२६. तत्रापश्यत्स्थितान्पार्थः पितृनथ पितामहान् ।

अचार्यान्मातुलान्भ्रातृन्पुत्रान्पौत्रान्सखींस्तथा ।

२७. श्वशुरान्सुहृदश्चैव सेनयोरुभयोरपि ।

तान्समीक्ष्य स कौन्तेयः सर्वान्बन्धूनवस्थितान् ।

तज्जे उपराम्ते (तें जाव्नु) अर्जुनान् थंग अस्सिल्ले दोन्नीयि सेनाम्तूयि (पाण्डव्यि कौरव्यि) युद्ध कोरूक् एवुनु रब्बिल्ले तंगेले पितास्थानीयाँक्, आबूम्क्, आचार्यांक्, मामुमौलेम्क्, पुत्र पौत्राम्क्, सखावाँक् बयलाले पितावाँक्, सुहृत्त् जानुनऽस्सिल्लेम्क् सर्वांक्यि दिक्कूनु अर्जुनु सङ्ग्त-

२८. कृपया परयाविष्टो विषीदन्निदमब्रवीत्
द्रष्ट्वेमं स्वजनं कृष्ण युयुत्सुं समुपस्थितम् ।

२९. सीदन्ति मम गात्राणि मुखं च परिशुष्यति
वेपथुश्च शरीरे मे रोमहर्षश्च जायते ।

ओड दुःख्यि द्यायि अस्सिल्लो जावुनु अर्जुनान् संङ्गीने–

युद्ध् कोरूक् आग्रहु काणु एयलेले ए स्वजनांक् (स्वन्त जावुनऽस्सिल्ले जनांक्) दिक्कूनु शरीरावयव् (देह्) सर्व्यि क्षीण् जत्त। मिग्गेले दोले बोर्नु कांयिपुणै दिक्कूक्एन मुखाक् (तोण्डाक्) उद्दाक् नांजत्त (वरण्ड्जत्त) देहाक रोमाञ्ज जत्ता, कोड् कोडो एत्ता।

३०. गाण्डीवं स्रंसते हस्तात्त्वक्चैव परिदह्यते ।
न च शक्नोम्यवस्थातुं भ्रमतीव च मे मनः ।

"गाण्डीव् मिग्गेले हत्तांतु थक्कून् खल्लाक् पड्ता। देहांतु थक्कून् उज्जो एत्ता। मक्का उट्टावुनु रब्बूक्सरी जायना। मिगेले म्न्न् गूवुनु गूवुनु व्च्चे मतिरीन् दिस्स्ता"।

३१. निमित्तानि च पश्यामि विपरीतानि केशव ।
न च श्रेयोऽनुपश्यामि हत्वा स्वजनमाहवे ।

हे केशवा दुर्न्निमित्त्चि त् मक्का सर्वै दिक्कूक् एत्ता (चंगपण् कांयिपुणै मुक्कारि दिक्कूक् एना)। स्वजनांक् युधाम्तु दिम्श्मिार्नु एक् श्रेयस्सेयि मक्का दिक्कूक् एना।

३२. न काङ्क्षे विजयं कृष्ण न च राज्यं सुखानि च ।
किं नो राज्येन गोविन्द किं भोगैर्जीवितेन वा ।

हे कृष्ण मक्का जयु आग्रहु ना। मक्का राज्ज्य् नक्का। सुख भोग नक्का। गोविन्दा, राज्य् अस्सूनूयि भोग् सर्वै अस्सूनुयि ये जीवितानेंचि हम्मि इत्तिकी प्राप्त् कोरूक् वत्तायि।

३३. येषामर्थे काङ्क्षितं नो राज्यं भोगाः सुखानि च ।
त इमेऽवस्थिता युद्धे प्राणांस्त्यक्त्वा धनानि च ।

राज्य्; भोग्, सुख् ये सर्वै कोणक् जावुनम्मी युद्ध् कोरुका ह्मोणु आग्रहु कल्लो तीं सर्वै जीवु–धनादीक् त्यज कोर्नु (प्र्गाल्नु) अंगा युद्ध् कोरूक् रब्बीलियायि।

३४. आचार्याः पितरः पुत्रास्तथैव च पितामहाः ।
मातुलाः श्वशुरा, पौत्राः श्यालाः सम्बन्धिनस्तथा ।

अंतु गुरु जावुनऽस्सिल्ले, बप्पमार्, पूत् आबुमार्, मामुमार्, बइलाले बप्पमार्, पुत्ताले पूत्, दूवेले पूत्, अक्काले बम्मूण् (बावुमार्) बन्दुजन् ये सर्वै अस्स्।

३५. एतान्न हन्तुमिच्छामि घ्नतोऽपि मधुसूदन !
अपि त्रैलोक्यराज्यस्य हेतोः किं नु महीकृते ।

हे मधुसूदना अन्नि (हन्नि-शत्रुपक्षारि रब्बिन्नि) मक्क दिंशिमारूक् एयलेनि जलयारीयि तेनेयि मक्का तिन्नीयि लोक्यि स्वन्त् जावुनु मेल्त्ने जल्यारीयि हांव् अङका दिंशिमारूक् आग्रहिजायिन। मग्गीरि वे ये भूमी बगेक् जावुनु तश्शी कोरुक। (सर्वांक्यि दिंशिमारुका?)।

३६. निहत्य धार्तराष्ट्रान्नः का प्रीतिः स्याज्जनार्दन !
पापमेवाश्रयेदस्मान्हत्वैतानाततायिनः ।

हे जनार्दना, धृतराष्ट्रापुत्र् जावुनऽस्सिल्ले दुर्योधनादींक् (दुर्योधनाले कूटाम्तु युध् कोरूक् जावुनु एयलेले सर्वांक्यि) दिंशिमारु इत्ति संतोषु की जंचाक व्त्ता। बल्लावप्ण् सर्वै कोर्चे हङक दिंशिमर्लयारी तज्जे पाप् अंक मेल्त्ने ह्म्ल्लेले मात्र् त्।

३७. तस्मान्नार्हा वयं हन्तुं धार्तराष्ट्रान् स्वबान्धवान् ।
स्वजनं हि कथं हत्वा सुखिनः स्याम माधव !

तें पसावत् स्वन्दबन्दु जावुनऽस्सिल्ले दुर्योधनादींक् दिंश्मार्प् झल्लेले अंक संगिलेल् न्यि। स्वजनांक् दिंश्मार्नु हे माधवा अंक इत्ति सुख् की मेळूक् व्त्ता।

३८. यद्यप्येते न पश्यन्ति लोभोपहतचेतसः ।
कुलक्षयकृतं दोषं मित्रद्रोहे च पातकम् ।
३९. कथं न ज्ञेयमस्माभिः पापादस्मान्निवर्तितुम् ।
कुलक्षयकृतं दोषं प्रपश्यद्भिर्जनार्दन।

अत्याग्रेहु मन्नांभोर्णश्शिल्लि ईं ज्न् सर्वै कुलक्षयान् जम्चो दोषूयि, मित्रांक् द्रोहुदिल्लेल् खत्तीरि मेल्चो पापूयि मन्नां क्रनायि। जलयारि एं सर्वै मन्नां कोर्चि हम्मि ये पाप् प्रवर्त्तींतु धक्कून् मग्लेन् सोर्कानवे हे जनार्द्दना। (नां जल्यारि ते पाप् अंक मेळ्त्ने नवे हे कृष्ण)।

४०. कुलक्षये प्रणश्यन्ति कुलधर्माः सनातनाः ।
धर्मे नष्टे कुलं कृत्स्नमधर्मोऽभिभवत्युत ।

कुल् नश्शिंजायिनाफडेन् नित्य् जावुनऽस्सिल्ले कुल धर्मु सर्वै नाशु जत्त। धर्मु नष्ट जल्यारि कुलाक सर्वै अधर्मु आकृमण् कर्ता।

४१. अधर्माभिभवात्कृष्ण! प्रदुष्यन्ति कुलस्त्रियः ।
स्त्रीषु दुष्टासु वार्ष्णेय! जायते वर्णसङ्करः ।

हे कृष्ण अधर्मु चंकना फडेन स्त्री वोर्ग्गु बल्लाव् जावुनु वत्तायि (दुषिजत्तायि) हे वृष्णिवंशंतु जल्लेल्या कुल स्त्रीयो बल्लाव् जल्यारी वर्ण्ण सर्वै भर्सल्यावरि जावुनु भविजत्त्ने। (वर्ण्ण भोर्सूनु वेगले जत्त्ने)।

४२. सङ्करो नरकायैव कुलघ्नानां कुलस्य च ।
पतन्ति पितरो ह्येषां लुप्तपिण्डोदकक्रियाः ।

वर्ग् भर्सल्ले पसावत् (भर्सल्ले निमित्ति) कुलाक् नाशु कोर्चांक्यि कुलाक्यि नरक् कर्त्त्ने। तंगेले पित्रांक् कोर्चे पितृकैरिं (पिण्डक्रिया, उदकक्रिय, बलि, पूज एश्शि सर्वै अस्सिन्ने कैरिं) कांयि पुणै पावनत्तिन्ने जावुनु अधप्पतन् पंव्ता।

४३. दोषैरेतैः कुलघ्नानां वर्णसङ्करकारकैः ।
उत्साधन्ते जातिधर्माः कुलधर्माश्च शाश्वताः ।

वर्ण् भर्स्प् सम्भवु कोर्चे कुलाक् नाशु कोर्चाले एा दोषान् शश्वत् जावुनऽस्सिल्ले जातिधर्म्म्यि कुलधर्मयि क्षयिजावुनु व्त्ता।

४४. उत्सन्नकुलधर्माणां मनुष्याणां जनार्दन !
नरकेऽनियतं वासो भवतीत्यनुशुश्रुम ।

हे जनार्दना कुलधर्म सर्वै क्षयु पावुनस्सिले मनुष्याल् वासु नरक्.... चि ह्मोणु हम्मि अयिक्किल्लस्समू।

४५. अहो बत महत्पापं कर्तुं व्यवसिता वयम् ।
यद्राज्यसुखलोभेन हन्तुं स्वजनमुद्यताः ।

हो होल्ले पाप् कोरुक् अम्मि देव्नियायि, राज्य मेल्नु सुख बोग्गुक ह्मल्लेले अत्याग्रहान् स्वजनांक् दिंश्मिारूक् हम्मि श्रमु कड्तायि मु।

४६. यदि मामप्रतीकारमशस्त्रं शस्त्रपाणयः ।
धार्तराष्ट्रा रणे हन्युस्तन्मे क्षेमतरं भवेत् ।

आयुध् दोर्न्नस्सिल्ले दुर्योधनादीन् आयुध् काणुनत्तिल्ले मक्क युद्धांतु दिंश्मिर्लो जल्यारीयि तेंचि त् मक्क होड् क्षेम् जावुनऽस्सिल्ले कैरि। (चांग् कैरि)।

सञ्जय उवाचः

४७. एवमुक्त्वार्जुनः संख्ये रथोपस्थ उपाविशत् ।
विसृज्य सशरं चापं शोकसंविग्नमानसः ।

सञ्जयु धृतराष्ट्रालग्गि सङग्त– एश्शि सग्गयि (ए प्रकारि सर्वै) सङगून् अर्जूनु होड् दुखान् धोण्णूयि बाणूयि खल्लाक् दोव्वोरु तेरा तटयारि बेस्तल्लो जल्लो।

ॐ तत्सदितिश्रीमद् भगवद्गीतासूपनिषत्सु
ब्रहमविध्यायां योगशास्त्रे श्रीकृष्णार्जुन संवादेऽर्जुन
विषादयोगो नाम प्रथमोऽध्यायः।

ॐ-तत् सत् एश्शि श्रीमद् भगवद्गीतांतूले उपनिष–
ततांतुले ब्रह्मविदध्यांतुले योगशास्त्रांतुले श्रीकृष्णार्जुन
संवादांतु अर्जुन विषादयोगु ह्मल्लोलो प्रथमऽध्यायु समाप्त्।

*****



अध्याय - २
सांख्य योगु

संञ्जय उवाच –

१. तं तथा कृपयाविष्टमश्रुपूर्णाकुलेक्षणम् ।
विषीदन्तमिदं वाक्यमुवाच मधुसूदनः ।

संञ्जयु धृतराष्ट्रालग्गि संङग्त –

एश्शी (येप्रकारि) दयालुजावुनु अस्सिल्लोयि भारि (होल्ले) विषमान् दोले भोर्नूयि दुखितूयि जावुनऽस्सिल्ले अर्जुनालग्गि कृष्णु संङ्ग्त इत्तिकी ह्मल्लेरि –

श्रीभगवानुवाच–

२. कुतस्त्वा कश्मलमिदं विषमे समुपस्थितम् ।
अनार्यजुष्टमस्वर्ग्यमकीर्त्तिकरमर्जुन !

हे अर्जुना ए विषमखटारि श्रेष्ट् जावुनऽस्सिल्लेंक् योजित् जावुनत्तिल्लेंयि, स्वर्गप्राप्तीक् विपरीत्यि, दुष्कीर्त्तिक्र्यि, जावुनऽस्सिल्लि यीं कैरि कोरूक् बुद्धि तुक्क क्शिश दिस्स्ली?

३. क्लैब्यं मा स्म गमः पार्थ! नैतत्त्वय्युपपधते ।
क्षुद्रं हृदयदौर्बल्यं त्यक्त्वोत्तिष्ठ परंतप !

अर्जुना एश्शि पौरुष् नत्तिल्लि अवस्थ तुक्क एम्चाक प्ण। तें तुक्क योग्य न्यि। हे शत्रुनाशका ओड् नत्तिल्ले ये "मन्नांतूले क्षीण्" प्र्गल्नु उट्टावुनु यो।

आर्जुन उवाच–

४. कथं भीष्ममहं संख्ये द्रोणं च मधुसूदन ।
इषुभिः प्रतियोत्स्यामि पूजार्हावरिसूदन ।

ते समयारि अर्जुनु कृष्णलग्गि संङग्तजल्लो – शत्रुनाशु हडचो हे मधुसूदना, "पूजनीय् जावुनऽस्सिल्ले" भीष्मराक्यि, द्रोणराक्यि क्शिकी हांव् अस्त्र् प्रयोगन् मर्तोनो युद्ध् कोर्त्तोलो।

५. गुरूनहत्वा हि महानुभावान् श्रेयो भोक्तुं भैक्ष्यमपीह लोके।
हत्वार्थकामांस्तु गुरूनिहैव भुञ्जीय भोगान् रुधिरप्रदिग्धान् ।

महानुभाव् जावुनऽस्सिल्ले गुरूंक् दिंशिमार्नु जीवित् कडचापशि चांग् ये लोकांतु भिक्ष काणु जीवित् कोर्चे त्। गुरूंक् दिंशिमर्लेरि अंग रग्ग्त् लग्गन्ने भोग् अनुभवु कोर्का जत्त्ने।

६. न चैतद्विद्मः कतरन्नो गरीयो यद्वा जयेम यदि वा नो जयेयुः ।
यानेव हत्वा न जिजीविषाम स्तेऽवस्थिताः प्रमुखे धार्तराष्ट्राः ।

दुर्योधनादीलग्गि हम्मि जयु पंत्नि कि अंचेरि तन्नि जयु पंत्नि ह्मोण् कांयि क्ल्न। हंतु खंचे श्रेष्ट मोणूयि क्ल्न। कोणक् दिंशिमारनु जीवित् नक्क ह्मोण् अम्मि आग्रहु कडतायि तन्नि – ते दुर्योधनादि लोकु त् हंचेरि युद्ध् कोरूक् तर्य्या जावुनु रब्बीलिंयायि।

७. कार्पण्यदोषोपहतस्वभावः पृच्छामि त्वां धर्मसंमूढचेताः ।
यच्छ्रेयः स्यान्निश्चितं ब्रूहि तन्मे
शिष्यस्तेऽहं शाधि मां त्वां प्रपन्नम् ।

आत्मावाक् निप्पोवुनु दोवोर्चे अज्ञान् मिग्गेल् स्वभावांतु हल्लेल् व्यत्यासा परसूनु धर्माक्यि अधर्माक्यि मन्नांकोरूक् जावुनत्तिन्ने "मूढचित्" जावुनऽस्सिल्लो हांव् तुज्जेलग्गि निंगीत। "हे देवा मक्क श्रेयस्कर् जावुनस्सिल्ले इत्तिकी ते मक्क तीर्तु– जावुनु (दृड जावुनु) संगून् दिय्यायि। हांव् तुग्गेलो शिष्य त्। हांव् तुक्क शरण् पवला। मक्क जांकजल्लोल् उपदेशु दींका।

८. न हि प्रपश्यामि ममापनुधाद् यच्छोकमुच्छोषणमिन्द्रियाणाम् ।
अवाप्य भूमावसपत्नमृद्धं राज्यं सुराणामपि चाधिपत्यम् ।

ए भूमीरि शत्रुनत्तिन्नेयि समृद्धि जावुनस्सिन्नेयि एक राज्य् जावो देवेन्द्र स्थान् जावो होल्ले जल्यारीयि एकु प्रयोजनूयि दिक्कूएना। कारण् इत्तिकी ह्मलेरि, मिग्गेल् इन्द्रियांक् सवै ब्ल् नत्तिल्ले जंचे लेक्कान् कोर्चे मिग्गेल् व्यसनाचो नाशु क्श्शी क्र्प् ह्मोण् मक्क दिक्कूक् एना। (मनांतु जाय्न)। ये दुखाक् एकि निवर्त्तीयि जाय्न।

सञ्जय उवाच –

९. एवमुकत्वा हृषीकेशं गुडाकेशः परंतप ।
न योत्स्य इति गोविन्दमुक्त्वा तूष्णीं बभूव ह ।

सञ्जयान् सङ्गीने–

एलेक्कान् सग्गय् (सर्वै) सङ्गूनु "हांव् अनीक् युद्ध कोर्ना' हमोण् शत्रूंक भिसराम्चे अर्जुनान् कृष्णलग्गि सङ्गूनु उल्लोवुनत्तिन्ने (मौनान्) बेस्सोलो।

१०. तमुवाच हृषीकेशः प्रहसन्निव भारत ।
सेनयोरुभयोर्मध्ये विषीदन्तमिदं वचः ।

हे धृतराष्ट्रमहारय्या दोन्नीयि सैन्याचेयि म्द्दे (मद्ध्य भागरि) एश्शि विषादान् बेस्सल्ले अर्जुनालग्गि मन्दहासा तोण्डान् श्रीकृष्णन् संङ्गीने -

श्री भगवानुवाच –

११. अशोच्यानन्वशोचस्त्वं प्रज्ञावादांश्च भाषसे ।
गतासूनगतासूंश्च नानुशोचन्ति पण्डिताः ।

देवान संङ्गीने–हे अर्जुना "दुख् काडुका नक्क जावुनऽस्सिल्ले जनाल् कैरेंतु तू दुख कड्त। विद्वत् जना मतिरीन् उल्लेयितायि। विवेकु अस्सिन्नि मेल्लेले पस्सून् जावो जीविजावुनु अस्सिल्लेल् पस्सून् जावो दुख् काडनायि (दुख् पावनायि)।

१२. न त्वेवाहं जातु नासं न त्वं नेमे जनाधिपाः ।
न चैव न भविष्यामः सर्वे वयमतः परम् ।

तूवेयि ना जल्लोना। ए दिक्कूक् एंचे सकल् (सर्वै) रय्येयि त्श्शीचि ना जल्लेल् ना। अनिक्यि (भावींतु) अम्मि कोण् ना जंना।

१३. देहिनोऽस्मिन्यथा देहे कौमारं यौवनं जरा ।
तथा देहान्तरप्राप्तिर्धीरस्तत्र न मुह्यति ।

देहाभिमानस्सिल्ले ए देहांतु कौमार्, यौवन्, जरानर ई अवस्त सर्वै क्श्शी संभविजत्त- तश्शीचि अंगेलो आत्मावु एक देह सोणु वेग्ग्ळे एक्कांतु प्रवेशु कर्ता। अरिव् अश्शिन्नि (ज्ञानि लोकु) ए माटांतु (एश्शि जायिनाभडेन्) मोहु क्र्नायि।

१४. **मात्रास्पर्शास्तु कौन्तेय शीतोष्णसुखदुःखदाः ।**
आगमापायिनोऽनित्यास्तांस्तितिक्षस्व भारत ।

हे कुन्तीपुत्रा–इन्द्रियांक्यि विषयांक्यि जावुनऽस्सिल्ले संबक्कां खत्तीरि जंचेयि, एवुनूयि ओछूनूयि अस्सिन्नेयि, शेलोवु, उष्ण् सुख्, दुख् ये अवस्थ सर्वै अनित्य् त्। (शश्वत् न्यि) ते पसावत् हे भारता तूं तें सहन्क्रि।

१५. **यं हि न व्यथयन्त्येते पुरुषं पुरुषर्षभ !**
समदुःखसुखं धीरं सोऽमृतत्वाय कल्पते ।

हे पुरुषश्रेष्टा, सुखांतूयि दुखांतूयि समचित्ततेन् (एक्क्मन्नान्) विवेकूयि दोर्नु अंतुकांयि व्यसन् कोर्नत्तिन्ने खोंचो पुरुषु जीवित् कर्त (जीवित् कडता) तो मनीषु त् मोक्षु पंचाक् योग्य् (अर्हत) जावुनऽस्सिल्लो।

१६. **नासतो विद्यते भावो नाभावो विद्यते सतः ।**
उभयोरपि दृष्टोऽन्तस्त्वनयोस्तत्वदर्शिभिः ।

नत्तिल्ले एक्काक् अस्स् ह्मल्लेले अवस्थ ना। त्श्शीचि अस्सिल्ले एक्काक् ना ह्मल्लेले अवस्थायि ना। ये दोन्नीचेयि सूक्ष्मत्व भाव् तत्व्ज्ञानि जावुनऽस्सिल्लेनि मन्नांकेल्लेनस्स्यि।

१७. **अविनाशि तु तद्विद्धि येन सर्वमिदं ततम् ।**
विनाशमव्ययस्यास्य न कश्चित्कर्तुमर्हति ।

यो विश्वव्यापक् जावुनऽस्सिल्लो अत्मावुः नाशु नत्तिल्लो त्। यें देहादि प्रपञ्ज सर्वै खंचारि व्यापक जावुनस्सकी तो "बृहम्म" नाशु नत्तिल्लो ह्मोणु मन्नांक्रि। नाशुनत्तिल्ले तक्क नाशु कोरूक् कोणचान् साद्ध्य न्यि।

१८. **अन्तवन्त इमे देहा नित्यस्योक्ताः शरीरिणः ।**
अनाशिनोऽप्रमेयस्य तस्माधुध्यस्व भारत ।

नित्य जावुनऽस्सिल्लोयि, नाशूनत्तिल्लोयि प्रमाणन् जाण्जंचाक् जावुनत्तिल्लोयि अवस्थेरस्सिल्ले आत्मावाले ए देह् सर्वै नाशु अस्सिल्लें ह्मोणु संङ्गतायि। ते पसावत् (ते कारणन्) हे भारता तू युद्ध क्री-ह्मोणु श्रीकृष्णन् अर्जुनालग्गि संङ्गीने।

१९. य एनं वेत्ति हन्तारं यश्चैनं मन्यते हतम् ।
उभौ तौ न विजानीतो नायं हन्ति न हन्यते ।

यो अत्मावु दिंशिमर्ल्लोलो ह्मोणु जावो, दिंशिमर्चो हमोणु जावो मनांकोर्चि दोन्नीयि जाण् आत्मावाक् व्ल्क्कनायि। ये आत्मावाक् दिंशिमारूक् जावो, दिंशिमर्लोल् जावो कोरूक् जंन (क्रनायि कांयिपुणेयि जायना)।

२०. न जायते म्रियते वा कदाचिन्नायं भूत्वा भविता वा न भूयः ।
अजो नित्यः शाश्वतोऽयं पुराणो न हन्यते हन्यमाने शरीरे ।

आत्मावाक् जननेयि मरणेयि न। तें नित्य्यि शश्वत्यि त्। आदिकालु धक्कूँ अस्सिन्नेयि त्। शरीराक् दिंशिमर्लेरीयि तंतूले आत्मावाक् दिंशिमारनायि तक्क नाशु जाय्ना।

२१. वेदाविनाशिनं नित्यं य एनमजमव्ययम् ।
कथं स पुरुषः पार्थ कं घातयति हन्ति कम् ।

हे अर्जुना कोणकी आत्मावाक् नाशुनत्तिल्लोयि, जनन-मरण इत्यादीक् नत्तिल्लोयि ह्मोणु मनांकर्ता, तश्शि अस्सिल्लेक कोणकयि दिंशिमारूक् जावो मार्व्प् कोरूक् जावो क्शिशि जत्त्ने।

२२. वासांसि जीर्ण्णनि यथा विहाय नवानि गृह्णाति नरोऽपराणि ।
तथा शरीराणि विहाय जीर्णान्यन्यानि संयाति नवानि देही ।

मनीषु जीर्णित् जावुनऽस्सिल्ले वस्त्र् पेल्लेन् गाल्नु नवे वस्त्र् स्वीकार कर्त्तल्ले वरीचि त् जीर्ण् जावुनऽस्सिल्ले देहांतु बेस्सल्लो आत्मावु शरीर् उपेक्ष कोर्नु नवे शरीराक् स्वीकारु कर्ता।

२३. नैनं छिन्दन्ति शस्त्राणि नैनं दहति पावकः ।
न चैनं क्लेदयन्त्यापो न शोषयति मारुतः ।

ये आत्मावाक् आयुध् गयु घाल्न। अग्नीन् दहन् कोरुक् जंना। उदकान् तिम्मोंचाक्यि जंन। वायून् ज्डाणि ऊणे कोरूक्यि जंना।

२४. अच्छेद्योऽयमदाह्योऽयमक्लेद्योऽशोष्य एव च ।
नित्यः सर्वगतः स्थाणुरचलोऽयं सनातनः ।

यो आत्मावु कुटीके कोरूक् जावुनत्तिल्लोयि, द्हन् कोरुक् जावुनत्तिल्लोयि, सुक्कोंचाक् जावुनत्तिल्लोय्, आर्द्रत हाडूक् जंचोयि न्यि। यो आत्मावु नाशु नत्तिल्लोयि सर्वै स्थलारीयि भोर्नऽस्सिलोयि स्थिर्यि चञ्जल् स्वभावु नत्तिलोयि (रूप व्यत्यासु कोर्नत्तिल्लोयि) आदीयि अन्त्यि नत्तिलोयि त्।

२५. अव्यक्तोऽयमचिन्त्योऽयमविकार्योऽयमुच्यते ।
तस्मादेवं विदित्वैनं नानुशोचितुमर्हसि ।

यो आत्मावु अव्यक्तु त्। चिन्त कोरूक्यि, विकारु कोरोंचाक्यि कोल्नत्तिलो (जावुनत्तिल्लो) ह्मोण् सङ्गतायि। एश्शि ए आत्मावाक् शरि जावुनु जाण् जावुनु तू दुखितु जंचाक् अर्हु न्यि।

२६. अथ चैनं नित्यजातं नित्यं वा मन्यसे मृतम् ।
तथापि त्वं महाबाहो नैवं शोचितुमर्हसि ।

हे अर्जुना–

यो आत्मावु केद्नायि (नित्य्) जनन् गेत्तायि अनीक् केदनायि मरण् कर्तायि (केदनायि जनन्-मरण् कोर्चोयि) ह्मोण् मनांकेल्यारीयि तूं दुख् कोरुकाजल्लेल् कैरिं ना।

२७. जातस्य हि ध्रुवो मृत्युर्ध्रुवं जन्म मृतस्य च ।
तस्मादपरिहार्येऽर्थे न त्वं शोचितुमर्हसि ।

जन्म घेत्तल्यांक् मर्ण्यि, मरण् जल्लेलेंक् जनन्यि निश्चयु त्। तश्शि परिहारु नत्तिल्ले हंतु तुक्क दुख् जंचाक् अवकाशु ना।

२८. अव्यक्तादीनि भूतानि व्यक्तमध्यानि भारत ।
अव्यक्तनिधनान्येव तत्र का परिदेवना ।

सर्व जीवीयोयि जनन् घेंचे फूडे अव्यक्त् त् (दिक्कूक् एंचे न्यि) जनन्शेष् (मद्ध्य् कालाक्–मद्ध्य दशेरि) दिक्कूक् एंचे जत्त। मरण् उपरांते दिक्कू एना जत्त। हे भारता हंतु तू इत्याक् दुखितु जत्ता।

२९. आश्चर्यवत्पश्यति कश्चिदेन- माश्चर्यवद्वदति तथैव चान्यः ।
आश्चर्यवच्चैनमन्यः श्रृणोति श्रुत्वाप्येनं वेद न चैव कश्चित् ।

एक्कोलो आत्मावाक् आश्चर्य वस्तु जावुनु दिक्क्त। अनि एक्कोलो अक्क आश्चर्यामतिरीन् सङग्त। वेग्गेलो एक्कोलो आश्चर्यजावुनऽस्सिल्ले एक् साथना मतिरीन् अय्क्त। एश्शि अय्क्तायीयि, सर्वै (स्ग्ग्) कर्तायीयि जलयारीयि शरिजावुनु हक्क मनां कोर्चो कोण्पुणै न।

३०. देही नित्यमवध्योऽयं देहे सर्वस्य भारत ।
तस्मात्सर्वाणि भूतानि न त्वं शोचितुमर्हसि ।

हे भारत सर्व जनांलेयि देहांतु अस्सिल्लो यो आत्मावु केदनायि पुणै (एक्क् कालाक्यि) दिंश्मिारुक् वौसुच्चो न्यि (साद्ध्य जंचो न्यि)। ते पसावत् तूवे क्स्सल् प्राणीचे पसूनूयि दुख् काडुका (कोरुका) जल्लेलें कैरिं न। (तू दुखि जंचाक् अर्हु न्यि।)।

३१. स्वधर्ममपि चावेक्ष्य न विकम्पितुमर्हसि ।
धर्म्याद्धि युद्धाच्छ्रेयोऽन्यत्क्षत्रियस्य न विद्यते ।

तुगेले धर्मापसूनु आलोचन् कोर्नु तूवे परिभृमु काडुका जलेल् (कोर्का जलेल्) कैरि न। कारण् इत्तिकी ह्मल्लेरि क्षत्रियालो धर्म्मु "धर्म्म् युद्ध् क्र्प् त्"। तज्जापशि श्रेष्टजावुनु क्षत्रियांक् कांयिना।

३२. यदृच्छया चोपपन्नं स्वर्गद्वारमपावृतम् ।
सुखिनः क्षत्रियाः पार्थ लभन्ते युद्धमीदृशम् ।

हे अर्जुना यदृछया (अठोवुनु-उडगासु कोर्नत्तिन्ने) एयलेनेयि, काणुगल्लेने स्वर्ग्गद्वार्चि स्वर्ग्गकव्व्ड्चि जावुनऽस्सिल्ले ए मतिरीनस्सिन्ने युद्ध् कोरूक् अवसर मेल्चे क्षत्रिय् सुखियोचि त् (भाग्यवन्त्चि त्)।

३३. अथ चेत्त्वमिमं धर्म्यं संग्रामं न करिष्यसि ।
ततः स्वधर्मं कीर्तिं च हित्वा पापमवाप्स्यसि ।

ये धर्म्म युद्ध तूं केल्लेना जल्यारि तुग्गेले स्वधर्मयि कीर्त्तीयि वोच्चूनु पाप् भोग्गुक जत्त्ने।

३४. अकीर्तिं चापि भूतानि कथयिष्यन्ति तेऽव्ययाम् ।
सम्भावितस्य चाकीर्तिर्मरणादतिरिच्यते ।

सर्व जीवजाल्यि तुक्क सहन् जावुनऽत्तिल्ले लेक्कान् अपकीर्त्ति(बल्लाव्) संगून् कर्त्त्नि (संङ्गून् बोंत्नि्)। अभिमानि जावुनऽस्सिल्लेंक् अपकीर्त्ति (बल्लाव् अय्क्प्) मरणपश्शि दुख् त्। (कष्ट् कोर्चे त्।)

३५. भयाद्रणादुपरतं मंस्यन्ते त्वां महारथाः ।
येषां च त्वं बहुमतो भूत्वा यास्यसि लाघवम् ।

तूं युद्धांतु धक्कून् मकलेन् सोर्लो ह्मोण् महारथ् जावुनऽस्सिल्ले अष्टेयत्नि। तश्शि तन्नि सर्वै बहुमानु कोर्चो तू एकु कांयिपुणै कोल्नत्तिल्लो जावुनु वोत्तोलोयि।

३६. अवाच्यवादांश्च बहून्वदिष्यन्ति तवाहिताः ।
निन्दन्तस्तव सामर्थ्यं ततो दुःखतरं नु किम् ।

तुग्गेले शत्रु सर्वै समर्थु जावुनश्शिल्ले तुक्क निन्द कोर्नु नक्क जलेने सर्वै सङ्गून् बोंत्ले। तज्जापश्शि होड् एक् दुख् जावुनु तुक्क अनीक् इत्तिकी एंचाक् अस्स्।

३७. हतो व प्राप्स्यसि स्वर्गं जित्वा वा भोक्ष्यसे महीम् ।
तस्मादुत्तिष्ठ कौन्तेय युद्धाय कृतनिश्चयः ।

हे अर्जुना मेल्लेरि तुक्क वीर् स्वर्ग्ग् प्राप्ति। जयि जल्लेरि तुक्क राज्य् मेल्त। तें दुक्कून् (ते पसावत्) तू युद्ध कोरुक् (निश्चयु) तीरुमान् कोर्नु उटावुनु यो।

३८. सुखदुःखे समे कृत्वा लाभालाभौ जयाजयौ ।
ततो युद्धाय युज्यस्व नैवं पापमवाप्स्यसि ।

सूख्यि दुख्यि, लाभूयि नष्ट्यि, जय्यि अपजय्यि एक्क् मतिरीन् लेक्कूनु युद्ध् कोरुक् तीरुमान् (निश्वयु) क्री। तश्शि केल्यारि तूं पापांतु पोण्ण (तुक्क पाप् मेळ्ना)।

३९. एषा तेऽभिहिता सांख्ये बुद्धिर्योगे त्विमां शृणु ।
बुद्ध्या युक्तो यया पार्थ कर्मबन्धं प्रहास्यसि ।

अत्त् पर्यान् सङिग्न्ने सांख्य् योगुत् ह्मल्लेरि आत्म तत्व् विषयु त्। अनीक् सङ्गूक् व्च्चे योग बुद्धी पसून् त्। अय्क्कुक– हे पार्थ, ई बुद्धी मेलचेक् कर्म बन्ध् दूर काडुक् (दूर कोरुक्) जत्त्ने।

४०. नेहाभिक्रमनाशोऽस्ति प्रत्यवायो न विधते ।
स्वल्पमप्यस्य धर्मस्य त्रायते महतो भयात् ।

कर्म योग परिशीलन् संबन्ध् जावुनऽसिल्लि प्रवृत्ति कांयि पुणै फ्ल् नत्तिन्ने जंना। आरंभु कोर्नु रब्बेयलेरीयि एकु दोषूयि जंन। उणे (स्वल्प जावुनु) परिशीलन् केल्यारीयि तें होल्ले संसारा भयांतु धक्कून् रक्षा कर्त्ने।

४१. व्यवसायात्मिका बुद्धिरेकेह कुरुनन्दन ।
बहुशाखा ह्यनन्ताश्च बुद्धयोऽव्यवसायिनाम् ।

हे कुरुवंशपुत्रा–निश्चय् स्वरूपस्सिल्लि बुद्धि एक्कीचि त् अस्स्। निश्चय् स्वरूप् नत्तिल्लेलि बुद्धि (निश्चयु जावुनु रब्बोंचाक् जावुनत्तिलेलि बुद्धि) अनेक् शखानि भर्ल्लेलीयि अन्त् नत्तिल्लीयि त्।

४२. यामिमां पुष्पितां वाचं प्रवदन्त्यविपश्चितः ।
वेदवादरताः पार्थ नान्यदस्तीति वादिनः ।

४३. कामात्मानः स्वर्गपरा जन्मकर्मफलप्रदाम् ।
क्रियाविशेषबहुलां भोगैश्वर्यगतिं प्रति ।

४४. भोगैश्वर्यप्रसक्तानां तयापहृतचेतसाम् ।
व्यवसायात्मिका बुद्धिः समाधौ न विधीयते ।

हे अर्जुना "वेदांतूल् फलापसून् वादु कोरूक् तात्पर्यस्सिन्नीयि, तज्जे भायिर् वेग्गले कांयि न ह्मोण् वादु कोर्चीयि संसार विषयांतु आश (आग्रहु)

भर्ल्लेले मन्त्र् अस्सिन्नीयि, स्वर्गक् आग्रहु कोर्चीयि, मूढात्मावु जावुनऽस्सिन्नि सर्वै जाण् जन्म् कर्म् फल् सर्वै दिंचेयि भोगक्यि ऐश्वर्याक्यि जावुनु जैत्ते प्रवर्त्तना पसून् विवरण् कोर्चेयि–पुष्पित् जावुनऽस्सिल्ले (नत्तिल्ले कैरिं कोर्नु संगून् बोंचे) वर्त्तमान् उल्लोंचांतु मन्त्र् पोणु (मन्त्र् तश्शि अधीन् जंचे) जल्लेनीयि तज्जान् (ते मन्नान्) भोगंतूयि ऐश्वर्यांतूयि आसक्त् जावुनु तंक समाधीरि मन्त्र् दोवोरु प्रर्वत्तन् कोरूक् अस्सिल्लि बुद्धि नां जत्ता।

४५. त्रैगुण्यविषया वेदा निस्त्रैगुण्यो भवार्जुन ।
निर्द्वन्द्वो नित्यसत्वस्थो निर्योगक्षेम आत्मवान् ।

त्रिगुणपसून् (तामस् राजस् सात्विक्) सिक्कोंचो त् वेदु। तें दुक्कून् (तें पसावत्) हे अर्जुना ये तीनि गुणंतु धक्कूनूयि दूर्सोर्नु, सुखांतूयि दुखांतूयि, इष्टांतूयि अनिष्टांतूयि एक्क् मन्नान् (सम्चित्ततेन्) नित्य् सात्विकु जावुनु मन्नाक् (विषयांक् अधीनु जावुनत्तिन्ने) आत्मावांतु निश्चयु जावुनु (द्रड कोर्नु) दौरूक् यत्न् कोर्का।

४६. यावानर्थ उदपाने सर्वतः सम्प्लुतोदके ।
तावान्सर्वेषु वेदेषु ब्राह्मणस्य विजानतः ।

सर्वै स्थलारीयि उद्दाक् भोरु प्ल्लेल् समयारि (वेलारि) बांइ; तोले् अज्जे् पसून् इत्ति प्रयोजोनु कि अस्स्। उतुलेंचित् एक् बृह्मज्ञानीक् सर्व वेदांतु धक्कूनूयि मेळत्ले (मेळचे अस्स्)।

४७. कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन ।
मा कर्मफलहेतुर्भूर्मा ते संङ्गोऽस्त्वकर्मणि ।

तुक्क प्रवर्त्ति कोरूक् मात्र त् अधिकारस्स्। कर्म फलाक् तुक्क अधिकारु न। फल् कांक्षिच्चु कोर्नु (फलाचे कांक्ष मन्नांतु दोवोर्नु) कस्सल् कर्म् कोरूक् प्ण। जल्यारि कर्म् कोर्नत्तिन्ने रब्बूक्यि प्ण।

४८. योगस्थः कुरु कर्माणि सङगं त्यक्त्वा धनञ्जय ।
सिद्ध्यसिद्ध्योः समो भूत्वा समत्वं योग उच्यते ।

हे पर्थि आसक्ति नत्तिल्ले योगनिष्ट जावुनु फल् प्राप्ति मेल्लेरीयि नां जल्लेरीयि समचित्ततेन् प्रवर्त्ति् कोरुक। तश्शि अस्सिल्ले समचित्ततेक् त्

योगु ह्मोण् सङ्ग्तायि।

४९. दूरेण ह्यवरं कर्म बुद्धियोगाद्धनञ्जय ।
बुद्धौ शरणमन्विच्छ कृपणाः फलहेतवः ।

फ्ल् मेल्का ह्मल्लेले आग्रहान् कोर्चे कर्म् ज्ञानयोगपश्शि जैत्ते खल्लाक् त्। तें पसावत् (तें दुक्कून्) ज्ञान संपादनाक् (संपादन् कोरुक्) निष्काम कर्म् (फ्ल् इच्छि जावुनत्तिल्ले– फ्लाक् इच्छ कोर्नत्तिल्ले लेक्कानऽस्सिल्ले कर्म्) क्रि। फलाक् आग्रहु कोर्चि जन् दयनीय् जावुनु वत्तायि।

५०. बुद्धियुक्तो जहातीह उभे सुकृतदुष्कृते ।
तस्माधोगाय युज्यस्व योगः कर्मसु कौशलम् ।

सुखांतूयि दुखांतूयि समबुद्धीन् अस्सिल्लेक् पुण्य्यि पाप्यि ये जन्मांतूचि सोडतायि (नाजत्ता)। तें जल्लेपसावत् तू समचित्ततेन् ज्ञानयोगु मेल्वे बगेक् (निष्काम कर्म योगक् जावुनु) श्रमु कोर्का (श्रमु काडुका)। कर्मांतु अस्सिल्ले सामर्ध्य्चित् योगु ह्मोण् सङ्गुचे।

५१. कर्मजं बुद्धियुक्ता हि फलं त्यक्त्वा मनीषिणः ।
जन्मबन्धविनिर्मुक्ताः पदं गच्छन्त्यनामयम् ।

सुख दुखांतु एक् मन्न् जावुनऽस्सिल्ले कर्मफलाक् सोडतायि। तश्शि अस्सिल्लिं ज्ञान् मेल्नु जन्म् बन्धांतु धक्कून् विमुक्त्यि जत्तायि। ते उपरांते (अवसान्) दोषु कांयिपुणै नत्तिल्ले मोक्षु पंवत्तल्ले जत्तायि (तंक मोक्षु मेळ्ता)।

५२. यदा ते मोहकलिलं बुद्धिर्व्यतितरिष्यति ।
तदा गन्तासि निर्वेदं श्रोतव्यस्य श्रुतस्य च ।

देह त् आत्मावु ह्मल्लेले अज्ञान् दोषाक् तू केद्दाण तारण् कर्ता तव्व्लि (ते समयारि) तूं आजिपर्यांत् ऐक्किल्लेंतूयि ऐक्कूऽस्सिल्लेंतूयि वैराग्य बुद्धि अस्सिल्लो जत्तोलो।

५३. श्रुतिविप्रतिपन्ना ते यदा स्थास्यति निश्चला ।
समाधावचला बुद्धिस्तदा योगमवाप्स्यसि ।

जैत्ते तरानस्सिल्ले (विविध् तरानऽस्सिल्ले) वेद् शस्त्रा पस्सून् ऐक्कून् गुस्पूनस्सिल्लि बुद्धि (विविध् विचारान् भोरस्सिल्लि बुद्धि) केद्दाण की निश्चल् जावुनु परमात्माचेरि दृढजावुनु दवर्त्त तव्लि यथार्थ् (शरिजावुनऽस्सिल्लो) योगि जत्तोलो।

अर्जुन उवाच–

५४. स्थितप्रज्ञस्य का भाषा समाधिस्थस्य केशव ।
स्थितधीः किं प्रभाषेत किमासीत व्रजेत किम् ।

उतुलेंचि कृष्णलग्गि धक्कून् अयिक्कूनु अर्जुनान् निंगीने–

हे केशवा एक स्थित् मन्न् जावुनऽस्सिल्ले ज्ञानीने लक्षण् इत्तिकी? तो कश्शि समाधीरि रब्त। (जीवित् कर्ता-जीवित् कड्ता)? क्शिश उल्लेय्ता (तग्गेले उत्त्र क्शिश अस्सुचे की?) तो क्शिश बोंता।?

श्री भगवानुवाच–

५५. प्रजहाति यदा कामान्सर्वान्पार्थ मनोगतान् ।
आत्मन्येवात्मना तुष्टः स्थितप्रज्ञस्तदोच्यते ।

देवान् सङ्गीने– पार्था, मन्नांतु बोंचे सर्व कामाक्यि (मन्नांतूल् सर्व आग्रहाक्यि) निश्शेष् प्र् गाल्नु (मननाँतु कांयि पुणै दोवोरुनन्तिल्ले) आत्मावान् आत्मावांतूचि संतुष्टु जल्लेलेक् स्थित प्रज्ञु ह्मोण् सङ्गतायि।

५६. दुःखेष्वनुद्विग्नमनाः सुखेषु विगतस्पृहः ।
वीतरागभयक्रोधः स्थितधीर्मुनिरुच्यते ।

दुखांतु चलन्नत्तिन्नेयि, सुखांतु सन्तोषु नत्तिन्नेयि, रागु; भय् क्रोधु यें कांइ नत्तिल्ले जावुनऽस्सिल्ले मन्न् अस्सिल्ले पुरुषाक् स्थितप्रज्ञु जावुनऽस्सिल्लो मुनि (ऋषि) ह्मोण् सङ्गतायि।

५७. यः सर्वत्रानभिस्नेहस्तत्तत्प्राप्य शुभाशुभम् ।
नाभिनन्दति न द्वेष्टि तस्य प्रज्ञा प्रतिष्ठिता ।

कोण्की एक्कांतूयि आसक्ति (ओल्लो आग्रहु) नत्तिन्ने, तव्तव्लि प्राप्त् जावुनऽस्सिल्ले शुभ कैरेंक् अभिनन्दन् जावो अशुभ कैरेंक् कोपु क्र्प् जावो कोर्नत्तिन्ने रब्ब्ता तग्गेले प्रज्ञ प्रतिष्ठित् त्।

५८. यदा संहरते चायं कूर्मोऽङ्गानीव सर्वशः ।
इन्द्रियाणीन्द्रियार्थेभ्यस्तस्य प्रज्ञा प्रतिष्ठिता ।

कासोवु तग्गेल् सर्व अवयव्यि देहांतु बित्तेरि ओडुच्चे मतिरीन् इन्द्रियार्थांतु धक्कून् (इन्द्रियानि मेल्चे विषयांतु धक्कून्) इन्द्रियांक् केद्दाण प्ले एकलेक् मकलेन् काडूक् जत्त ते समयारि तग्गेलि प्रज्ञ पृतिष्टित् जावुनु रब्ब्त। (म्न्न् विषयासक्तींतु धक्कून् दोर्नु रब्बोंचाक् जायनाभडेन् तग्गेने प्रज्ञ प्रतिष्टित् जत्ता)।

५९. विषया विनिवर्तन्ते निराहारस्य देहिनः ।
रसवर्जं रसोऽप्यस्य परं दृष्ट्वा निवर्तते ।

निराहारु जावुनऽस्सिल्ले देहीक् (इन्द्रियानि विषयांक् अनुभवु कोर्नत्तिल्ले देहीक्) विषयु सर्वै दूर जत्त। जलयारि तंतु अस्सिन्ने रस् (तात्पर्य आसक्ति) तश्शीचि रब्ब्त। परमात्माक् दर्शन् केल्लेरि तग्गेलि ती आसक्तीयि पुस्सून् वत्त (नां जत्ता)।

६०. यततो ह्यपि कौन्तेय पुरुषस्य विपश्चितः ।
इन्द्रियाणि प्रमाथीनि हरन्ति प्रसभं मनः ।

हे कुन्दीपुत्रा, इन्द्रियनिग्रहाक् जावुनु प्रयत्नु कोर्चे (प्रयत्नु कड्चे) विद्वत् जावुनऽस्सिल्ले पुरुषाले मन्नाक् स्रि नांकोर्चे त् इन्द्रिय्। तें म्नाक् बलान् अपहारूयि कर्ता।

६१. तानि सर्वाणि संयम्य युक्त आसीत मत्परः ।
वशे हि यस्येन्द्रियाणि तस्य प्रज्ञा प्रतिष्ठिता ।

तें सर्वै सम्यमन् कोर्नु देवाक् म्न्नांतु दोर्नु योगयुक्तु जावुनु स्थिति कोर्क। तश्शि इन्द्रिय् सर्वै कोणक् दोरु रबोंचाक् जत्त की तग्गेल् प्रज्ञ

प्रतिष्टित् जत्त। इन्द्रियांक् जयु पवलोलो त् स्थित प्रज्ञु। तश्शि (५५-൦൦ श्लोकु धक्कून् ६१-൦൦ श्लोकु पर्यान् इन्द्रियांक् विषयासक्तींतु धक्कून् जयु पंचाक् अस्सिन्ने उपायूयि त्। इन्द्रियांक् जयु पवलोल् त् स्थितप्रज्ञु)।

६२. ध्यायतो विषयान्पुंसः सङ्गस्तेषूपजायते ।
सङ्गत्संजायते कामः कामात्क्रोधोऽभिजायते ।

६३. क्रोधाद्भवति सम्मोहः सम्मोहात्स्मृतिविभ्रमः ।
स्मृतिभ्रंशाद् बुद्धिनाशो बुद्धिनाशात्प्रणश्यति ।

विषय कैरिं ध्यानु कोर्चे (विषयांतु आसक्ति कोर्चे पसावत्) पुरुषाक् तंतु सङ्ग् जनन् गेत्ता। सङ्ग पसावत् काम् जत्त। कामांतु धक्कून् क्रोध् जत्ता।

क्रोधांतु धक्कून् मोहूयि, मोहा पसावत् स्मृति भ्रंशूयि, स्मृति भ्रंशांतु धक्कून् बुद्धि नाशूयि, बुद्धि नाशांतु धक्कून् मनुष्याक् नाशूयि जत्ता।

मनुष्याक
विषय कैरेंतु ध्यानु जत्त
|
संङ्ग् जत्त
|
कामु जत्त
|
क्रोधु जत्त
|
मोहु जत्त
|
स्मृति भ्रंशु जत्त
|
बुद्धि नाशु जत्त
|
नाशु जत्ता

६४. रागद्वेषवियुक्तैस्तु विषयानिन्द्रियैश्चरन् ।
आत्मवश्यैर्विधेयात्मा प्रसादमधिगच्छति ।

जलयारि रागद्वेष् नत्तिन्नेयि आत्मवश्य्यि जावुनऽस्सिल्ले इन्द्रियानि विषयांक् भोग्गुच्चे (अनुभवु कोर्चे) आत्मविजयि जावुनऽस्सिल्ले पुरुषाक् प्रसाद् मन्न् प्रापि जत्ता (मेळ्ता) (तश्शि अस्सिल्लेंक् मन्नांतु समाधान् मेळ्ता)।

६५. प्रसादे सर्वदुःखानां हानिरस्योपजायते ।
प्रसन्नचेतसो ह्याशु बुद्धिः पर्यवतिष्ठते ।

म्न्नाक प्रसादु (सौख्य्) मेल्नुजायनाफडेन् (मेल्लेले उपरांते) तक्क (तग्गेले) सर्व दुख्यि नाशु जावुनु व्त्ता। प्रसन्न् चित्त् जावुनऽस्सिल्लेलि बुद्धि ओग्गि सुप्रतिष्ठित्यि जत्ता।

६६. नास्ति बुद्धिरयुक्तस्य न चायुक्तस्य भावना ।
न चाभावयतः शान्तिरशान्तस्य कुतः सुखम् ।

अयुक्ताक् (योगयुक्ति नत्तिल्लेक्) एकाग्रबुद्धि ना। भावनायि न (ध्याननिष्ठ ना)। भावन नत्तिल्लेक् शान्ति न। अशान्तु जावुनऽस्सिल्लेक् सुख् खंत्यि? (तक्क सुख्यि नां जत्ता)।

६७. इन्द्रियाणां हि चरतां यन्मनोऽनु विधीयते ।
तदस्य हरति प्रज्ञां वायुर्नावमिवाम्भसि ।

इत्तिकी ह्मल्लेरि, विषयांतु बोंचे इन्द्रियांक् कोणने मन्न् अडिपेट् जत्त, (इन्द्रियानि विषया मकलेन् वच्चे मन्न्) तग्गोले प्रज्ञाक् (बुद्धीक्) झेटुवारे जलांतु देवेय्लेले मोंचुवाक् ओढूनु वोर्चे मण्के (ओढूनु वोर्चे मतिरीन्) ओढून् वर्त्ता।

६८. तस्माधस्य महाबाहो निगृहीतानि सर्वशः ।
इन्द्रियाणीन्द्रियार्थेभ्यस्तस्य प्रज्ञा प्रतिष्ठिता ।

हे महाबाहो तें दुक्कून् (ते पसावत्) कोणाले इन्द्रिय् सर्व प्रकारीनेयि इन्द्रियात्थांतु धक्कून् निश्शेष् जावुनु दोरु रब्बोंचाक जत्ता, तग्गेने प्रज्ञ प्रतिष्ठित् त्।

६९. या निशा सर्वभूतानां तस्यां जागर्ति संयमी ।
यस्यां जाग्रति भूतानि सा निशा पश्यतो मुनेः ।

खंचेकी आत्मनिष्टेन् सर्व भूतांक्यि राति जायना भडेन् संयमि जाग् रब्‌त, इत्यांतु (खंचेकी विषयानुभावारि) भूत् जाग् रब्‌त ते वेलेरि (at that time) सत्यदर्शि जावुनऽस्सिल्ले मुनींक राति जत्त। इत्यापसावत् ह्मल्लेरि भूतांले अज्ञान अन्धकार् अवस्थ मुनींक् योजित् जल्लेने न्यि।

७०. आपूर्यमाणमचलप्रतिष्ठं समुद्रमापः प्रविशन्ति यद्वत् ।
तद्वत्कामा यं प्रविशन्ति सर्वे स शान्तिमाप्नोति न कामकामी ।

समुद्रांतु जलप्रवाहु एवुनु श्क्तीन् पोणु गूवुनु मरिंझावुनु (उड्किमार्नु पोणु) बर्लेरीयि समुद्रु क्शिश क्षोभित् जावुनत्तिन्ने स्थिति कर्ता, तश्शीचि काम् (विषय् सवैं) इन्द्रिय्गोचर् जावुनु रबिलेरीयि कोण्की अक्षोभ्य जावुनु रब्‌त तक्क शान्ति मेळ्त्लि। जलयारि भोगांतु च्ड् आग्रहु अस्सिल्लेक एक्क् वेलारीयि शान्ति मेळ्ची ना।

७१. विहाय कामान्यः सर्वान्पुमांश्चरति निःस्पृहः ।
निर्ममो निरहङ्कारः स शान्तिमधिगच्छति ।

सर्व कामय् त्यज् कोर्नु (नकक हमोण् दोवोर्नु) खोंचो पुरुषु निस्पृहूयि, ममत नत्तिल्लोयि, अहंङ्कारु नत्तिल्लोयि (क्सल् कैरेंतु ओल्ले तात्पर्य दक्कोवुनत्तिन्नेयि, अहंकारु प्र्गलचोयि) जावुनु जीवित कड्त (कर्त) तक्क शन्ति मेळ्ता।

७२. एषा ब्राह्मी स्थितिः पार्थ नैनां प्राप्य विमुह्यति ।
स्थित्वास्यामन्तकालेऽपि ब्रह्मनिर्वाणमृच्छति ।

हे पार्थ, एंत् ब्राह्मनिष्ठ ह्मोण् संगूचे। ई स्थिति मेल्नु जलयारि मनुष्याक् मोहु आसक्ति (संसारासक्ति) एं कांयि जंन। अन्त्य् कालारि पुणै ई स्थिति जल्यारि ब्रह्म निर्वाण मेळ्त्ले (देवालग्गि पंचाक् अस्सिलो योगु मेळ्तोलो)।

ॐ तत्सदिति श्रीमद् भागवद्‌गीतासूपनिषत्सु ब्रहमविद्यायां योगशास्त्रे श्रीकृष्णार्जुन संवादे "सांख्ययोगो" नाम द्वितीयोऽध्यायः।

ॐ तत् सत् एश्शि श्रीमद् भागवद्‌गीतांतूले उपनिषत्तांतूले ब्रह्मविध्यांतूले योगशस्त्रांतुले श्रीकृष्णार्जुन संवादांतु "सांख्य योगु" ह्मोल्लोलो दुस्सेरो (२) अध्यायु समाप्तु।

*****



अध्याय - ३

कर्म योगु

अर्जुन उवाच–

१. ज्यायसी चेत्कर्मणस्ते मता बुद्धिर्जनार्दन !
तत्किं कर्मणि धोरे मां नियोजयसि केशव !

अजुनान् श्रीकृष्णलग्गि सङ्गीने–

हे जनार्दना, कर्मापश्शि बुद्धि त् श्रेष्ट् ह्मोण् कोल्चे देवा इत्याक् मक्क घोर् जावुनऽस्सिल्ले ये प्रवर्त्तीक् प्रवर्ति कोरूक् नियोगु दिल्लो।

२. व्यामिश्रेणेव वाक्येन बुद्धिं मोहयसीव मे ।
तदेकं वद निश्चित्य येन श्रेयोऽहमाप्नुयाम् ।

संङर्गीण् जावुनऽस्सिल्ले (गुस्पूनस्सिल्ले) ह्मोणुदिस्सुचे उत्तरानि मिग्गेले बुद्धीक् देवु भ्रमु कोर्चे मतिरीन् दिस्स्त। तें दुक्कून् (ते पसावत्) श्रेयस्स् इत्यान् की जत्त ह्मल्लेरि तें मक्क देवान्चि निश्चयु कोर्नु उपदेशु दींका।

३. लोकेऽस्मिन्द्विविधा निष्ठा पुरा प्रोक्ता मयानघ !
ज्ञानयोगेन सांख्यानां कर्मयोगेन योग्निाम् ।

हे निर्म्मल चित्ता (कलङग्नत्तिल्ले मन्न् अस्सिलया) ये लोकांतु सांख्य् क्ल्त्तल्लेले ज्ञानयोगनेयि, योग्यिाले कर्म योगनेयि जावुनु दोनि तर् निष्ठायि हाव् तुक्क फूडे संगून् दिल्ले मू ह्मोण् ते समयारि (at that time) श्रीकृष्ण परमात्मा अर्जुनालग्गि संङ्ग्त् जल्लो।

४. न कर्मणामनारम्भान्नैष्कर्म्यं पुरुषोऽश्नुते ।
न च संन्यसनादेव सिद्धिं समधिगच्छति ।

अम्मि कोर्काजल्लेने प्रवृत्ति कोर्नत्तिन्ने रबिलेरीयि नैष्कर्म्यस्थिति प्राप्य जायना। सन्यासु मात्र् जल्यारीयि सिद्धि मेळ्ना।

५. न हि कश्चित्क्षणमपि जातु तिष्ठत्यकर्मकृत् ।
कार्यते ह्यवशः कर्म सर्वः प्रकृतिजैर्गुणैः ।

इत्तिकी ह्मल्लेरि खोंचोकी एक्कोलोयि (एक्केक्केलेनीयि) अल्प समयाक् स्‌रि कर्म् कोर्नत्तिल्ले रब्बूक् प्‌ण। सर्व जन्‌यि प्रकृतींतु धक्कून् जल्लेले गुणनि प्रवृत्ति कोरोवुनु वत्तायि त्।

६. कर्मेन्द्रियाणि संयम्य य आस्ते मनसा स्मरन् ।
इन्द्रियार्थान्विमूढात्मा मिथ्याचारः स उच्यते ।

कर्मेन्द्रियांक् जांकाजलेल् मतिरीन् मनांकोर्नु प्रवर्त्ति कोर्नत्तिल्ले दोवोरु कोणकी इन्द्रियार्थापसून् सर्व वेलारीयि स्मरण् कोर्नु बेस्स्‌त, मूठात्मावु जावुनऽस्सिल्ले तक्क मथ्याचारु ह्मोणु सङ्‌गतायि।

७. यस्त्विन्द्रियाणि मनसा नियम्यारभतेऽर्जुन ।
कर्मेन्द्रियैः कर्मयोगमसक्तः स विशिष्यते ।

हे अर्जुनाः जल्यारि इन्द्रियांक् म्‌न्नान् नियन्त्रण् कोर्नु असक्तु जावुनु (एक्कांतूयि ओल्लि आसक्ति दक्कोवुनत्तिल्ले) कोणकी कर्मेन्द्रियानि कर्मयोगु अनुष्ठान कर्ता तो श्रेष्टु जत्ता।

८. नियतं कुरु कर्म त्वं कर्म ज्यायो ह्यकर्मणः ।
शरीरयात्रापि च ते न प्रसिद्ध्येदकर्मणः ।

तें दुक्कून् (ते पसावत्) तूवे मन्न् नियन्त्रण् कोर्क। इत्तिकी ह्मलेरि कर्म अकर्मा पशिश श्रेष्ठ्‌त्। प्रवृत्ति कोर्नत्तिल्लेक् शरीरयात्र (देहाचे पालन्) स्‌रि साध्य् जंना।

९. यज्ञार्थात्कर्मणोऽन्यत्र लोकोऽयं कर्मबन्धनः ।
तदर्थं कर्म कौन्तेय मुक्तसङ्‌गः समाचर ।

हे कुन्दीपुत्र, यज्ञार्थ जावुनऽस्सिल्ले कर्म् नन्त्‌न अस्सिल्ले सर्वविध् कर्मानीयि यो लोकु (जीवीयो) संबन्द् जावुनस्स्। ते पसावत् तू यज्ञाक् जावुनऽस्सिल्ले कर्म् संगरहितु जावुनु (मन्नांतु संङकर्ष् नत्तिन्ने दृडविश्वासान्) अनुष्ठान् कोर्का।

१०. सहयज्ञाः प्रजाः सृष्ट्वा पुरोवाच प्रजापतिः ।
अनेन प्रसविष्यध्वमेष वोऽस्त्विष्टकामधुक् ।

प्रजापतीन् (रय्यान्) जयत्तेकाल् फूडे (long ago) यज्ञाकूटांतु प्रजेक्यि सृष्टिकोर्नु सङ्गीने– "तुंक अज्जान् (यज्ञान्) कर्त्त्न अभिवृद्धि जावो"–यें तुंक इष्ट कामधेनु जावुनस्सो" ह्मोण्।

११. देवान्भावयतानेन ते देवा भावयन्तु वः ।
परस्परं भावयन्तः श्रेयः परमवाप्स्यथ ।

देवांक् अज्जान् (यज्ञान्) आराधन् क्रायि। ते देव् तुंक चङ्गपण् कर्त्त। त्शि परस्पर तृप्ति जावुनु परम्जावुनऽस्सिल्ले (लोकांतु अस्सिल्लेंतु ओल्ले-मेलुयात् जलेलेंतु ओल्ले) श्रेयस्साक् प्राप्त् जय्यायि।

१२. इष्टान्भोगान्हि- वो देवा दास्यन्ते यज्ञभाविताः ।
तैर्दत्तानप्रदायैभ्यो यो भुङ्क्ते स्तेन एव सः ।

इत्तिकी ह्मल्लेरि यज्ञान् प्रसादि जावुनु देव् तुंका इष्ट्जावुनऽस्सिल्ले भोग् दान् दित्तायि। तंक दान् कोर्नत्तिन्ने (यज्ञ कोर्नत्तिन्ने) तन्नि दिल्लेने भोग् (तंचान् मेल्लेने भोग्) अनुभवु कोर्चो (भोजन कोर्चो) कोण की तो चोरूचि त्।

१३. यज्ञशिष्टाशिनः सन्तो मुच्यन्ते सर्वकिल्बिषैः ।
भुञ्जते ते त्वघं पापा ये पचन्त्यात्मकारणात् ।

यज्ञ् कोर्नु जावुनु शेषिजावुनस्सिल्ले प्रसादाक् सेव कोर्चे (स्वीकार कोर्चे–खंचे) सर्व जन्यि – जीवीयि सवै पापांतूयि धक्कून् मुक्त जत्तायि। जल्यारि तंक तंक मात्र् जावुनु पचन्कोर्चि पापात्माव् पापाक्चि आहारु कर्त्तायि। (भोजन् कर्त्तायि)। (यज्ञ शिष्ट् जावुनऽस्सिल्लो प्रसादु अम्मि सग्गडांक्यि (सर्वांक्यि) जायना जल्यारीयि कोणक्यि पुणै दींका)।

१४. अन्नाद्भवन्ति भूतानि पर्जन्यादन्नसंभवः ।
यज्ञाद्भवति पर्जन्यो यज्ञः कर्मसमुद्भवः ।

कर्मांतु धक्कून् यज्ञ् जत्ता, यज्ञांतु धक्कून् पर्जन्युयि (वृष्टियि), पर्जन्यांतु धक्कून् अन्न्यि अन्नांतु धक्कून् भूत्यि जत्ता।

१५. कर्म ब्रह्मोद्भवं विद्धि ब्रह्माक्षरसमुद्भवम् ।
तस्मात्सर्वगतं ब्रह्म नित्यं यज्ञे प्रतिष्ठितम् ।

कर्म्, ब्रह्मांतु धक्कून् (माया प्रतिबिंबित् जावुनऽस्सिल्ले चैतन्यांतु धक्कून् उद्भवु जल्लोल् ह्मोण् मनांतु कोर्क। ब्रह्मम् अक्षरांतु धक्कून् उद्भविजल्ले। तें दुक्कून् (ते पसावत्) सर्वगत् जावुनऽस्सिल्ले (सग्गलेकडेयि अस्सुच्चे) ब्रहम्म् सर्वदा (स्ग्ग्वेलारीयि) यज्ञांतु प्रतिष्ठित् त्।

श्लोकु१४+१५

ब्रहम्मं–तंतु धक्कून्
|
कर्म
|
यज्ञ्
|
पर्जन्यु (वृष्टि) पावुसु
|
अन्न्
|
भूत (जीवियो)

१६. एवं प्रवर्तितं चक्रं नानुवर्तयतीह यः ।
अघायुरिन्द्रियारामो मोघं पार्थ स जीवति ।

हे पार्थ, ये प्रकारि प्रवर्त्तित्जावुनऽस्सिल्ले (कर्म्) चक्राक् कोणकी अङ्ग अनुवर्तन् क्र्ना् (प्रावर्त्तिक् क्र्न) तो पापात्मावूयि, इन्द्रियारामूयि (इन्दियार्थीतु रमिजंचो जावुनऽस्सिल्लो) जावुनु तग्गेले जीवित् निष्फ्ल् जत्त्ने।

१७. यस्त्वात्मरतिरेव स्यादात्मतृप्तश्च मानवः ।
आत्मन्येव च संतुष्टस्तस्य कार्यं न विद्यते ।

जल्यारि खोंचोकी मनीषु आत्मावांतु मात्र् रमिजंचोयि आत्मतृप्तूयि, आत्मावांतूचि सन्तुष्टूयि जावुनु रब्बिल्ले तक्क कोरुका जल्लेने (कर्म) कांयि पुणै ना।

१८. नैव तस्य कृतेनार्थो नाकृतेनेह कश्चन ।
न चास्य सर्वभूतेषु कश्चिदर्थव्यपाश्रयः ।

त्शि अस्सिल्लेक अङग कर्म् केल्लेरीयि (प्रवर्त्ति केल्लेरीयि) केल्लेनांजल्यारीयि कांयि प्रयोजोनु न। भूतांतु (जीवियांतु–क्स्सलयांतुयि) कोणलग्गी (कोणजावुनूयि) स्वप्रयोजनाक् जावुनऽस्सिल्ले बन्ध्यि तक्क न।

१९. तस्मादसक्तः सततं कार्यं कर्म समाचर ।
असक्तो ह्याचरन्कर्म परमाप्नोति पूरुषः ।

तें पसावत् सर्व वेलारीयि असक्तु जावुनु कोर्काजल्लेने कर्त्तव्य कर्म् कोर्का। इत्तिकी ह्मल्लेरि असक्तु जावुनु प्रवर्त्ति कोर्चो पुरुषु परमपदाक् प्राप्तु जत्ता (देवाले पय्यांकडे पंता)।

२०. कर्मणैव हि संसिद्धिमास्थिता जनकादयः ।
लोकसंग्रहमेवापि संपश्यन्कर्तुमर्हसि ।

तगतगेले प्रवर्त्तीन्त् जनकादीन् (जनकमहारय्या– मतिरीनस्सिल्यानि) संसिधीक् प्राप्य् जल्लेले। लोक संग्रहाक्चि मन्नांतु लक्ष्य दोवोर्नु प्रवर्त्ति कोर्चे त् तुग्गेले कर्त्तव्य्।

२१. यद्यदाचरति श्रेष्ठस्तत्तदेवेतरो जनः ।
स यत्प्रमाणं कुरुते लोकस्तदनुवर्तते ।

श्रेष्ठु जावुनऽस्सिल्लो इत्तित्याक् आचरण् कर्ता, सग्गटेयि (सर्वै जन्) ताणे कोर्चे लेक्कान् प्रवर्ति त् कर्तायि (तक्क अनुसरण् कर्त्ताय्)। तो इत्याक् (कसलयाक्) प्रमाण् जावुनु कड्त, लोक्यि त्शीचि कर्तायि।

२२. न मे पार्थास्ति कर्तव्यं त्रिषु लोकेषु किंचन ।
नानवाप्तमवाप्तव्यं वर्त एव च कर्मणि ।

हे पार्थ, मक्क कर्तव्य् जावुनु तिन्नीयि लोकांतूयि कांयि न अप्राप्त् जावुनस्सिन्ने प्राप्त् कोरुक्यि कांयि न जलयारीयि हांव मिग्गेले कर्मांतूचि बेस्स्ल। (मिग्गेलि प्रवर्त्ति कोरूंचि बेस्स्ला)।

२३. यदि ह्यहं न वर्तेयं जातु कर्मण्यतन्द्रितः ।
मम वर्त्मानुवर्तन्ते मनुष्याः पार्थ सर्वशः ।

हे पार्थ हांव् अल्सायेन् सग्ग् वेलारीयि (सर्ववेलारीयि) कर्मारीचि व्यापृत् जावुनत्तिन्ने रबिलेरि मनीष् सर्व विधानेयि मिग्गेले मार्ग्ग् अनुवर्त्तन् कर्त्नि (मिग्गेले मार्ग्ग् स्वीकारु कर्त्नि–कर्म्–जोलि कोर्नत्तिन्नि जत्त्नि)।

२४. उत्सीदेयुरिमे लोका न कुर्यां कर्म चेदहम् ।
संकरस्य च कर्ता स्यामुपहन्यामिमाः प्रजाः ।

हांव् प्रवृत्ति केल्लेना जल्यारि यो लोक् सर्वै नशिं जावुनु व्त्त्निं। तश्शि जनांक् हांव् हनन् कोर्चो जांक जत्त्ने।

२५. सक्ताः कर्मण्यविद्वांसो यथा कुर्वन्ति भारत !
कुर्याद्विद्वांस्तथासक्तश्चिकीर्षुर्लोकसंग्रहम् ।

हे भारता कर्मांतु सक्त् जावुनु अज्ञ मनीष् (विवोरु नत्तिन्नि) खंचे प्रकारि (क्शिश) प्रवर्त्तन् कर्तायि तश्शीचि विद्वान् जावुनऽस्सिल्लो (विवोरु कोल्चे) लोक संग्रहु कोर्कह्मोण् आग्रहु काणु असक्तु जावुनु कर्म् अनुष्ठान् कोर्का (प्रवर्त्ति कोर्का)।

२६. न बुद्धिभेदं जनयेद्अज्ञानां कर्मसङ्गिनाम् ।
जोषयेत्सर्वकर्माणि विद्वान्युक्तः समाचरन् ।

अज्ञ्जावुनऽस्सिल्ले कर्मफ्ल सक्तांतु (कर्माफ्ल् अनुभविजंचेंगेले कूटांतु) विद्वान् (ज्ञानि) तंक बुद्धि भृम् कोरु पण। ताणे सर्व कर्म्यि योगयुक्तु जावुनु कोर्काजलेल् प्रकारि कोरुकायीय्, दुसरेकरेन् कोरोंकायीयि जांका।

२७. प्रकृतेः क्रियमाणानि गुणैः कर्माणि सर्वशः ।
अहङ्कारविमूढात्मा कर्ताहमिति मन्यते ।

प्रकृतीले सत्व् रजस् तमो गुणनित् सर्व विधानेय् जावुनऽस्सिल्ले कर्म् कोरूक् जावप्। जल्यारि अहङ्काराँ मूढ मन्न् जल्लोलो– तो त् सर्वै कोर्चो ह्मोण् अठेयिता।

२८. तत्ववित्तु महाबाहो! गुणकर्मविभागयोः ।
गुणा गुणेषु वर्तन्त इति मत्वा न सज्जते ।

हे महाबाहो, गुणकर्म विभागंचे (चांगि प्रवर्त्ति कोर्चाचे) तत्व् कोल्चो जल्यारि चंग्प्णन् अस्सिल्ले इन्द्रिय् गुणंतु (गूणु जंचे विषयांतु) प्रवर्त्तन् कर्ता – ह्मोण् मन्नां कोर्नु तंतु आसक्तु जाय्ना।

२९. प्रकृतेर्गुणसंमूढाः सज्जन्ते गुणकर्मसु ।
तानकृत्स्नविदो मन्दान्कृत्स्नविन्न विचालयेत् ।

प्रकृतीले गुणनि मूढ मन्न् जावुनु व्च्चि गुण कर्मांतु सक्त् जावुनु वत्ताय्। ते अल्पज्ञ् जावुनऽस्सिल्ले मन्दबुदिधयेंक् संबूर्ण्ण् ज्ञान संबन्न् जावुनऽस्सिल्लेनि गुस्पांचाक् प्ण (विजल् कोरूप्ण–बुद्धिभेदु–तंगेले बुद्धीक् भेदु हाडूक् प्ण) (२६-चे श्लोकु चोयायि)।

३०. मयि सर्वाणि कर्माणि संन्यस्याध्यात्मचेतसा ।
निराशीर्निर्ममो भूत्वा युध्यस्व विगतज्वरः ।

सर्व प्रवृत्तीयि आद्ध्यात्मिक् बुद्धीन् मिज्जेरि (श्रीकृष्णारि) समर्प्पण् कोर्नु निष्कामूयि निर्म्ममूयि जावुनु कस्ने मनोविषम्यि (मनोविचारूयि) नत्तिन्ने युद्ध् क्रि।

३१. ये मे मतमिदं नित्यमनुतिष्ठन्ति मानवाः ।
श्रद्धावन्तोऽनसूयन्तो मुच्यन्ते तेऽपि कर्मभिः ।

मिग्गेलो यो अभिप्रायु (उपदेशु) श्रदधेनेयि असूयनत्तिन्नेयि अनुदिन् (केदनायि–नित्य्) अनुष्ठाँ कोर्चे मनिष् कोण जल्यारीयि ते कर्म् बन्धांतु धक्कून् मुक्त् जत्त्ले।

३२. ये त्वेतदभ्यसूयन्तो नानुतिष्ठन्ति मे मतम् ।
सर्वज्ञानविमूढांस्तान्विद्धि नष्टानचेतसः ।

जलयारि, मिग्गेले ये उत्तर् असूयेन् अनुष्ठान् कोर्नत्तिन्ने रब्बुच्चि कोणकी तन्नि सर्वै, सर्वज्ञान विमूढयि, बुद्धि नत्तिन्नीयि, नाशु जल्लेनीयि ह्मोण् मनां कोर्का।

३३. सदृशं चेष्टते स्वस्याः प्रकृतेर्ज्ञानवानपि ।
प्रकृतिं यान्ति भूतानि निग्रहः किं करिष्यति ।

ज्ञान् संपन्न् जावुनऽस्सिल्ले स्रि तग्गोले प्रकृति तकीत् प्रवर्त्तन् कर्त। भूत् (जीवीयो) तंगेले प्रकृतीक् अनुसरण् क्र्तायि। तज्जे निग्रहान् (प्रकृतीक् अडक्किकोर्नु दोवोर्नु) प्रयोजोनु कांयिपुणै जंन।

३४. इन्द्रियस्येन्द्रियस्यार्थे रागद्वेषौ व्यवस्थितौ ।
तयोर्न वशमागच्छेत्तौ ह्यस्य परिपन्थिनौ ।

एक्केक् इन्द्रियांकयि तज्जे जावुनऽस्सिन्ने विषयांक् संबन्द् जावुनु रागु, द्वेषु सर्वै निश्चित् (व्यवस्थित्) जावुनस्स्। तक्क अधीनु जंचाक् प्ण। इत्तिकी ह्मल्लेरि तो (इन्द्रिय् संबन्धु जावनऽस्सिल्लो रागु द्वेषु सर्वै अंगेलो (मनुष्यालो) शत्रु त्।

३५. श्रेयान्स्वधर्मो विगुणः परधर्मात्स्वनुष्ठितात् ।
स्वधर्मे निधनं श्रेयः परधर्मो भयावहः ।

विधि प्रकार् (कोरकाजलेल् मतिरीन्) अनुष्ठान् कोर्चे परधर्मापशि श्रेष्ठय्, श्रेयस्करय् त् न्यून् जावुनऽस्सिल्ले (सनूचि जल्यारीयि-विगुण् जल्यारीयि) स्वधर्म्। स्वधर्म अनुष्ठान् कोर्नु मेल्लेरीयि (मोर्नु वच्चेय्–प्राणु गेल्लेरियि) श्रेयस्स् त्। जल्यारि परधर्म् भयावह् त् (बय्य् दिस्सोंचे त्)।

अर्जुन उवाच–

३६. अथ केन प्रयुक्तोऽयं पापं चरति पूरुषः ।
अनिच्छन्नपि वार्ष्णेय! बलादिव नियोजितः ।

अर्जुनान् कृष्ण लग्गि निंगीने–

हे वार्षणेय (विष्णुवंशंतु जल्लेल्या) जलयारि कस्स्ल् प्रेरणेन् कि पुरुषु तक्क इष्ट् नत्तिन्ने जल्यारीयि (मन्ननत्तिन्ने जल्यारीयि) निर्बन्ध जावुनु नियोगु केल्लल् मतिरीन् पाप् क्र्ता?

श्री भगवानुवाच–

३७. काम एष क्रोध एष राजोगुणसमुद्भवः ।
महाशनो महापाप्मा विद्ध्येनमिह वैरिणम् ।

देवान संङ्गीने–

रजोगुणान् जनन् गेत्तल्लेयि तृप्त्ति कोरूक् साधि– जावुनऽत्तिल्लेयिं महापापाकारण् कामु त्। येंचि त् क्रोधय्। अक्क अंग शत्रु जावुनु मनां कोर्का।

३८. धूमेनाव्रियते वह्निर्यथादर्शो मलेन च ।
यथोल्बेनावृतो गर्भस्तथा तेनेदमावृतम् ।

गेब्बोरान् अग्नीयि मालिन्यान् कण्णडीयि, उल्बान् (गर्भपात्राक पंगूरु- -आवरण मातिरीनसिन्ने चर्म्मान्) गर्भाक्यि क्शिश आवृत (पंर्गुलेल् मतिरीन्) जावुनस्स् त्श्शीचि कामान् आवृत् त् ये ज्ञान्।

३९. आवृतं ज्ञानमेतेन ज्ञानिनो नित्यवैरिणा ।
कामरुपेण कौन्तेय! दुष्पूरेणानलेन च ।

हे कून्दी पुत्रा–

ज्ञानीले केद्नायि (नित्य्) विरोदु अस्सिन्नेयि (वैरीयि) अतृप्त्यि एक्क् कालाक्यि तृप्ति जावुनत्तिल्लि अग्नि (अनल्) तुल्य्यि, कामरुप्यि जावुनऽस्सिल्ले अज्जान् (कामान्) ज्ञान् आवृत् त्।

४०. इन्द्रियाणि मनो बुद्धिरस्याधिष्ठानमुच्यते ।
एतैर्विमोहयत्येष ज्ञानमावृत्य देहिनम् ।

इन्द्रिय्यि, मन्न्यि, बुद्धीयि काम् बेस्सुचे स्थ्ल् ह्मोण् सङ्गतायि। यें ज्ञानाक् आवरण् कोर्नु हज्जान (कामान्) (इन्द्रिय्, मन्न् बुद्धि) देहीक व्यामोहु क्रेय्त।

४१. तस्मात्त्वमिन्द्रियाण्यादौ नियम्य भरतर्षभ !
पाप्मानं प्रजहि ह्येनं ज्ञानविज्ञाननाशनम् ।

हे भरतश्रेष्ठा– तें दुक्कून् (ते पसावत्) तूं प्रथम् जावुनु इन्द्रियांक् नियन्त्रण् कोर्नु ज्ञानाक्‌यि, विज्ञानाक्‌यि नाशक् जावुनऽस्सिल्ले ये् पापकारणक् निश्शेष् नाशु कोरुका।

४२. इन्द्रियाणि पराण्याहुरिन्द्रियेभ्यः परं मनः ।
मनसस्तु परा बुद्धिर्यो बुद्धेः परतस्तु सः ।

विषयापश्शि श्रेष्ठ् त् इन्द्रिय् ह्मोण् संगतायि। इन्द्रिया पश्शि श्रेष्ठ् म्न्न्, म्न्नापश्शि श्रेष्ठ् बुद्धि, बुद्धि पश्शि श्रेष्ठ् आत्मावूयि ह्मोण् संङ्गतायि।

४३. एवं बुद्धेः परं बुद्ध्वा संस्तभ्यात्मानमात्मना ।
जहि शत्रुं महाबाहो! कामरुपं दुरासदम् ।

हे महाबाहो, — एश्शी बुद्धी पश्शी श्रेष्ठ् आत्मावु ह्मोण् मन्नांकोर्नु तक्क (आत्मावाक्) आत्मावान् निश्चल् कोर्नु कामरूपूयि दुर्ज्जयूयि जावुनऽस्सिल्ले ये शत्रूक् नाशु क्‌री।

ॐ तत् सदिति श्रीमद्‌भगवद्‌गीतासूपनिषत्सु
ब्रह्मविद्यायां योगशास्त्रे श्रीकृष्णार्जुन संवादे
कर्मयोगो नाम तृतीयोऽध्यायः।

ॐ तत् सत् एश्शि श्रीमद् भगवद्‌गीतांतूले
उपनिषत्तांतूले ब्रह्मविध्यांतूले योगशास्त्रांत्तूले
श्रीकृष्णार्जुन संवादांतु "कर्म योगु" ह्मोल्लोलो
तिस्सेरो (३) अध्यायु समाप्त्।

*****

अध्याय - ४

ज्ञान योगु

श्री भगवानुवाच–

१. इमं विवस्वते योगं प्रोक्तवानहमव्ययम् ।
विवस्वान्मनवे प्राह मनुरिक्ष्वाकवेऽब्रवीत् ।

देवु श्रीकृष्णु संङ्ग्त–यो अव्यय् जावुनऽस्सिल्लो योगु हांव् आदित्याक् उपदेशु केल्लो। आदित्यान् तें मनूक्यि, मनून् तें इक्ष्वाकूक्यि उपदेशु कोर्नु दिल्लो।

२. एवं परम्पराप्राप्तमिमं राजर्षयो विदुः ।
स कालेनेह महता योगो नष्टः परंतप !

हे परंतप; एश्शी परंम्परागत् जावुनु प्राप्त् जल्लोलो यो योगु राजर्षीनि मनांकेल्ले। तो योगु ओल्ले (होल्ले) कालदैंर्ख्यान् लोकांतु नष्ट्यि जल्लो।

३. स एवायं मया तेऽद्य योगः प्रोक्तः पुरातनः ।
भक्तोऽसि मे सखा चेति रहस्यं ह्येतदुत्तमम् ।

तो सुप्रसिद्ध जावुनऽस्सिल्लो पण्डेचो योगूचि तू मिग्गेलो भक्तूयि सखीयि जावुनऽस्सिल्लो दुक्कून् (पसावत्) मात्र् आजि हांव् तुक्क उपदेशु कोर्नु दिल्लो। इत्तिकी ह्मल्लेरि ए उत्तम् जावुनऽस्सिल्ले (एक् होल्ले प्रथान्) रहस्य् त्।

अर्जुन उवाच–

४. अपरं भवतो जन्म परं जन्म विवस्वतः ।
कथमेतद्विजानीयां त्वमादौ प्रोक्तवानिति ।

अर्जुनान् सङ्गीने– आदित्यालो जन्मु कृष्णले जन्मा पश्शी फूडेमू। ते स्थितीक् देवान् फूडेचि आदित्याक् उपदेशु दिल्लो ह्मोण्संङ्गुच्चे मक्क मन्नांतु कोरुक् जायन (तश्शी संङ्गिलेरि हांव् क्श्शी मन्नां कोर्त्तोलो)।

श्री भगवानुवाच–

५. बहूनि मे व्यतीतानि जन्मानि तव चार्जुन !
तान्यहं वेद सर्वाणि न त्वं वेत्थ परंतप !

देवान् सङ्गीने–

हे अर्जुना "मक्कायि तुक्कायि अनेक् जन्म् जल्लेनस्स्। तें सर्वै मक्क क्ल्त। हे शत्रुनाशना तुक्क क्ळ्ना"।

६. अजोऽपि सन्नव्ययात्मा भूतानामीश्वरोऽपि सन् ।
प्रकृतिं स्वामधिष्ठाय संभवाम्यात्ममायया ।

हांव् जनन् नत्तिल्लो त्, अव्ययात्मावु त्, भूतांले (सर्व जीवजालांलेयि) देवु त्। जल्यारीयि मिग्गेले प्रकृतीक् स्वाधीन् कोर्नु हांव् स्व (मिग्गेले) मायेन् दुस्स्रीयि दुस्स्रीयि एवुनस्स् (आविर्भविजावुनु रब्ब्ता)।

७. यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत !
अभ्युत्थानमधर्मस्य तदात्मानं सृजाम्यहम् ।

हे भारत– केद्दाण स्ग्ग्यि धर्म्मु खाल् व्त्त (धर्माक मडोवुनु खाल् गल्तायि) अधर्मु उंचारि एत्ता तव्व्लि सर्वै हांव् आत्मावाक् सृष्टि क्र्त (स्वय् जावुनु अव्तारु कड्ता)।

८. परित्राणाय साधूनां विनाशाय च दुष्कृताम् ।
धर्मसंस्थापनार्थाय संभवामि युगे युगे ।

एश्शी सर्व युगंतूयि साधूंले (साधु जावुनऽस्सिल्ले सर्व जीव जालांलेयि) रक्षेक्यि, दुष्टांले नाशाक्यि, धर्म् चोंकुच्चे बगेक्यि (संस्थापनाक्यि) जावुनु हांव् आविर्भावु कर्ता।

९. जन्म कर्म च मे दिव्यमेवं यो वेत्ति तत्त्वतः ।
त्यक्त्वा देहं पुनर्जन्म नैति मामेति सोऽर्जुन !

मिग्गेल् दिव्य् जावुनऽस्सिल्लो जन्मूयि कर्मयि एश्शी तात्विक् जावुनु कोण् मनांकर्त्त तो देहत्याग उपरांते दुस्सरीयि जन्मु घेंन। हे अर्जुन तो मिज्जे लग्गीचि एवुनु पंव्ता।

१०. वीतरागभयक्रोधा मन्मया मामुपाश्रिताः ।
बहवो ज्ञानतपसा पूता मद्भावमागताः ।

रागु, भय्, कोपु ये सर्वै प्र् गाल्नु मक्क आश्रयु कोर्नु अनेक जन् ज्ञान् तपस्सान् परिशुद्ध् जावुनु मक्क प्राप्य् जल्लेलस्स्यि (मिग्गेल् भावाक् प्राप्य् जल्लेलस्स्यि)।

११. ये यथा मां प्रपधन्ते तांस्तथैव भजाम्यहम् ।
मम वर्त्मानुवर्तन्ते मनुष्याः पार्थ सर्वशः ।

हे पार्थ कोण सग्गयि मक्क क्शशी सग्गयि बोज्जितायि हांव् तंक तेचि प्रकारि अनुग्रहु दित्त। मनुषयि सर्वै सर्व प्रकारेणयि (सर्व विधानेयि) मिग्गेले वटेक् त् अनुकरण् कर्तायि (अनुवर्त्तन् कर्तायि)।

१२. काङ्क्षन्तः कर्मणां सिद्धिं यजन्त इह देवताः ।
क्षिप्रं हि मानुषे लोके सिद्धिर्भवति कर्मजा ।

प्रवृत्तिचे फ्ल् आग्रहु कोर्चिं अंङ्ग देवतांक् भोजितायि। इत्ति पसावत् ह्मल्लेरि मनुष्यलोकांतु कर्मा्क् (तँ तनि कोर्चे प्रवृत्तीक्) ओग्गि फ्ल् मेळ्ता।

१३. चातुर्वर्ण्यं मया सृष्टं गुणकर्मविभागशः ।
तस्य कर्तारमपि मां विद्ध्यकर्तारमव्ययम् ।

चांग् प्रवृत्ति केल्लेले अनुसरण् कोर्नु हांवे सृष्टि केल्लेने त् "चातुर्वर्ण्यं' (जाति व्यवस्थ-वेदांतु संङ्गुच्चे जातीयि व्यवस्थायि–उपनिषत्तेयि सर्वै)। जल्यारीयि हांव् (प्रेरण–कोरूक्–संभविजंचाक् सर्वै प्रेरण दिंचो जलयारीयि) अव्ययूयि अकर्तावूयि (कर्तृत्व् नत्तिल्लोयि) ह्मोण् मनांकोर्का।

१४. न मां कर्माणि लिम्पन्ति न मे कर्मफले स्पृहा ।
इति मां योऽभिजानाति कर्मभिर्न स बध्यते ।

मक्क कर्म् कांयिपुणै लग्ग्ना। मक्क कर्मफलांतु आग्रहूयि ना। एश्शी अस्सिल्लो त् हांव् ह्मोण् कोण् की मनां कर्त तो कर्मान् बद्धु जायिना (कर्मबन्दन् तक्क मेळ्ना–कर्म्बन्दांतु थक्कून् तो मुक्तु जत्ता)।

१५. एवं ज्ञात्वा कृतं कर्म पूर्वैरपि मुमुक्षुभिः ।
कुरु कर्मैव तस्मात्त्वं पूर्वैः पूर्वतरं कृतम् ।

एश्शी मनांकोर्नु पूर्विकानि (मुमुक्षूव्–आदिकालाक् जल्लेले भूतानि–जीवजालानि) स्रि कर्म् (प्रवृत्ति) केल्लेलस्स्। तें दुक्कून् ते पूर्विकानि फूडे (तेद्दूस्–तेदिसांक्) केल्लेल् मतिरीन् तूव्यि प्रवृत्तीचि (कर्म्चि) क्रि।

१६. किं कर्म किमकर्मेति कवयोऽप्यत्र मोहिताः ।
तत्ते कर्म प्रवक्ष्यामि यज्ज्ञात्वा मोक्ष्यसेऽशुभात् ।

कर्म् इत्ते, अकर्म् इत्ते ह्मल्लेले कैरेंतु कवीयोयि ज्ञानियोयि स्रि विभृमि जंचे त्। तें दुक्कून् (तेपसावत्) खंचेकी एक जाण्जल्यारि अशुभांतु धक्कून् मुक्तु जत्तोलो ते कर्माक् हांव् तुक्क संङ्गून् दीन्।

१७. कर्मणो ह्यपि बोद्धव्यं बोद्धव्यं च विकर्मणः ।
अकर्मणश्च बोद्धव्यं गहना कर्मणो गतिः ।

कर्मांतु धक्कून् मन्नांकोरूक्यि विकर्मांतु धक्कून् जाण् जंचाक्यि अस्स्। अकर्मांतु धक्कून् मन्नांकोरूकस्स्। कर्माचि गति गहन् त् (जैत्ते मनांकोरूकस्सिन्ने त्)।

१८. कर्मण्यकर्म यः पश्येदकर्मणि च कर्म यः ।
स बुद्धिमान्मनुष्येषु स युक्तः कृत्स्नकर्मकृत् ।

कर्मांतु अकर्म्यि, अकर्मांतु कर्म्यि दिक्क्त कोणकी तो मनुष्यांतु बुद्धि अस्सिल्लो त्। तोचित् योगयुक्तूयि संपूर्ण जावुनऽस्सिल्ले कर्म् अनुष्ठान् कोर्चोयि।

१९. यस्य सर्वे समारम्भाः कामसंकल्पवर्जिताः ।
ज्ञानाग्निदग्धकर्माणं तमाहुः पण्डितं बुधाः।

फलेछनत्तिन्ने (कर्मफलांतु आग्रहु नत्तिन्ने) कोण्की सर्व समारंभूयि कर्त, ज्ञानाग्नींतु कर्म् दहि जावुनु गेल्लेल् तक्क पण्डितु ह्मोणु विद्वत् जावुनऽस्सिल्ले संङ्गतायि।

२०. त्यक्त्वा कर्मफलासङ्गं नित्यतृप्तो निराश्रयः ।
कर्मण्यभिप्रवृत्तोऽपि नैव किञ्चित्करोति सः ।

कर्म फलासक्तीक् त्यज् कोर्नु (नक्क ह्मोण् दोवोर्नु) नित्य् तृप्तु जावुनु, एक्काक्यि (इत्याक्यि) आश्रयु कोर्नत्तिन्ने बेस्सुचो कर्माचेरि प्रवर्त्तन् कर्त जलयारीयि तो कांयि क्र्नायीचि। (कर्मांतु अकर्म् ह्मोण् अक्क संङ्गताय्)।

२१. निराशीर्यतचित्तात्मा त्यक्तसर्वपरिग्रहः ।
शारीरं केवलं कर्म कुर्वन्नाप्नोति किल्बिषम् ।

निष्कामूयि, मन्नाक्यि आत्मावाक्यि संयमँ केल्लोलोयि, सर्व विध् (सर्वै प्रकारीणि अस्सिल्ले) परिग्रह्यि (आग्रहूयि मन्नांतूल् विचारूयि) त्यज् केल्लोलोयि जावुनऽस्सिल्लो मनीषु केवल् शरीरान् मात्र् कर्म्केल्लेरीयि पाप् तक्क बाधक् जंना।

२२. यदृच्छालाभसंतुष्टो द्वन्द्वातीतो विमत्सरः ।
समः सिद्धावसिद्धौ च कृत्वापि न निबध्यते ।

अठोवुनु उडगासुनत्तिन्ने एंचे (यदृच्छा) लाभांतु संतुष्टूयि, सुखांतूयि दुखांतूयि एक्क्मतिरीन् (सुखाक् च्ड् संतोषूयि दुखांतु च्ड् सङ्कडेयि नत्तिल्लि अवस्थायि) अस्सिल्लोयि, एक्कांतूयि मत्सर नत्तिल्लोयि, सिद्धींतूयि-असिद्धींतूयि (कर्मफ्ल् मेल्लेरीयि मेल्लेनाजल्यारीयि एक्क् मतिरीनस्सिल्ले अवस्थऽस्सिल्लोयि) समचित्तूयि जावुनऽस्सिल्लेन् कर्म् केल्लेरीयि बद्धु जायना।

२३. गतसङ्गस्य मुक्तस्य ज्ञानावस्थितचेतसः ।
यज्ञायाचरतः कर्म समग्रं प्रविलीयते ।

संङ्गरहितूयि (मनांतु संशयुनत्तिन्ने) जायवे नक्कवे ह्मल्लेल् चिन्तेंतु (क्स्स्लेयि विचारांतु) धक्कून् मुक्तु जल्लोलोयि ज्ञान् मेल्लेल् अवस्थेचे म्न्न् अस्सिल्लोयि यज्ञार्थजावुनु कर्म् अनुष्ठान् कोर्चोयि जावुनऽस्सिल्लेले सर्व कर्म्य् तज्जे फ्ल्यि विलयिजावुनु (नांजावुनु) व्त्ता।

२४. ब्रह्मार्पणं ब्रह्म हविर्ब्रह्माग्नौ ब्रह्मणा हुतम् ।
ब्रह्मैव तेन गन्तव्यं ब्रह्मकर्मसमाधिना ।

अर्पण् कोर्चे ब्रह्म्, हविस्स् ब्रह्म, ब्रह्माग्नींतु ब्रह्मान् होमु क्‌र्त। एश्शि अस्सिल्ले ब्रह्म, कर्म् समाधीन् (कर्मांतु ब्रह्माक् दर्शन् क्‌र्तायि दुक्कून्) ब्रह्म्चि प्राप्य स्थान् जावुनु पंव्ता।

२५. दैवमेवापरे यज्ञं योगिनः पर्युपासते ।
ब्रह्माग्नावपरे यज्ञं यज्ञेनैवोपजुह्वति ।

वेग्ग्ले एद्दे योगीयो देवता संबन्धि जावुनऽस्सिल्ले यज्ञाक् अनुष्टान् कर्तायि। एद्दे जाण् ब्रह्म् जावुनऽस्सिल्ले अग्नींतु यज्ञान्चि (आत्मावान्-प्राणन्) यज्ञाक् अर्प्पण् कर्तायि।

२६. श्रोत्रादीनीन्द्रियाण्यन्ये संयमाग्निषु जुह्वति ।
शब्दादीन्विषयानन्य इन्द्रियाग्निषु जुह्वति ।

वेग्ग्लि एद्दे जाण् ऐक्कुच्चे इन्द्रियांक् संयमरुप् जावुनऽस्सल्ले अगनींतु होमु कर्तायि। अनीक् एद्दे जाण् शब्दु आदि विषयांक् इन्द्रियरूप् जावुनऽस्सिल्ले अग्नींतु अर्प्ण् कर्तायि।

२७. सर्वाणीन्द्रियकर्माणि प्राणकर्माणि चापरे ।
आत्मसंयमयोगाग्नौ जुह्वति ज्ञानदीपिते ।

सर्व इन्द्रिय् कर्मांकयि वेग्ग्लि एद्दे जाण् ज्ञानान् दीप्त् जावुनऽस्सिल्ले आत्मसंयम् योगाग्नींतु अर्पण् क्‌र्तायि।

२८. द्रव्ययज्ञास्तपोयज्ञा योगयज्ञास्तथापरे ।
स्वाध्यायज्ञानयज्ञाश्च यतयः संशितव्रताः ।

तश्शि दृव्य्यज्ञ् कोर्चेयि, तपोयज्ञ् कोर्चेयि (तपस्साक् यज्ञ् जावुनु अर्पण कोर्चेयि) योग् यज्ञ् कोर्चेयि स्वाध्या (स्वयं (स्वय् जावुनु) ध्यान् कोरूक् यज्ञ् कोर्चे) यज्ञ् कोर्नुऽस्सिल्लेयि जावुनु "दृढवृत् जावुनऽस्सिल्ले वेग्ग्ले यतीयोयि अस्स्यि।

२९. अपाने जुह्वति प्राणं प्राणेऽपानं तथापरे ।
प्राणापानगती रुद्ध्वा प्राणायामपरायणाः ।

तश्शि वेग्ग्लि एद्दे जाण् प्राणयाम् परायण्जावुनु (प्राणयाम् कोर्नु) प्राणलेयि अपानालेयि गतीक् सोणु (निरोधन् कोर्नु) अपानवायूरि प्राणकयि, प्राणरि आपाननाक्यि अर्पण् कर्तायि।

३०. अपरे नियताहाराः प्राणान्प्राणेषु जुह्वति ।
सर्वेऽप्येते यज्ञविदो यज्ञक्षपितकल्मषाः ।

वेग्ग्लि एद्देजाण् नियमिताहारु कड़चिं (नियमित् जावुनऽस्सिल्लो आहारु मात्र् उपयोगु कोर्चि–खंचि) प्राणक् प्राणरीचि अर्पण् कर्तायि। अन्नि सर्वै यज्ञ तत्व कोल्चींय् "यज्ञान् पाप् दूर केल्लेनीयि त्।

३१. यज्ञशिष्टामृतभुजो यान्ति ब्रह्म सनातनम् ।
नायं लोकोऽस्त्ययज्ञस्य कुतोऽन्यः कुरुसत्तम ।

यज्ञशिष्टजावुनऽस्सिल्ले अमृत् पिंचेंक् सनातन् जावुनऽस्सिन्ने ब्रह्म् मेळ्ता। हे कुरुश्रेष्टा, (कुरुवंशंतु श्रेष्टु जावुनऽस्सिल्या) यज्ञ् अनुष्ठान् कोर्नत्तिल्लेक् यो लोकूचि ना (ये लोकांतु कांयि पुणै ना) मग्गीरि क्श्शि परलोकु।

३२. एवं बहुविधा यज्ञा वितता ब्रह्मणो मुखे ।
कर्मजान्विद्धि तान्सर्वानेवं ज्ञात्वा विमोक्ष्यसे ।

यश्शि बहुविध् जावुनऽस्सिल्ले यज्ञ् ब्रह्माचे तोण्डारि (वेदांतु धक्कून्) एयलेनस्स्। तें कर्मांतु धक्कून् जल्लेने ह्मोण् मनांतुकोर्क। तें सर्वै तुक्क एश्शि चांग् प्रकारि मनां–जायनाफडेन् तू मुक्तु जत्तोलो।

३३. श्रेयान्द्रव्यमयाद्यज्ञाज्ज्ञानयज्ञः परंतप !
सर्वं कर्माखिलं पार्थ! ज्ञाने परिसमाप्यते ।

हे परंतप द्रव्य रूपानस्सिल्ले यज्ञापश्शि ज्ञानयज्ञ् त् श्रेष्ठ्। हे पार्था, सर्व प्रवर्त्तीयि संपूर्ण् भावान् ज्ञानांतु एवुनु पंव्ता।

३४. तद्विद्धि प्रणिपातेन परिप्रश्नेन सेवया ।
उपदेक्ष्यन्ति ते ज्ञानं ज्ञानिनस्तत्त्वदर्शिनः ।

तक्क (ज्ञानाक्) तत्वदर्शीयो जावुनऽस्सिल्ले ज्ञानींक् दण्डु नमस्कारु कोरूंयि, एक्केकूट् निंगूनूयि, सेवन् कोरूंयि (तंक-ज्ञानींक् सेवन् कोर्नु दीवुनूयि) मनांकोर्का। तुक्क तन्नि् ज्ञान् उपदेशुकोर्नु दित्त्नि।

३५. यज्ज्ञात्वा न पुनर्मोहमेवं यास्यसि पाण्डव !
येन भूतान्यशेषेण द्रक्ष्यस्यात्मन्यथो मयि ।

हे पाण्डव, यें तूं जाण्जल्यारि एश्शि मोहु मग्गीरि तू प्राप्तु कोर्न। अज्जान् सर्वै जीवजालांक्यि आत्मावांतुयि मग्गीरि मिज्जेरीयि (देवांतूयि) तूं दर्शन् कोर्त्तोलो।

३६. अपि चेदसि पापेभ्यः सर्वेभ्यः पापकृत्तमः।
सर्वं ज्ञानप्लवेनैव वृजिनं संतरिष्यसि।

तूं पाप् कर्तल्लेंतु दोव्वोरु ओल्लो (होल्लो) पाप्कर्तल्लो जल्यारीयि ज्ञान् जावुनऽस्सिल्ले मोंचुवारि चोणु पाप् सर्वै तुक्क तारण् कोरूक् जत्त्ने।

३७. यथैधांसि समिद्धोऽग्निर्भस्मसात्कुरुतेऽर्जुन।
ज्ञानाग्निः सर्वकर्माणि भस्मसात्कुरुते तथा।

हे अर्जुना–जोंलु रब्बुच्चो ओल्लो अग्नि रक्कुडाक् क्शिश भस्म् कर्त, तश्शीचि ज्ञानाग्नि सर्व कर्माक्यि भस्म् कोरु सोड्ता।

३८. न हि ज्ञानेन सदृशं पवित्रमिह विद्यते ।
तत्स्वयं योगसंसिद्धः कालेनात्मनि विन्दति ।

ज्ञानाक् तुल्य् पवित्र् जावुनु कांयिपुणै अंग न। तें योगु मेल्लेलेक् स्वय् जावुनु आत्मावांतु कालु जत्त जत्त मनांतु उजवाडान् जंचे त्। (मन्नांतु दिस्सुच्चे-दिक्कूक् एंचे त्)।

३९. श्रद्धावाँल्लभते ज्ञानं तत्परः संयतेन्द्रियः ।
ज्ञानं लब्ध्वा परां शान्तिमचिरेणाधिगच्छति ।

तदेक (ज्ञानूचि त् मक्क जांक ह्मल्लेल्) निष्ठायि, श्रद्धायि जितेन्द्रियूयि जावुनऽस्सिल्लेक् त् ज्ञानु मेल्तोलो। ज्ञानु मेल्नु जल्यारि तक्क लग्गून् संत्

परम शान्तीक् नितान्त्-नित्य् जावुनऽस्सिल्ले शान्तीक् प्राप्य् जंचाक्यि साधिजत्त्ने।

४०. अज्ञश्चाश्रद्दधानश्च संशयात्मा विनश्यति ।
नायं लोकोऽस्ति न परो न सुखं संशयात्मनः ।

अज्ञाक्यि (कांयि कोल्नत्तिल्याकयि) श्रद्ध नत्तिल्लेक्यि संशयात्मा-वाक्यि (इत्ति केल्लेरीयि, इत्तिदिक्किलेरीयि, अय्किलेरीयि, मनांकेल्लेरीयि संशयु अस्सिल्लेंक्) नाशुत् जत्त्ने। संशयात्मावाक् यो लोकु न। परलोकूयि सुख्यि ना।

४१. योगसंन्यस्तकर्माणं ज्ञानसंछिन्नसंशयम् ।
आत्मवन्तं न कर्माणि निबध्नन्ति धनञ्जय ।

हे धनञ्जय; योगान् कर्माक् देवाचेरि समर्पण् केल्लेलेकयि, अरिवान् (विवोरान्) संशयुनाशु केल्लेलेकयि आत्मनिष्ठूयि जावुनऽस्सिल्लेक्यि कर्म् (सर्व कर्मै) एक् विधानेयि बन्धन् क्र्नां।

४२. तस्मादज्ञानसंभूतं हृत्स्थं ज्ञानासिनात्मनः ।
छित्वैनं संशयं योगमातिष्ठोत्तिष्ठ भारत ।

हे भारता ते पसावत् अज्ञानांतु धक्कून् जनिजावुनु हृदयांतु स्थिति कोर्चेयि जावुनऽस्सिल्ले तुग्गेले "ए संशयाक् ज्ञानखडगान्" छेदु कोर्नु योगक् आश्रयु क्रि – उटा।

ॐ तत्सदिति श्रीमद्भगवद्गीतासूपनिषत्सु ब्रह्मविधायां
योगशास्त्रे श्रीकृष्णार्जुन संवादे ज्ञानकर्मसंन्यास योगो नाम
चतुर्थोऽध्यायः।
ॐ तत् सत् एश्शि श्रीमद्भगवद्गीतांतूले उपनिषत्तांतूले
ब्रह्मविध्यांतूले योगशास्त्रांतुले श्रीकृष्णार्जुन संवादांतु
ज्ञानयोगु ह्मोल्लोलो चौत्तो (४) अद्ध्यायु समाप्त्।

*****

अध्याय् - ५

कर्म संन्यास योगु

अर्जुन उवाच–

१. संन्यासं कर्मणां कृष्ण पुनर्योगं च शंससि ।
यच्छ्रेय एतयोरेकं तन्मे ब्रूहि सुनिश्चितम् ।

अर्जूनु संङ्ग्त–श्रीकृष्ण अप्ण् कर्माचे संन्यासूयि (संन्यासा पसूनूयि) उपरांते कर्म योग पसूनूयि संङ्ग्त। अंतु श्रेयस्कर् जावुनऽस्सिन्ने खंचेकी ते निश्चित् जावुनु मक्क संङ्गून्दींका।

श्री भगवानुवाच–

२. संन्यासः कर्मयोगश्च निःश्रेयसकरावुभौ ।
तयोस्तु कर्मसंन्यासात्कर्मयोगो विशिष्यते ।

ते समयारि देवु संङ्ग्त–

कर्मसंन्यासूयि कर्मयोगूयि (यो दोन्नीयि) तुक्क श्रेयस्कर् (मुक्ति मेळ्चे) त्। कर्म संन्यासा पश्शि कर्मयोगु विशिष्ट्यि त्।

३. ज्ञेयः स नित्यसंन्यासी यो न द्वेष्टि न काङ्क्षति ।
निर्द्वन्द्वो हि महाबाहो सुखं बन्धात्प्रमुच्यते ।

हे महाबाहो कोणकी कोपुनत्तिन्नेयि आग्रहुनत्तिन्नेयि बेस्स्त, तो नित्यसन्यासि त् ह्मोणु मनांकोर्का। इत्तिदुक्कून् ह्मल्लेरि 'द्वन्द्वरहितु' (क्सल् विचारुनत्तिल्लो– सुखांतूयि दुखांतूयि एक्क् लेक्कान् रब्बूच्वो) जावुनऽस्सिल्लेक् बन्धांतुधक्कून् ओग्गि मुक्ति मेळ्ता।

४. सांख्ययोगौ पृथग्बालाः प्रवदन्ति न पण्डिताः ।
एकमप्यास्थितः सम्यगुभयोर्विन्दते फलम् ।

सांख्य् अनि योगु दोन्नीयि वेगले ह्मोण् सङ्गुचि अज्ञ् त्। पण्डित् न्यि। एक पुणै शरिजावुनु (जाम्का जल्लेल् मतिरीन्) अनुष्टान् केल्यारि दोन्नीचेयि फ्ल् मेळ्त्ने।

५. यत्सांखैः प्राप्यते स्थानं तद्योगैरपि गम्यते ।
एकं सांख्यं च योगं च यः पश्यति स पश्यति ।

सांख्यानि (ज्ञानयोगीनि) प्राप्य् जंचे स्थान् कर्म योगियांकयि मेल्त। सांख्यय् (ज्ञानयि) योगूयि एक्क् चि ह्मोण् दिक्कुचो त् यथार्थ् जावुनु दिक्कुचो।

६. संन्याससस्तु महाबाहो दुःखमाप्तुमयोगतः ।
योगयुक्तो मुनिर्ब्रह्म नचिरेणाधिगच्छति ।

हे महाबाहो यथार्थ् (सत्य्) जावुनऽसिल्ले संन्यास्, कर्मयोगु नत्तिन्ने प्राप्य् जंचाक् प्रयासु त्। योग युक्तु जावुनऽस्सिल्लो मुनि संत् संत् बह्माक् प्राप्तु जत्ता (प्रापिजत्ता)।

७. योगयुक्तो विशुद्धात्मा विजितात्मा जितेन्द्रियः ।
सर्वभूतात्मभूतात्मा कुर्वन्नपि न लिप्यते ।

योगयुक्तूयि, शुद्धमन्नांचोयि, आत्मविजयीयि, (शरीर, मन्न् आदि सर्वाक्यि विजयु पव्लोलोयि) इन्द्रियांक् जयुपव्लोलोयि, सर्वभूतांलेयि आत्मावु जावुनु स्वन्त आत्मावाक् दर्शन् कोर्चोयि जावुनऽस्सिल्लो पुरुषु कर्म कर्त (प्रवर्तिकर्त) जल्यारीयि ते प्रवर्तीक् बन्धनस्थु जाय्ना।

८. नैव किंचित्करोमीति युक्तो मन्येत तत्त्ववित् ।
पश्यन्श्रृण्वन्स्पृशञ्जिध्रन्नश्नन्गाच्छन्स्वपन्श्वसन् ।

९. प्रलपन्विसृजन्गृह्णन्नुन्मिषन्निमिषन्नपि ।
इन्द्रियाणीन्द्रियार्थेषु वर्तन्त इति धारयन् ।

योगयुक्तु जावुनऽस्सिल्लो तत्वज्ञु दिक्क्प्, ऐक्क्प्, अपड्प्, श्वासोछवासु क्र्प्, खाव्प्, चंक्प् निद्देव्प्, उल्लोव्प्, विसर्ज्जन् क्र्प्, मन्नांक्र्प्, उन्मीलन्-निमीलन् कर्प् ए सर्व वेलारीयि इन्द्रिय् इन्द्रियार्थांतु प्रवर्तन् कर्त जल्यारिइ हांव् कांयि क्र्ना ह्मोणूचि मन्नांतु दवर्ता (मन्नांतु अठेयिता)।

१०. ब्रह्मण्याधाय कर्माणि सङगं त्यकत्वा करोति यः ।
लिप्यते न स पापेन पद्मपत्रमिवाम्भसा ।

ब्रह्मांतु समर्पण् कोर्नु कर्माक् (प्रवर्तनाक्) म्डि (अल्सायि) उपेक्ष कोर्नु अनुष्ठान् कोर्चो उदकांतु पद्माक्षा– पन्नाव्रि पापांतु लिप्तु जाय्न (तक्क पाप् मेळ्ना)।

११. कायेन मनसा बुद्ध्या केवलैरिन्द्रियैरपि ।
योगिनः कर्म कुर्वन्ति सङ्गं त्यक्त्वात्मशुद्धये ।

देहानेय्, मन्नानेय्, बुद्धीनेय्, इन्द्रियानीयि योगीयो मन्नांतु संङ्गनत्तिन्ने- -अत्याग्रहु नत्तिन्ने आत्म शुद्धीक् जावुनु कर्म् अनुष्ठान् क्तायि।

१२. युक्तः कर्मफलं त्यक्त्वा शन्तिमाप्नोति नैष्ठिकीम् ।
अयुक्तः कामकारेण फले सक्तो निबध्यते ।

योगयुक्तु जावुनऽस्सिल्लो कर्मफल् उपेक्ष कोर्नु दृठ् प्रतिष्ठ जल्लेल् शान्तीक् प्राप्तु जत्ता। युक्तु न्यिजल्लोलो कामान् फलांतु (कर्म फलांतु) आसक्तु जावुनु केदनायि बन्धनांतु प्ड्ता।

१३. सर्वकर्माणि मनसा संन्यस्यास्ते सुखं वशी ।
नवद्वारे पुरे देही नैव कुर्वन्न कारयन् ।

सर्व प्रवृतीयि मन्नान् संन्यासुकोर्नु (ध्यानु कोर्नु–नक्क ह्मोण दोवोर्नु) इन्द्रियांक्यि मन्नाक्य् जयिजल्लोलो देहि (आत्मावु–देहधारि जावुनऽस्सिल्लो जीवु) कांयि कोरुनत्तिन्नेयि कोरोवुनत्तिन्नेयि नवद्वारयुक्त् जावुनऽस्सिल्ले देहांतु सुखान् वासु कर्ता।

१४. न कर्तृत्वं न कर्माणि लोकस्य सृजति प्रभुः ।
न कर्मफलसंयोगं स्वभावस्तु प्रवर्तते ।

देवु लोकांक् कर्तृत्व् (कोरुकाजल्लेने) सृष्ठि क्र्ना। कर्म्यि कर्मफलसंयोगयि सृष्टि क्र्ना। जल्यारि स्वभावु (प्रकृति) त् ये सर्वै कर्ता।

१५. नादत्ते कस्यचित्पापं न चैव सुकृतं विभुः ।
अज्ञानेनावृतं ज्ञानं तेन मुह्यन्ति जन्तवः ।

सर्व व्यापि जावुनऽस्सिल्लो देवु कोणाले पापाकयि सुकृताकयि स्वीकारक्र्न। ज्ञान् अज्ञानान् आवृत् जावुनस्स् (ज्ञानाक अज्ञान् निपेयित)। ते पसावत् जीवीयो मोहांतु बुड्तायि। (अज्ञानांतु पड्तायि)।

१६. ज्ञानेन तु तदज्ञानं येषां नाशितमात्मनः ।
तेषामादित्यवज्ज्ञानं प्रकाशयति तत्परम् ।

जल्यारि ज्ञानान् (अरिवान्–विवोरान्) आत्मावालो (तग्गेलोचि) तो अज्ञानु कोण् की नाशु कर्त तंक तो ज्ञानु, आदित्यु वस्तुवांक् उजवाडु दिंचेमतिरीन् परम् जावुनऽस्सिल्ले (होल्लो जावुनऽस्सिल्लो) ब्रह्मत्व् प्रकाशु कर्ता (ब्रह्म तत्व प्रकाशु कोर्नु दित्ता)।

१७. तद्बुद्धयस्तदात्मानस्तन्निष्ठास्तत्परायणाः ।
गच्छन्त्यपुनरावृत्तिं ज्ञाननिर्धूतकल्मषाः ।

परब्रह्मांतु बुद्धि दृठ् जावुनु दवर्ल्लेलींयि, तंतूचि आत्मावाक् निवेशु केल्लेलींयि, तेंचित् मिग्गेलि निष्ठ (चिट्ट) ह्मोण् अस्सिल्लींय् तें सङ्गून् बोंचीयि (दुसरेंक संगून् दिंचीयि) जावुनऽस्सिल्लिं ज्ञानान् पापाक् दूर कोर्नु दुसरियि जनन नत्तिल्ले अवस्थेरि पंतायि (मोक्षु पंतायि)।

१८. विद्याविनयसंपन्ने ब्राह्मणे गवि हस्तिनि ।
शुनि चैव श्वपाके च पण्डिताः समदर्शिनः ।

विद्यायि विनयूयि अस्सिल्लो ब्राह्मणु–गाय्, हस्ति सूणे, चण्डालु हंचेरि सर्वै पण्डितांक् ब्रह्मज्ञानींक् समदृष्टि त् (एक्की दृष्टित् अस्त्लि– सर्वांकय् एक्क्लेक्कान् त् अन्नि चोयितायि)।

१९. इहैव तैर्जितः सर्गो येषां साम्ये स्थितं मनः ।
निर्दोषं हि समं ब्रह्म तस्माद्ब्रह्मणि ते स्थिताः ।

कोणले मन्न् की सामयांतु (सर्वांकयि सम्दृष्टीन् चोंचाक् प्राप्ति अस्सिले) प्रतिष्टित् जावुनस्स् तन्नि अङ्ग दोव्वोरूंचि संसाराक जयु पंतायि। इत्तिकी ह्मल्लेरि ब्रह्म् निर्दोषयि सम्यि (सम् अस्सिन्नेयि)– त्। ते पसावत् तन्नि ब्रह्मांतु स्थिति कोर्ची त्।

२०. न प्रहृष्येत्प्रियं प्राप्य नोद्विजेत्प्राप्य चाप्रियम् ।
स्थिरबुद्धिरसंमूढो ब्रह्मविद् ब्रह्मणि स्थितः ।

ब्रह्मांतु स्थिति कोर्चो ब्रह्म्मज्ञूयि, स्थिरबुद्धीयि मोहुनत्तिल्लोयि त्। तो स्नेहु मेल्नु संतोषु पाव्न, अप्रिय मेल्नाफडेन् दुखितूयि जायना।

२१. बाह्यस्पर्शेष्वसक्तात्मा विन्दत्यात्मनि यत्सुखम् ।
स ब्रह्मयोगयुक्तात्मा सुखमक्षयमश्नुते ।

बाह्य विषयांतु आसक्ति नत्तिल्लेक् आत्मावांतु मेळचे सुख् "इत्तिकी ते" ब्रहमांतु योगयुक्तु जावुनऽस्सिल्लो तो अक्षय् जावुनऽसिल्लानन्दु जावुनु अनुभवु कर्ता।

२२. ये हि संस्पर्शजा भोगा दुःखयोनय एव ते ।
आद्यन्तवन्तः कौन्तेय न तेषु रमते बुधः ।

हे कौन्तेय-क्स्स्ने, खंचे भोगु की स्पर्शनान् जंचे (इन्द्रियानि बाह्यविषयांचे संयोगन् जंचे) तें दुख् कोर्चेचि त्। तें आदीयि अन्त्यि (आरम्भूयि, नाशूयि) अस्सिल्लें त्। तंतु विद्वान् जावुनऽस्सिल्लो (विवोरु-ज्ञानु अस्सिल्लो) रमिजायना–संतोषु पाव्ना।

२३. शक्नोतीहैव यः सोढुं प्राक्शरीरविमोक्षणात् ।
कामक्रोधोद्भवं वेगं स युक्तः स सुखी नरः।

अंङ्गदोवोरु शरीरनाशुपंचे फुडेचि काम्, क्रोध्र जन्य् जावुनऽस्सिल्ले क्षोभाक् जयु पावुनु समाधानान् रब्बूक् कोणकी शक्ति दक्केयित–तो मनीषु युक्तु त् (ब्रह्मयुक्तु) तो सुख बोग्गुच्चोयि त्।

२४. योऽन्तःसुखोऽन्तरारामस्तथान्तर्ज्योतिरेव यः ।
स योगी ब्रह्मनिर्वाणं ब्रह्मभूतोऽधिगच्छति ।

कोण्की आभ्यन्तरजावुनु (मन्नांतु भित्तेरि) सुख् मेल्लोलो, संतोषु पंचो, ज्योतिस्स् (उजुवाडु) मेळ्ळोलो तो योगी ब्रह्म्म्चि जावुनु परिणमु काणु ब्रह्मांतूचि लयन् जत्ता।

२५. लभन्ते ब्रह्मनिर्वाणमृषयः क्षीणकल्मषाः ।
छिन्नद्वैधा यतात्मानः सर्वभूतहिते रताः ।

पाप् नत्तिन्नीयि, संशयु नत्तिन्नीयि, समाथान् मन्नस्सिन्नीयि सर्वभूतांचेय् (सर्व जीवियांलेयि) आग्रहांतु तात्पर्य अस्सिन्नीयि (सर्वांकयि चांग् जांक ह्मल्लेले मन्न् अस्सिल्ले) ऋषीयो ब्रह्मनिर्वाण् अनुभव् कर्तायि।

२६. कामक्रोधवियुक्तानां यतीनां यतचेतसाम् ।
अभितो ब्रह्मनिर्वाणं वर्तते विदितात्मनाम् ।

काम क्रोध् नत्तिल्लेयि समाथान् मन्न् अस्सिल्लेयि आत्मज्ञानीयि जावुनऽस्सिल्ले "यति" यांचे सर्वांचेयि कूटांतु "ब्रह्मशन्ति" विलासु कर्ता (रब्बूनु खेल्ता)।

२७. स्पर्शान्कृत्वा बहिर्बाह्यांश्चक्षुश्चैवान्तरे भ्रुवोः ।
प्राणापानौ समौ कृत्वा नासाभ्यन्तरचारिणौ ।

२८. यतेन्द्रियमनोबुद्धिर्मुनिर्मोक्षपरायणः ।
विगतेच्छाभयक्रोधो यः सदा मुक्त एव सः ।

बाह्य् जावुनऽस्सिल्ले सर्व विचाराकयि पेल्लेन्गाल्नु, "दृष्टि" बौरीयांचे मद्ध्यांतु दृढजावुनु दोवोरु नंकांतुलेन् बोंचे प्राणवायूकयि अपान वायुकयि सम् थोर्नु, इन्द्रियांक्यि "मन्नाक्यि बुद्धीक्यि" अडक्किकोर्नु दोवोर्नु—समाथानान् दोवोर्नु (संयमन्कोर्नु), आग्रहु, भय्, क्रोथ् अक्क सर्वै दूरकोर्नु मोक्षाक् प्रयत्नु कड्चो मुनि सदा (केदनायि— सग्ग् वेलारीयि— all the time) मुक्तूचि त्।

२९. भोक्तारं यज्ञतपसां सर्वलोकमहेश्वरम् ।
सुहृदं सर्वभूतानां ज्ञात्वा मां शान्तिमृच्छति ।

यज्ञाचेयि तपससाचेयि भोक्तावूयि (स्वीकार कोर्चो भोजन् कोर्चो) सर्वलोक महेश्वरुयि, सर्वभूतालेयि सुहृत्तूयि ह्मोण् मक्क मन्नांकोर्चो कोण्की तक्क शान्ति मेळ्ता।

ॐ तत्सदिति श्रीमद्भगवद्गीतासूपनिषत्सु
ब्रहमविधायां योगशास्त्रे श्रीकृष्णार्जुनसंवादे
कर्मसंन्यासयोगो नाम पञ्चमोऽध्यायः।

ॐ तत् सत् एशिश श्रीमद् भगवद्गीतांतूले
उपनिषतांतूले, ब्रहमविध्यांतूले योगशास्त्रांतूले
श्रीकृष्णार्जुन संवादांतूलो "कर्मसंन्यास योगु"
ह्मल्लोलो पञ्चोवो (५) अध्यायु समाप्त्।

*****



अध्याय् - ६

अभ्यास योगु

श्री भगवानुवाच-

१. अनाश्रितः कर्मफलं कार्यं कर्म करोति यः ।
स संन्यासी च योगी च न निरग्निर्न चाक्रियः ।

देवु संङ्ग्त–कर्म फलाक् आग्रहु कोर्नत्तिन्ने एक्केक्कलेनीयि कोर्काजल्लेने (प्रवृत्ति) कोणकी अनुष्टान् कर्त तोत् संन्यासीयि योगीयि। नंत्ना, अग्नि; होमु सर्वै कोर्नत्तिल्लोयि, अनीक् कर्म कोर्नत्तिल्लोयि न्यि। गृहस्थाश्रमु त्यागु कोर्का ह्मोण् न। कर्म् कोर्नात्तिन्ने बेस्सुका ह्मोणूयि ना।

२. यं संन्यासमिति प्राहुर्योगं तं विद्धि पाण्डव ।
न ह्यसंन्यस्तसंकल्पो योगी भवति कश्चन ।

हे पाण्डु पुत्रा, इत्याक् की संन्यास् ह्मोण् संङ्गतायि तक्काचि त् योगु ह्मोण् मनां कोर्का। इत्तिकी ह्मल्लेरि संकल्पांक् संन्यास् कोर्नत्तिन्ने (मन्नांतु एश्शिजांक, तश्शिजांका, हांव् केल्लेलेक् मक्क फल् जांका ह्मोल्लोलो आग्रहु सोडुनत्तिन्ने) कोणक्पुणै योगु जंचाक् जंना।

३. आरुरुक्षोर्मुनेर्योगं कर्म कारणमुच्यते ।
योगारूढस्य तस्यैव शमः कारणमुच्यते ।

योगुमेलूक् (योगरूडुजंचाक्) आग्रहु कड्चे मुनीक् कर्म (प्रवृत्ति) कारण् ह्मोण् संङ्ग्तायि। योगु मेल्नु जल्लेल् तक्क शम्चि (शान्तीचि) कारण् ह्मोण् संङ्ग्तायि। इत्तिकी ह्मल्लेरि तो सर्व वेलारीयि शान्तींतु प्रतिष्टितु त् अस्तोलो।

४. यदा हि नेन्द्रियार्थेषु न कर्मस्वनुषज्जते ।
सर्वसंकल्पसंन्यासी योगारूढस्तदोच्यते ।

इत्तिकी ह्मल्लेरि केद्दाण इन्द्रियार्थ् जावुनऽस्सिल्ले विषयारीयि कर्मांतूयिं (प्रवृत्तीरीयि) तात्पर्य नत्तिल्लो जावुनस्स् त्व्लि (at that time) सर्व संकल्पांक्यि प्र्गाल्नु तो योगरुडु जत्त। शम्त् (शांन्ति त् – आग्रहाचे शमु – आग्रहु नांजंचे अवस्थ) कारण् ह्मोण् संङ्ग्तायि।

५. उद्धरेदात्मनात्मानं नात्मानमवसादयेत् ।
आत्मैव ह्यात्मनो बन्धुरात्मैव रिपुरात्मनः ।

आत्मावान् आत्मावाक् उंचारि हाडुक। आत्मावाक् क्षीण् जंचे मतिरीन् कांयि कोरूक्प्ण। इत्तिकी ह्मल्लेरि आत्मावूचित् आत्मावालो बन्दूयि शत्रूयि ह्मोण् मन्नांकोर्का।

६. बन्धुरात्मात्मनस्तस्य येनात्मैवात्मना जितः ।
अनात्मनस्तु शत्रुत्वे वर्तेतात्मैव शत्रुवत् ।

कोण कारण् (कोण्की) आत्मावु आत्मावानेचि जयुपवलो तक्क तग्गेलो आत्मावु आत्मावालो बन्धु जत्ता। जल्यारि आत्मावाक् जयिजावुनत्तिल्लेक् आत्मावूचि आत्मावालग्गि (प्राण लग्गि) शत्रुत्वारि प्रवर्त्तन् कोर्नु रब्ब्ता।

७. जितात्मनः प्रशान्तस्य परमात्मा समाहितः ।
शीतोष्णसुखदुःखेषु तथा मानापमानयोः ।

आत्मावाक् जयुपावुनु प्रशन्तु जावुनु बेस्सल्लो आत्मावु–उष्णांतूयि-शेल्वांतूयि सुखांतूयि–दुखांतूयि, मानांतूयि–अपमांनांतूयि सर्व वेलारीयि (all the time) अत्यन्त् एक्क् मतिरीन् (समाधानान्) अक्षोभ्यु (कोपु काणत्तिल्लो) जावुनु रब्ब्ता।

८. ज्ञानविज्ञानतृप्तात्मा कूटस्थो विजितेन्द्रियः ।
युक्त इत्युच्यते योगी समलोष्टाश्मकाञ्चनः ।

ज्ञानानेयि, विज्ञानानेयि संतृप्तूयि, निर्विकारूयि, जितेन्द्रियूयि, चिक्कोलु, भत्तोरु, बंगार् एं सर्वांक्यि एक्क्मतिरीन् अठोंचोयि जावुनऽस्सिल्लो योगि "युक्तु" ह्मोण् संङ्ग्तायि।

९. सुहृन्मित्रार्युदासीनमध्यस्थद्वेष्यबन्धुषु ।
साधुष्वपि च पापेषु समबुद्धिर्विशिष्यते ।

सुहृत्त्, मित्र्, शत्रु, उदासीन् (काम्कोरुक् सग्गवेलारीय् all the time – म्डि अस्सिन्नि) मध्यस्थ्, द्वेष्यस्सिंल्लिं (लग्गि काणत्तिन्ने रब्बोंका जल्लेनि)

बन्धु बान्धव् अंचि लग्गीयि, सज्जनांकयि (सत्तांकयि) पापिजावुनऽस्सिल्लेंक्यि एक्क्मतिरीन् लेक्कूचो "विशिष्टु" त्।

१०. योगी युञ्जीत सततमात्मानं रहसि स्थितः ।
एकाकी यतचित्तात्मा निराशीरपरिग्रहः ।

योगि विजनस्थलारि रब्बूनु, एकलोचि, कस्सल् संकष्ट् मन्नांतु नत्तिन्ने, कस्स्ल् कैरेंतु आकांक्ष (खंकूडि) नत्तिन्ते, ख्यि अप्पोणत्तिल्ले मन्नान् सर्वदा आत्मावाक् (प्राणक्) एक्क्डे कोरुक। आत्मावूयि जावुनु युक्तु जांका।

११. शुचौ देशे प्रतिष्ठाप्य स्थिरमासनमात्मनः ।
नात्युच्छ्रितं नातिनीचं चैलाजिनकुशोत्तरम् ।
१२. तत्रैकाग्रं मनः कृत्वा यतचित्तेन्द्रियक्रियः ।
उपविश्यासने युञ्ज्याधोगमात्मविशुद्धये ।

शुचित्व अस्सिल्लेयि (एन्वाले), जैत्ते खाल्उंच् जावुनत्तिन्नेयि स्थलारि दर्भुगाल्नु तज्जेरि कृष्णमृगाले चाम्, तज्जे उंचारि वस्त्र् ए लेक्कान् दोवोर्नु अस्सिल्ले आसनारि बेस्रूनु मन्न् एकाग्र कोर्नु (मन्नांचेयि इन्द्रियांचेयि प्रवर्तनाक् निरोधु कोर्नु– वेग्गेलो विचारु कांयि पुणै नत्तिन्ने) आत्म शुद्धीक् जावुनु योगु अभ्यासु कोरुका।

१३. समं कायशिरोग्रीवं धारयन्नचलं स्थिरः ।
संप्रेक्ष्य नासिकाग्रं स्वं दिशश्चानवलोकयन् ।
१४. प्रशान्तात्मा विगतभीर्ब्रह्मचारिव्रते स्थितः ।
मनः संयम्य मच्चित्तो युक्त आसीत मत्परः ।

देह्, मत्ते, कण्ढ् अक्क सर्वै सम्चि धोर्नु हल्लोवुनत्तिन्ने, स्वन्त् (तग्गेले) नंका क्ड्डेन् (नासिकाग्रारि) द्रष्टि दोवोर्नु एल्त्त पेल्तांतु खयीं चोवुनत्तिन्ने आत्मावाक् प्रशान्त् कोर्नु, भ्य् नत्तिन्ने, ब्रह्मचार वृतारि प्रतिष्ठितु जावुनु मन्नाक् संयमु कोर्नु (दोर्नु रब्बोवुनु) एक्क् मन्नान् देवाक् मन्नांतु अढोवुनु युक्तुजावुनु स्थिति कोर्का।

१५. युञ्जन्नेवं सदात्मानं योगी नियतमानसः ।
शान्तिं निर्वाणपरमां मत्संस्थामधिगच्छति ।

एलेक्कान् (एप्रकारि) योगी सर्व वेलारीयि मन्नाक् एकाग्रकोर्नु, आत्मावाक् युक्तु कोर्नु, मिज्जेरि–देवाचेरि विश्वासान् प्रतिष्टित्यि सर्वांतूयि होल्लेयि निर्वाणरूप्यि जावुनऽस्सिल्ले शान्तीक् प्राप्तु कर्ता।

१६. नात्यश्नतस्तु योगोऽस्ति न चैकान्तमनश्नतः ।
न चाति स्वप्नशीलस्य जाग्रतो नैव चार्जुन ।

हे अर्जुना, जल्यारि च्ड् खंचोयि कांयिपुणै खावनत्तिल्लोयि सग्गवेलारीयि निद्देंचोयि, नीद् नत्तिल्लोयि जावुनऽस्सिल्लेक् योगु संभविजायिना (योगु मेळ्ना)।

१७. युक्ताहारविहारस्य युक्तचेष्टस्य कर्मसु ।
युक्तस्वप्नावबोधस्य योगो भवति दुःखहा ।

नियन्त्रणान्ऽस्सिल्लो आहारूयि विहारुयि कोर्चोयि कर्मांतु (प्रवृत्तींतु) युक्तचेष्ट दक्कोंचोयि, युक्तामतिरीन् निद्रायि जागरण्यि जावुनऽस्सिल्ले व्यक्तीक् योगु दुखाक् नाशु कर्ता।

१८. यदा विनियतं चित्तमात्मन्येवावतिष्ठते ।
निःस्पृहः सर्वकामेभ्यो युक्त इत्युच्यते तदा ।

केद्दाण विशेषाल् नियत् जावुनऽस्सिल्ले (नियन्त्रण् जावुनऽस्सिल्ले) मन्न् सर्व कामारीयिधक्कून् निस्पृह् (एकाग्र्जावुनु) आत्मारीचि दृढ्जावुनु रब्ब्त, तव्व्लि तो युक्तु ह्मोण् सङ्गातायि। (युञ्जानु, युक्तु एश्शि योगीयो अवस्था भेदारि दोनितर् अस्स्यि। तंतु युक्ताले लक्षण् त् अत्त् संङ्गिन्ने)।

१९. यथा दीपो निवातस्थो नेङ्गते सोपमा स्मृता ।
योगिनो यतचित्तस्य युञ्जतो योगमात्मनः ।

वारे नत्तिल्लेक्डे स्थिति कोर्चे दीवेचे निश्चलावस्थत् (हल्लूनत्तिन्ने रब्ब्प्यि त्) आत्मयोगु अभ्यासु कोर्चे मन्नाक् एकाग्रजावुनु दोवोर्चे योगीक् उपमजावुनु स्मरण कर्तायि। यें त् युञ्जाननाले अवस्थ। (युञ्जाननालि स्थीति)।

२०. यत्रोपरमते चित्तं निरुद्धं योगसेवया ।
यत्र चैवात्मनात्मानं पश्यन्नात्मनि तुष्यति ।

योगभ्यासान् एकाग्रजल्लेने म्न्न् खंचे अवस्थेरि संतोषु पंत, खंचे स्थितीरि प्राणन् प्राणक् प्राणंतू दर्शन कोर्नु संतोषु पंता,

२१. सुखमात्यन्तिकं यत्तद्बुद्धिग्राह्यमतीन्द्रियम् ।
वेत्ति यत्र न चैवायं स्थितश्चलति तत्त्वतः ।

बुद्धीन् मन्नांकोरूक् जंचेयि इन्द्रियातीत्यि जावुनऽस्सिल्ले केदनायि अस्सुचे सुखाक् यो योगी खंचे अवस्थेरि रब्बूनु तत्त्वांतुधक्कून् दूर् वोच्चूनत्तिन्ने रब्ता,

२२. यं लब्ध्वा चापरं लाभं मन्यते नाधिकं ततः ।
यस्मिन्स्थितो न दुःखेन गुरुणापि विचाल्यते ।

योगि खंचे स्थितीक् मेल्नु तज्जापशि होल्ले लाभश्शिन्ने कांयिपुणै मेल्का ह्मोणु आग्रहु र्कन, खंचे स्थितीरि रब्बनाभडेन् होल्ले दुख् एयलेरीयि मन्नांतु चलन् जावुनऽत्तिन्ने रब्ता,

२३. तं विद्याद् दुःखसंयोगवियोगं योगसंज्ञितम् ।
स निश्चयेन योक्तव्यो योगोऽनिर्विण्णचेतसा ।

यें सर्वै त् दुख स्वल्प् उणेसरि स्पर्शनत्तिन्ने योगुह्मोण् मन्नांकोर्का। योगीन् होल्ले उत्साहा म्न्नान् स्थिर निश्चयान् तो योगु अभ्यासु कोरुका (२०,२१,२२,२३ श्लोकु एकडे मन्नांकोर्नु वच्चुका)।

२४. संकल्पप्रभवान्कामांस्त्यक्त्वा सर्वानशेषतः ।
मनसैवेन्द्रियग्रामं विनियम्य समन्ततः ।

२५. शनैः शनैरुपरमेद्बुद्ध्या धृतिगृहीतया ।
आत्मसंस्थं मनःकृत्वा न किंचिदपि चिन्तयेत् ।

मन्नांतु संकल्प् कोर्नु जंचो विचारु कांयि पुणै दोवोर्नत्तिन्ने कामाक् सर्वै त्यज् कोर्नु (परिपूर्ण् जावुनु प्र् गाल्नु) मन्नानेंचि इन्द्रियांक् सर्व

विधानेयि संयमँ कोर्नु दृढनिष्ट अस्सिल्ले बुद्धीन् दृढ्निश्चयान्, मन्नांतूले विकारांक् (विचारांक्) नांकोर्नु मन्नाक् प्राणरि (आत्मावांतु) दृढ्कोर्नु दोवोर्नु वेग्ग्ले कांयि पुणै चिन्त (विचारु) कोर्नत्तिन्ने बेस्सूनु संतोषु पावुंका।

२६. यतो यतो निश्चरति मनश्चञ्चलमस्थिरम् ।
ततस्ततो नियम्यैतदात्मन्येव वशं नयेत् ।

चञ्जलयि अस्थिरयि (दावुनु भोवुनु अस्सिन्ने) जावुनऽस्सिन्ने म्न्न् बाह्यविषयांतु इत्यांतु सर्वै पंव्त तंतुधक्कूँ सग्ग् तक्क नियन्त्रण् कोर्नु आत्मावांतूचि दृढ् कोर्नु दोवोर्का।

२७. प्रशान्तमनसं ह्येनं योगिनं सुखमुत्तमम् ।
उपैति शान्तरजसं ब्रह्मभूतमकल्मषम् ।

इत्तिकी ह्मल्लेरि प्रशान्त् म्न्न्यि रजोगुणयि अस्सिल्लोयि दुखनत्तिल्लोयि (पाप् नत्तिल्लोयि) ब्रह्मजावुनु परिणमु जल्लोलोयि जावुनऽस्सिल्ले ये योगीक् उत्तम् (चांग्) सुख् मेळ्ता।

२८. युञ्जन्नेवं सदात्मानं योगी विगतकल्मषः ।
सुखेन ब्रह्मसंस्पर्शमत्यन्तं सुखमश्नुते ।

एलेक्कान् सग्ग्वेलारीयि आत्मावाक् युक्तु (योगु) कोर्नु दोवोर्चोयि, दुःख् दूर् केल्लोलोयि जावुनऽस्सिल्लो योगी प्रयासुनत्तिन्ने होग्गी केदनायि बह्मान् स्पर्शकोर्चे सुख् अनुभवु कर्ता।

२९. सर्वभूतस्थमात्मानं सर्वभूतानि चात्मनि ।
ईक्षते योगयुक्तात्मा सर्वत्र समदर्शनः ।

योगयुक्तु जावुनऽस्सिल्लो आत्मावु (प्राणु) सग्गडांकयि (सर्वांकयि) एक्क्मतिरीन् दिक्कूनु प्राणक् सर्वभूतांतूयि, सर्वभूतांकयि प्राणंतूयि (आत्मावांतूयि) दर्शन् कर्ता।

३०. यो मां पश्यति सर्वत्र सर्वं च मयि पश्यति ।
तस्याहं न प्रणश्यामि स च मे न प्रणश्यति ।

कोण् मक्क सर्वत्रदिक्क्त (सर्वांतूयि अस्सिल्लो जावुनु दिक्क्त) सर्वांकयि मिज्जेरीयि दिक्क्त (मन्नांकर्त्त) तक्क हांव् अन्यु जावुनु दिस्सुन्न। तो मक्कायि अन्यु जावुनु दिस्सुन्ना।

३१. सर्वभूतस्थितं यो मां भजत्येकत्वमास्थितः ।
सर्वथा वर्तमानोऽपि स योगी मयि वर्तते ।

कोण्की एक्क्मन्नान् दृढ्जावुनु सर्वभूतांचेयि वासु जावुनऽस्सिल्ले मक्क शरण् पंव्त (मक्क बोज्जीत) तो योगी खंचे विधान् जल्यारीयि मिग्गेले ह्रदयांतु रब्ब्ता।

३२. आत्मौपम्येन सर्वत्र समं पश्यति योऽर्जुन ।
सुखं वा यदि वा दुःखं स योगी परमो मतः ।

हे अर्जुन, आत्मतुल्यजावुनु तक्क ह्मल्लेल् मतिरीन् (तग्गेल् लेक्कान्) सुख्यिदुख्यि साग्ग्यि सम् जावुनु, एक्क् मतिरीन् कोण्की दर्शन् कर्त, सर्वातूयि चंग्प्ण् आग्रहु कोर्चो तो योगी होड्ड श्रेष्ठु ह्मोण् निश्चय् त्।

अर्जुन उवाच–

३३. योऽयं योगस्त्वया प्रोक्तः साम्येन मधुसूदन !
एतस्याहं न पश्यामि चञ्चलत्वात्स्थितिं स्थिराम् ।

अर्जुनान संङ्गीने– हे मधुसूदन, देवान् समत्वलक्षण् जावुनु खंचेकी "योगु" कीर्तन् केल्लो तो मन्नाचे दव्ण्डीन् दृढजावुनु रबतोल्वे ह्मोण् मक्क संशयु जत्ता।

३४. चञ्चलं हि मनःकृष्ण! प्रमाथि बलवद्दृढम् ।
तस्याहं निग्रहं मन्ये वायोरिव सुदुष्करम् ।

इत्तिकी ह्मल्लेरि हे कृष्ण चञ्चल्यि (एल्तपेल्तांतु बोंचोयि) क्षोभकारीयि (कोपु एंचोयि) नियन्त्रण् कोरूक् जावुनऽत्तिल्लेंयि सड्ल् कोरूक् जावुनऽत्तिल्लेंयि त् "मन्न्"। तक्क धोरु रब्बोंक ह्मल्लेले वायूक् धोरु रब्बोंचे लेक्कान् अत्यन्त दुष्कर्चि त्।

श्री भगवानुवाच–

३५. असंशयं महाबाहो! मनो दुर्निग्रहं चलम् ।
अभ्यासेन तु कौन्तेय! वैराग्येण च गृह्यते ।

देवान्संङ्गीने– हे महाबाहो संशयुना। म्न्न् नियन्त्रण् केरूक् प्रयासु अस्सिल्लें त्। चञ्चल् त्। जल्यारि हे कुन्तिपुत्रा! अभ्यासान्यि (प्रयत्नानेयि) वैराग्य बुद्धीन्यि म्न्नाक् वशीकरण् कोरुयात्।

३६. असंयतात्मना योगो दुष्प्राप इति मे मतिः ।
वश्यात्मना तु यतता शक्योऽवाप्तुमुपायतः ।

म्न्नाक् दोरु रब्बोंचाक् जावुनऽत्तिल्लेक् योगु दुष्प्राप्य् ह्मोणु त् मिग्गेलो अभिप्रायु, जल्यारि शरिजावुनऽस्सिल्ले वट्टेन् (उपायु कोर्नु) प्रयत्नु पंचे संयतचित्ताक् योगप्राप्ति साध्य्यि त्।

अर्जुनउवाच–

३७. अयतिः श्रद्धयोपेतो योगाच्चलितमानसः ।
अप्राप्य योगसंसिद्धिं कां गतिं कृष्ण गच्छति ।

अर्जुनान् सङ्गीने - हे कृष्ण श्रद्धायुक्तु जावुनु ह्मल्लेरि संयमनत्तिन्ने (मन्नाक् एकाग्र् कोरूक् जावुनत्तिन्ने) योगंतु धक्कून् भ्रष्ट म्न्न् जावुनु योगसिद्धि प्राप्तु जावुनत्तिन्ने कस्स्लि गति प्राप्तु जत्ता।?

३८. कच्चिन्नोभयविभ्रष्टश्छिन्नाभ्रमिव नश्यति ।
अप्रतिष्ठो महाबाहो विमूढो ब्रह्मणः पथि ।

हे महाबाहो ब्रह्ममार्गंतु कांयिपुणै कोल्नत्तिल्लो जावुनूयि, मन्नाक् प्रतिष्ठ कोरूक् (एक्कडे रब्बोंचाक्) जावुनत्तिन्ने तो कर्म्मांतु धक्कूनूयि ब्रह्म्मप्राप्तींतु धक्कूनूयि भृष्ट जावुनु (कर्म कोरूकयि मन्नाक् ब्रह्मप्राप्ति कोर्नु शान्ति मेलूकयि जावुनत्तिन्ने) छिन्न् भिन्न् जावुनस्सिल्ले मेखा लेक्कान्-धंग धंग रब्बुच्चे मेखा कुट्टूके लेक्कान्) नशिंजंनावे?

३९. एतन्मे संशयं कृष्ण! छेत्तुमर्हस्यशेषतः ।
त्वदन्यः संशयस्यास्य छेत्ता न ह्युपपधते ।

हे कृष्ण–तू मिग्गेले ए संशयाक् निवृत्ति कोर्नु दींक। इत्तिकी ह्मल्लेरि तू नंत्‌न वेग्ग्‌ले कोणक् ये संशयाक् निवृत्ति कोरूक् जंना।

श्री भगवानुवाच–

४०. पार्थ नैवेह नामुत्र विनाशस्तस्य विद्यते ।
न हि कल्याणकृत्कश्चिद्‌दुर्गतिं तात! गच्छति ।

देवान् संङ्गीने–पार्थ, ये लोकांतूयि परलोकांतूयि नाशु ताणे अनुभविजंन। चांग्‌कैरि कोर्चो (शुभ कर्मकारि जावुनऽस्सिल्लों) कोण् दुर्ग्गतीक् प्राप्तु कोर्न (तक दुर्गति मेळ्ना)।

४१. प्राप्य पुण्यकृतां लोकानुषित्वा शाश्वतीः समाः ।
शुचीनां श्रीमतां गेहे योगभ्रष्टोऽभिजायते ।

योगभृष्टु (मन्न् एकाग्रकोरूक् जावुनत्तिन्ने गेल्लोलो) पुण्यकर्म केल्लेलेंक् मेल्चे लोकांतु पावुनु अनेकवर्ष् धंग रब्बूनु (वासु कोर्नु) शुचित्वयि, ऐश्वर्य्‌यि अस्सिल्लेंले कुडुंबांतु एवुनु जनिजत्ता (जन्म्‌गेत्ता)।

४२. अथवा योगिनामेव कुले भवति धीमताम् ।
एतद्धि दुर्लभतरं लोके जन्म यदीदृशम् ।

न्‌यि जल्यारि एकाग्रचित्त् कोरूक् कोल्वे योगियाले कुलांतूचि जनि जल्लो ह्मोणूयि जावुयात्। जल्यारि येलेक्कान् (एश्शि अस्सिल्लो) एाकु जन्मु मेलूक् होड् कष्ट्‌त्-(तें अत्यन्त् दुर्ल्लभ् त्)।

४३. तत्र तं बुद्धिसंयोगं लभते पौर्वदेहिकम् ।
यतते च ततो भूयः संसिद्धौ कुरुनन्दन !

हे कुरुनन्दन, तक्क ते जन्मांतु पूर्वजन्म् संबन्धि जावुनऽस्सिल्लो बुद्धि संयोगु (संस्कारु) मेल्त। ते उपरांते दुस्सरीयि योग सिद्धीक् जावुनु प्रयत्नु कर्ता।

४४. पूर्वाभ्यासेन तेनैव ह्रियते ह्यवशोऽपि सः ।
जिज्ञासुरपि योगस्य शब्दब्रह्मातिवर्तते ।

ते पूर्वाभ्यासानेचि अवशु जावुनु जल्यारीयि योगमार्गंतु तो आकृष्टु जत्त। योगु मन्नां कोरूक् आग्रहु अस्सिल्लोस्रि शब्दब्रह्माक् (कर्मापसून् संङ्गुचे वेदाक्) मनांकोर्नु प्रवर्त्तन् क्र्ता।

४५. प्रयत्नाधतमानस्तु योगी संशुद्धकिल्बिषः ।
अनेकजन्मसंसिद्धस्ततो याति परां गतिम् ।

जल्यारि चांगु (जैत्ते) प्रयत्नु कड्चो योगी पाप् नत्तिन्ने (मन्नांतूले दुख सर्वै प्र् गाल्नु) जैत्ते जन्मानि "सिद्धि मेल्नु" (मन्नाक् एाकग्र् कोर्नु) नितान्त् जावुनऽस्सिल्ले (परम्) शान्तीक् प्राप्तु जत्ता।

४६. तपस्विभ्योऽधिको योगी ज्ञानिभ्योऽपि मतोऽधिकः ।
कर्मिभ्यश्चाधिको योगी तस्माधोगी भवार्जुन !

तपस्वियांपशि श्रेष्टु त् योगी। (ए लोकांतूले सर्वै उपेक्ष कोर्नु देवाक् मात्र् बोज्जूनु बेस्सुचि त् तपस्वियो) ज्ञानु मेल्लेल्यांपशियि श्रेष्टु त् ह्मोणूयि त् हांव् अठेय्त। कर्म (प्रवर्त्ति) कर्त्तल्लेंपशीयि श्रेष्टूचि त् योगी। तें दुक्कून् (ते पसावत्) अर्जुना तू योगी जांका।

४७. योगिनामपि सर्वेषां मद्गतेनान्तरात्मना ।
श्रद्धावान्भजते यो मां स मे युक्ततमो मतः ।

सर्व योगियांतूयि धक्कून् कोणकी म्न्नांधक्कून् श्रद्धेन् अर्पित् जावुनऽस्सिल्ले अन्तरात्मावान् (भित्तेरस्सिल्ले प्राणन्) मक्क भोज्जीत, तो त् अत्यन्त् श्रेष्टु ह्मोणु हांव् सङग्त। (मिग्गेले अभिप्रायारि अत्यन्त् श्रेष्टु तो त्)।

ॐ तत् सदिति श्रीमद्भागवद्गीतासूपनिषत्सु ब्रह्मविद्यायां योगशास्त्रे श्रीकृष्णार्जुन संवादे "आत्मसंयमयोगो नाम षष्ठोऽध्यायः।

ॐ तत् सत् एश्शि श्रीमद्भगवद्गीतांतूले उपनिषतांतूले ब्रह्मविध्यांतूले योगशास्त्रांतूले श्रीकृष्णर्जुन संवादांतुले "अभ्यास योगु" (आत्म संयम योगु) ह्मोल्लोलो सटोवो (६) अध्यायु समाप्त्।

*****

अध्याय् - ७

ज्ञानविज्ञान योगु

श्री भगवानुवाच–

१. मय्यासक्तमनाः पार्थ! योगं युञ्जन्मदाश्रयः ।
असंशयं समग्रं मां यथा ज्ञास्यसि तच्छृणु ।

देवु सङ्ग्त– हे पार्थ, मिज्जेरि होडि भक्ति दोव्वोरूं, मक्काचि आश्रयु कोर्नु, योगु अभ्यासुकोर्नु संशयु नत्तिन्ने क्शिश संपूर्ण जावुनु मक्क मन्नांकोरूक् तुक्क जत्ने ह्मोणु अयिक्कुका।

२. ज्ञानं तेऽहं सविज्ञानमिदं वक्ष्याम्यशेषतः ।
यज्ज्ञात्वा नेह भूयोऽन्यज्ज्ञातव्यमवशिष्यते ।

तुक्क यें ज्ञान् हांव् संपूर्ण जावुनु (एकु संशयूयि जावुनत्तिन्ने) विज्ञानसहित् उपदेशु कोर्नु दित्त। तें मन्नांकेल्यारि मग्गीरि तुक्का कांयि पुणै जाण्जांका जल्लेने जावुनस्सुन्ना।

३. मनुष्याणां सहस्रेषु कश्चिधतति सिद्धये ।
यततामपि सिद्धानां कश्चिन्मां वेत्ति तत्त्वतः ।

मनुष्यांतु जैत्ते जणंतु एक्कोलो बि त् सिद्धि मेलूक् जावुनु प्रयत्नु कड्त। तश्शि अस्सिल्ल्यांतूयि (यत्न् कडचे सिद्धांतु अनेक सासांतु) एक्कोलो मात्रत् मक्क चांग् प्रकारि, पूर्ण जावनु, सर्व्व विधान्यि मन्नांकोर्चो जावुनऽस्तोलो।

४. भूमिरापोऽनलो वायुः खं मनो बुद्धिरेव च ।
अहंकार इतीयं मे भिन्ना प्रकृतिरष्टधा ।

मिग्गेलि ई प्रकृति ह्मण्तायि इत्तिकी ह्मल्लेरि, भूमि, जल्. अग्नि, वायु, आकाश्, म्न्न्, बुद्धि, अहंकारु एश्शि आट् (८) जावुनु वेग्वेगली अस्सिल्लि त्।

५. अपरेयमितरस्त्वन्यां प्रकृतिं विद्धि मे पराम् ।
जीवभूतां महाबाहो! ययेदं धार्यते जगत् ।

हे महाबाहो, ये अपरा प्रकृति त्। यें नंत्न जिनभूत् जावुनऽस्सिल्ले मिग्गेले परा प्रकृतीक् (श्रेष्ठ जावुनऽस्सिल्ले प्रकृतीक् जीवाक्) तू जाणजांक-मन्नां कोरुक। तें त् ये लोकांक्चि (जगत्ताक्) धारण् केल्लेया (दोर्नु रब्बीला)।

६. एतद्योनीनि भूतानि सर्वाणीत्युपधारय ।
अहं कृत्स्नस्य जगतः प्रभवः प्रलयस्तथा ।

ए दोनि विधानस्सिल्ले प्रकृतींतुधक्कूँ उद्भव् जल्लेने त् सर्व भूतयि (जीवजाल्यि) ह्मोणु तू मनांकोर्क। सर्वै लोकाचेयि उल्पत्तीयि (उद्भव्यि) लयन्यि मिज्जेरि त्।

७. मत्तः परतरं नान्यत्किञ्चिदस्ति धनञ्जय ।
मयि सर्वमिदं प्रोतं सूत्रे मणिगणा इव ।

हे धनञ्जय, मिज्जेरि धक्कूनु वेग्गले जावुनु कांयि पुणै न। यो लोकु सर्वै (जगत्त् सर्वै) एक् सुत्तारि गंत्तिल्ले रत्ना मोणी लेक्कान् मिज्जेरि लग्गूनुऽस्स्।

८. रसोऽहमप्सु कौन्तेय! प्रभास्मि शशिसूर्ययोः ।
प्रणवः सर्ववेदेषु शब्दः खे पौरुषं नृषु ।

हे कुन्तीपुत्र हांव् जलांतूले 'रस्' त्। अनीक् सूर्य चन्द्रांतु 'प्रभ' (उजवाडु) जावुनूयि, सर्व वेदांतूयि 'प्रणव्' (ओंकार्) जावुनूयि, आकाशंतु 'शब्दु' जावुनूयि, मनुष्यांतु "पौरुष्" जावुनूयि स्थिति कर्ता।

९. पुण्यो गन्धः पृथिव्यां च तेजश्चास्मि विभावसौ ।
जीवनं सर्वभूतेषु तपश्चास्मि तपस्विषु ।

भूमीवेलो पुण्यजावुनऽस्सिल्लो पोर्मोलूयि, अग्नींतुले तेजस्स्यि हांव् त्। सर्वांतुलोयि (सर्व भूतांतुलोयि) जीवन्यि (जीवन् शक्तीयि) तपस्वियांतु अस्सिल्ले तपस्स्यि हांव् त्।

१०. बीजं मां सर्वभूतानां विद्धि पार्थ सनातनम् ।
बुद्धिर्बुद्धिमतामस्मि तेजस्तेजस्विनामहम् ।

हे पार्थ, मक्क सर्व भूतांलेयि (सर्व जीवांलेयि) नित्य जावुनऽस्सिल्ले बीज् ह्मोण् मन्नांकोर्क। बुद्धि अस्सिल्लेले बुद्धीयि, तेजस्वि जाव्नऽस्सिल्लेले तेजस्स्यि हाव्ंचि त्।

११. बलं बलवतां चाहं कामरागविवर्जितम् ।
धर्माविरुद्धो भूतेषु कामोऽस्मि भरतर्षभ !

हे भरतश्रेष्ठा, ब्ल् अस्सिल्लेले काम, राग् रहित् जावुनऽस्सिल्ले ब्ल् हांव् त्। भूतांतूयि (जीवस्सिल्लेलेंतूयि) दिक्कूएंचे धर्माक् विरुद्ध जावुनत्तिल्ले काम्यि हाव्ंचित्।

१२. ये चैव सात्विका भावा राजसास्तामसाश्च ये ।
मत्त एवेति तान्विद्धि न त्वहं तेषु ते मयि ।

खंचे सर्वै की सत्विक्, राजस्स् तामस्स् जावुनऽस्सिल्ले भाव् तें सर्वै मिज्जेरि धक्कून् उद्भव् जल्लेने त् ह्मोणु मन्नांकोर्क। जल्यारि तें मिज्जेरि त्। हांव तंतु न्यि (तें मक्क अधीन् जावुनऽस्सिन्ने त्)।

१३. त्रिभिर्गुणमयैर्भावैरेभिः सर्वमिदं जगत् ।
मोहितं नाभिजानाति मामेभ्यः परमव्ययम् ।

यो लोकु सर्वै सत्व्, रजा, तमोगुणचे रूपस्सिल्ले (गुणनुभव् अस्सिल्ले) ए तीनि भावानीयि मोहु पंचे त्। अंतु (त्रिगुणंतु) धक्कून् हांव् व्यत्यस्थु त् ह्मल्लेले सत्य् यो लोकु (जगत्त्) मन्नांक्र्नायि।

१४. दैवी ह्येषा गुणमयी मम माया दुरत्यया ।
मामेव ये प्रपधन्ते मायामेतां तरन्ति ते ।

इत्तिकी ह्मल्लेरि दिव्य जावुनूयि, गुण्कोर्चि जावुनूयि अस्सिल्लि मिग्गेलि ई माय तारण् कोरूक् प्रयास्सशिल्लि त्। मक्काचि कोण् भोजितायि तन्नि ये मायेक् तारण् कर्तायि।

१५. न मां दुष्कृतिनो मूढाः प्रपधन्ते नराधमाः ।
माययापहृतज्ञाना आसुरं भावमाश्रिताः ।

बल्लाव्पण् कोर्चेयि, मूढ्यि (विवोरुनत्तिन्नीयि) जावुनऽस्सिल्लिं मनीष् मायेन् ज्ञाननत्तिल्लेयि आसुरभाव् (असुराले प्रवर्त्ति) अस्सिल्लेयि पस्सावत् मक्क भोज्जिनायि। (आसुर भावापसूनु सोलावे अध्यायांतु विस्तारान् संङ्गिन्नस्स्)।

१६. चतुर्विधा भजन्ते मां जनाः सुकृतिनोऽर्जुन !
आर्तो जिज्ञासुरर्थार्थी ज्ञानी च भरतर्षभ !

हे भारतांतु श्रेष्ठु जावुनऽस्सिल्ले अर्जुना–

'आर्त्तु' दुःखान्ऽस्सिल्लो, 'जिज्ञासु' उत्कण्ठ अस्सिल्लो सर्वै जाण्जंचाक् आग्रोहु अस्सिल्ले मन्न् अस्सिल्लो, 'अर्थार्थि' भौतिक संबत् क्शिश क्र्प् ह्मोणु अन्वषण् कोर्चो – सोद्दुच्चो, 'ज्ञानि' विवोरु अस्सिल्लो– सर्व कैरे पसूनूयि अस्सिल्लो विवोरु शरिजावुनु कोल्चो एश्शि चारिविध् (4type) सुकृतियो मक्क बोज्जितायि।

१७. तेषां ज्ञानी नित्ययुक्त एकभक्तिर्विशिष्यते ।
प्रियो हि ज्ञानिनोऽत्यर्थमहं स च मम प्रियः ।

तंतु धक्कूनु नित्य् युक्तूयि (योगु अस्सिल्लो) चांगि भक्तीयि अस्सिल्लो ज्ञानि त् श्रेष्टु। इत्तिकी ह्मल्लेरि ज्ञानीक् हांव् अत्यन्त् प्रियु त्। मक्क तोवेयि प्रियु त्।

१८. उदाराः सर्व एवैते ज्ञानी त्वात्मैव मे मतम् ।
आस्थितः स हि युक्तात्मा मामेवानुत्तमां गतिम् ।

ते सर्वै (आर्त्तु, जिज्ञासु, अर्थार्थी, ज्ञानि एश्शि चारि विध् अस्सिल्लि देवाबोज्जुचि सुकृतियो) उल्कृष्ट् त्। जल्यारि ज्ञानि मिग्गेलो आत्मावु त् (हांव्चि त् आत्मस्वरूप्चि त्) ह्मोणु त् मिग्गेलो अभिप्रायु। इत्तिकी ह्मल्लेरि युक्तात्मावु जावुनु तो सग्गडांतूयि उत्कृष्ट् जावुनऽस्सिल्ले मक्काचि आश्रयि जंचो त्।

१९. बहूनां जन्मनामन्ते ज्ञानवान्मां प्रपधते ।
वासुदेवः सर्वमिति स महात्मा सुदुर्लभः ।

जयित्ते (अनेक्) जन्मांचे उपरांते (तंतु धक्कूनु मेल्लेले–स्वायत्त् केल्लेले पुण्य् परिपाकान् मनो नियन्त्रणन्) ज्ञानि मक्क प्रापि जत्त। (मिज्जे लग्गि पंव्त)! वासुदेवु त् सर्वै ह्ममल्लेनरिव् (जणकायो) मन्नांकेल्लोलो तो 'महात्मावु' अत्यन्त दुर्ल्लभ् त् (तश्शि अस्सिल्लो ऊणे त्)।

२०. कामैस्तैस्तैर्हृतज्ञानाः प्रपधन्तेऽन्यदेवताः ।
तं तं नियममास्थाय प्रकृत्या नियताः स्वया ।

एक्केक् कामान् (एक्केक् मतिरीनऽस्सिल्ले प्रवर्त्ति कोर्नु) मेह्ल्लेले ज्ञानान् (अरिवान्) ते ते नियमांक् अनुष्टान् कोर्नु स्वप्रकृतीन् (तं तंगेले स्वभावान्) नियन्त्रित् जावुनु अन्य देवतांक् बोज्जितायि।

२१. यो यो यां यां तनुं भक्तः श्रद्धयार्चितुमिच्छति ।
तस्य तस्याचलां श्रद्धां तामेव विदधाम्यहम् ।

खोंचो खोंचो भक्तु श्रद्धेन् खंचे खंचे देवतास्वरूपाक् अर्च्चन् कोरूक् आग्रहु कर्त्तवे ते ते भक्तांक् ते संबन्ध् जावुनऽस्सिल्ले बोज्जुच्चे लेक्कान् अचञ्चल् श्रद्धाचि हांव् दित्ता।

२२. स तया श्रद्धया युक्तस्तस्याराधनमीहते ।
लभते च ततः कामान्मयैव विहितान्हि तान् ।

तो तेंचि श्रद्धेन् ते देवताले आराधन् केल्यारीयि तल्फल् जावुनु मिज्जानेचि दिंचे कामूयि भोग्यि तक्क मेळ्ता।

२३. अन्तवत्तु फलं तेषां तद्भवत्यल्पमेधसाम् ।
देवान्देवयजो यान्ति मद्भक्ता यान्ति मामपि !

जल्यारि अल्पबुद्धि जावुनऽस्सिल्ले तंक मेल्चे ते फल् अल्प् कालाक् त् रब्बत। एक्केक् देवांक् उपासन् कोर्च्चिं ते ते देवालेयि मिग्गेल् भक्त् मिज्जेयि लग्गि शरण् पंव्तायि (मक्कायि प्रापिजत्तायि)।

२४. अव्यक्तं व्यक्तिमापन्नं मन्यन्ते मामबुद्धयः ।
परं भावमजानन्तो ममाव्ययमनुत्तमम् ।

मिग्गेले अव्यय्यि अनुत्तम्यि जावुनऽस्सिल्ले परमभाव् (विश्वातीत् भाव् - सर्व लोकाक्यि अतीतु जावुनऽस्सिल्ले मिग्गेले भाव्) मन्नांकोर्नत्तिल्ले अव्यक्तु जावुनस्सिल्ले, मक्क बुद्धि नत्तिन्नि, व्यक्ति जावुनस्सिल्लो (नाव् रूप्, अतिर् (अन्त्) जावुनऽस्सिल्लो) ह्मोणु अठेय्तायि।

२५. नाहं प्रकाशः सर्वस्य योगमायासमावृतः ।
मूढोऽयं नाभिजानाति लोको मामजमव्ययम् ।

योगमायेन् सर्वांतूयि बोर्नु (आवरण् कोर्नु) हांव् सर्वांकयि प्रत्यक्षु न्यि। (दिक्कू एंन) हांव् जननरहितूयि अव्ययूयि ह्मोणु मूढ् जावुनऽस्सिल्लो यो लोकु मन्नांक्र्नायि।

२६. वेदाहं समतीतानि वर्तमानानि चार्जुन !
भविष्याणि च भूतानि मां तु वेद न कश्चन ।

हे अर्जुना, जल्लेनेयि, अत्त् अस्सिन्नेयि, अनीक् जंचाक्व्च्चेयि जावुनऽस्सिल्ले भूतसमूहाक् (सर्वै जीवजालांक्यि) सर्वांक्चि हांव् मन्नांकर्त्ता। जल्यारि हांव् कोण् ह्मोणु कोण्पुणै मन्नांक्र्न्नायि।

२७. इच्छाद्वेषसमुत्थेन द्वन्द्वमोहेन भारत !
सर्वभूतानि संमोहं सर्गे यान्ति परंतप !

हे परंतपा, भारत, इच्छ, द्वेषु अंतु धक्कूनु जंचे द्वन्द्व मोहान् सर्व भूत्यि सृष्टिजंचे वेलारीचि मोहाक् अधीन् जावुनु व्त्तायि।

२८. येषां त्वन्तगतं पापं जनानां पुण्यकर्मणाम् ।
ते द्वन्द्वमोहनिर्मुक्ता भजन्ते मां दृढव्रताः ।

जल्यारि पुण्य कोर्चीयि पाप्निशेष्नत्तिन्नीयि जावुनऽस्सिल्लि ज्न् द्वन्द्व मोहांतुधककूँ मुक्त् जावुनु दृढनिष्टेन् मक्क बोजितायि।

२९. जरामरणमोक्षाय मामाश्रित्य यतन्ति ये ।
ते ब्रह्म तद्विदुः कृत्स्नमध्यात्मं कर्म चाखिलम् ।

वार्द्धक्यांतूयि मरणंतूयि धक्कूनु मुक्ति मेलूक् मक्क आश्रयु कोर्नु कोण् सर्वै प्रयत्नु कर्त्तायि वे तन्नि सग्गयि ते ब्रह्माकयि विशद् जावुनु अद्ध्यात्माक्यि (आत्मापसूनस्सिल्ले ज्ञानाक्यि) सर्व कर्माक्यि जाण् जत्तायि।

३०. साधिभूताधिदैवं मां साधियज्ञं च ये विदुः ।
प्रयाणकालेऽपि च मां ते विदुर्युक्तचेतसः ।

सर्वातूयि होड्डु जावुनऽस्सिल्लोयि (भूतांतूयि, दैवांतूयि, यज्ञांतूयि होड्डु) सर्वै अस्सिल्लो जावुनुयि मक्क कोण् सग्गय् मन्नांकर्त्तायि तंक मृत्यु कालाक्यि योग युक्त् जावुनऽस्सिल्ले म्न्न् जावुनु मिज्जेरि पंव्तायि।

ॐ तत् सदिति श्रीमद् भागवद्गीतासूपनिषत्सु ब्रह्म विध्यायां योगशास्त्रे श्रीकृष्णार्जुन संवादे "ज्ञानविज्ञान योगो" नाम सप्तमोऽध्यायः।

ॐ तत् सत् एश्शि श्रीमद् भगवद्गीतांतूले, उपनिषत्तांतूले ब्रह्मविध्यांतूले योगशास्त्रांतूले श्रीकृष्णार्जुन संवादांतूले "ज्ञानविज्ञान योगु" ह्मोल्लोलो सत्त्वो (७) अध्यायु समाप्त्।

*****



अध्याय् - ८

अक्षर ब्रह्म योगु

अर्जुन उवाच–

१. किं तद्ब्रह्म किमध्यात्मं किं कर्म पुरुषोत्तम !
अधिभूतं च किं प्रोक्तमधिदैवं किमुच्यते ।

अर्जुनान् कृष्णलग्गि निंगीने–

हे पुरुषौत्तम, इत्तिकी ते ब्रह्म ह्मोण् सङ्गिन्ने तें अद्ध्यात्म् इत्ते, कर्म इत्ते, अधिभूत् इत्ते, इत्तिकी अधिदैवं ह्मोण् संङ्गुचे।

२. अधियज्ञः कथं कोऽत्र देहेऽस्मिन्मधुसूदन ।
प्रयाणकाले च कथं ज्ञेयोऽसि नियतात्मभिः ।

हे मधुसूदना- अधियज्ञु ह्मोणु संगिल्लो कोणकी? अंतु अधियज्ञु क्शिशि अस्तोलो? ए देहांतु अस्तोलो वे– प्रयाणकालाक्यि (जीवितकालाक्यि) मृत्युकालाक्यि संयतचित्तानि जावुनु क्शिशकी देवु ज्ञेयु जावुनु रब्ब्ता।

३. अक्षरं ब्रह्म परमं स्वभावेऽध्यात्ममुच्यते ।
भूतभावोद्भवकरो विसर्गः कर्मसंज्ञितः ।

श्रीकृष्णन् संङ्गीने–

श्रेष्ट् जावुनस्सिल्ले "अक्षर् त् ब्रह्म्" स्वभावु त् अद्ध्यात्म्, जीवियाले (भूताले) भावविशेषान् कोर्चे फ्लाक् (विसर्गक्) विशिष्ट् जावुनऽस्सिल्ले सृष्टीक् कर्म् ह्मोण् संगतायि।

४. अधिभूतं क्षरो भावः पुरुषश्चाधिदैवतम् ।
अधियज्ञोऽहमेवात्र देहे देहभृतां वर ।

हे देहधारांकूटांतु श्रेष्टु जावुनऽस्सिल्या–अधिभूत् ह्मल्लेने क्षर्जावुनऽस्सिल्ले भावु त्। पुरुषु त् अधिदैवत्। ये देहांतु अस्सिल्लो आवंचि त् अधियज्ञु।

५. अन्तकाले च मामेव स्मरन्मुक्त्वा कलेवरम् ।
यः प्रयाति स मद्भावं याति नास्त्यत्र संशयः ।

अन्त्य कालाक् मक्काचि स्मरण् कोर्नु शरीर् सोणु कोण्की व्त्त, तो मद्भावाक् (देवान् दिंचे चांग् भावाक्) देवाल् भावाक् प्राप्तु कोर्त्तोलो ह्मल्लेलेक् संशयु ना।

६. यं यं वापि स्मरन्भावं त्यजत्यन्ते कलेवरम् ।
तं तमेवैति कौन्तेय सदा तद्भावभावितः ।

हे कौन्तेय खंचे खंचे भावाक् स्मरण् कोर्नु अन्त्यकालाक् कोणकी शरीर् (देह्) त्यागु कर्त्ता, सग्ग वेलारीयि तेचि भावारि म्न्न् जावनु अस्सिल्लो तो ते ते भावाक्चि प्रापिजत्ता।

७. तस्मात्सर्वेषु कालेषु मामनुस्मर युध्य च ।
मय्यर्पितमनोबुद्धिर्मामेवैष्यस्यसंशयम् ।

तें दुक्कूनु (तें पसावत्) केदनायि मक्क स्मरण कोर्नु युद्ध कोरुक। मिज्जेरि म्न्न्य् बुद्धीयि अर्प्पण् केल्लोलो तू मक्काचि प्रापि जत्तोलो ह्मल्लेल्यांतु संशयुना।

८. अभ्यासयोगयुक्तेन चेतसा नान्यगामिना ।
परमं पुरुषं दिव्यं याति पार्थानुचिन्तयन् ।

हे पार्थ, अभ्यासयोगनुयुक्त्यि वेग्ग्ले एक्कांतूयि वोच्चूनत्तिल्लेयि जावुनस्सिल्ले चेतस्सान् (देवाचेरि मात्र् मन्न् दोव्वोरु) दुस्स्रीयि दुस्सरीयि चिन्तन् कोर्चो– ते दिव्य जावनऽस्सिल्ले परम पुरुषाक् प्रापि जत्ता।

९. कविं पुराणमनुशासितारमणोरणीयांसमनुस्मरेधः ।
सर्वस्य धातारमचिन्त्यरूपमादित्यवर्णं तमसः परस्तात् ।

१०. प्रयाणकाले मनसाचलेन भक्त्या युक्तो योगबलेन चैव ।
भ्रुवोर्मध्ये प्राणमावेश्य सम्यक् स तं परं पुरुषमुपैति दिव्यम् ।

कवीयि, सर्वज्ञूयि, पुराण् कोल्चोयि, लोकाक् नियन्त्रण् कोर्चोयि अणुवांकूट्टांतु अणूयि, सर्वांतूयि अस्सिल्लोयि, चिन्तेंतु मेळ्नत्तिल्ले

रूपस्सिल्लोयि, कळ्क्काक् अतीतूयि आदित्याले वोर्ण्णुऽस्सिल्लोयि जावुनऽस्सिल्ले पुरुषाक् अन्त्य कालाक् अचञ्चल् जावुनस्सिल्ले म्न्नान्यि भक्तीन्यि, युक्तुजावुनु, योगबलान् भ्रूमद्ध्यांतु प्राणक् (प्राणवायूक्) शरिजावुनु चोडोवुनु दोव्वोरु, अनुस्मरण् कर्त्त कोणकी तो दिव्य् जावुनऽस्सिल्ले ते परम पुरुषाक्चि प्राप्तु जत्त। देवालगि पंता।

११. यदक्षरं वेदविदो वदन्ति विशन्ति यधतयो वीतरागाः ।
यदिच्छन्तो ब्रह्मचर्यं चरन्ति तत्ते पदं संग्रहेण प्रवक्ष्ये ।

वेदु कल्त्तल्लिं 'अक्षर' ह्मोण् संङ्गतायि इत्याक्की? राग रहित् (भूमीवेले क्स्सल् मोहयि मोह भंग्यि नत्तिल्ले) जावुनऽस्सिल्ले यतीयो खंचांतु प्रवेशु कर्त्तायि वे, ब्रह्मचर्य् अनुष्ठान् कर्त्तायि खंचे आग्रहु कोरुंकी ते होल्ले परम्पदाक् हांव् तुक्क संक्षेप् कोर्नु (संक्षिप्त् जावनु) संङ्गूँ दीन्।

१२. सर्वद्वाराणि संयम्य मनो हृदि निरुध्य च ।
मूर्ध्न्याधायात्मनः प्राणमास्थितो योगधारणाम् ।

१३. ओमित्येकाक्षरं ब्रह्म व्याहरन्मामनुस्मरन् ।
यः प्रयाति त्यजन्देहं स याति परमां गतिम् ।

सर्व इन्द्रिय् द्वारांकयि धंपूनु, मन्नाक् हृदयांतु रब्बोवुनु, तलुवेरि (मूर्द्धावांतु) तग्गेले प्राणक् द्रढ् जावुनु रब्बोवुनु, योगधारणेन् (देवाक् मात्र् मन्नांतु स्मरण् कोर्नु) "ॐ" ह्मल्लेने एकाक्षर मन्त्र् उच्चारण् कोर्नु कोणकी एक्कोलो देहत्यागु कोर्नु प्रयाण् कर्त्तवे तो परम् जावुनऽस्सिल्ले गतीक् प्राप्तु जत्त-तक्क नित्य शान्ति मेळ्ता। (एं त् योगग्नीन् अस्सिल्ले देहत्यागचे संब्रदाय्)।

१४. अनन्यचेताः सततं यो मां स्मरति नित्यशः ।
तस्याहं सुलभः पार्थ! नित्ययुक्तस्य योगिनः ।

हे पार्थ, अनन्यचित्तु जावुनु (मन्नांतु वेग्ग्ले क्स्सल् विचारु नत्तिन्ने देवाक् मात्र् अठोवुनु) कोणकी मक्क नित्य्यि निरन्तर्यि जावुनु स्मरण्

कर्त्त, नित्ययुक्तु जावुनऽस्सिल्ले ते योगीक् हांव् सुलभु त्। (सर्व वेलारीयि मेल्तोलो–तग्गेले सर्व कैरेंतूयि हांव् अस्तोनो)।

१५. मामुपेत्य पुनर्जन्म दुःखालयमशाश्वतम् ।
नाप्नुवन्ति महात्मानः संसिद्धिं परमां गताः ।

मक्क शरण् पावुनु सिद्धि मेल्चे महात्माव् सर्वै दुखान् भर्लेलेयि अशाश्वत्यि जावुनऽस्सिल्ले जन्माक् मग्गीरि (उपरांते) प्राप्य जंना।

१६. आब्रह्मभुवनाल्लोकाः पुनरावर्तिनोऽर्जुन !
मामुपेत्य तु कौन्तेय पुनर्जन्म न विद्यते ।

हे कौन्तेय, ब्रह्मलोकु पर्यान्त् अस्सिल्लो लोकु सर्वै पुनरावर्त्तन् अस्सिल्लो त्। (दुसरीयि दुस्रीयि जनन् मरण् जंचो त्)। जल्यारि मक्क प्राप्य जल्यारि मग्गीरि पुनर्जन्मु संभवु जंना।

१७. सहस्त्रयुगपर्यन्तमहर्यद्ब्रह्मणो विदुः ।
रात्रिं युगसहस्त्रान्तां तेऽहोरात्रविदो जनाः ।

एकु सासु युग् भोर्नु प्ल्लेले त् ब्रह्मावालो एाकु दीसु ह्मोणूयि, युगसहस्त्र दीर्घ् अस्सिल्ले त् (दिग्गयि अस्सिल्ले त्) ब्रह्मावालि एकि राति ह्मोणूयि कोण् सग्गयि जाण् जत्तायि तन्नि त्– "अहोरात्र्" इत्तिकी ह्मोण् जाण्जंचि।

१८. अव्यक्ताद्व्यक्तयः सर्वाः प्रभवन्त्यहरागमे ।
रात्र्यागमे प्रलीयन्ते तत्रैवाव्यक्तसंज्ञके ।

अव्यक्तांतुधक्कूनु सर्वै व्यक्तीयोयि (उंचारि संगिल्ले लेक्कान्) दिस्साचे आरंभारि (फल्ले फल्ले जंचे फूडे) उद्भवु जत्त (जनिजत्तायि)। रत्तीचे आरंभारि तेंचि (तन्नि सर्वै) अव्यक्तांतूचि लयिजत्तायि।

१९. भूतग्रामः स एवायं भूत्वा भूत्वा प्रलीयते ।
रात्र्यागमेऽवशः पार्थ! प्रभवत्यहरागमे ।

हे पार्थ, ते भूतसमूह्चि रत्तीचे आरंभारि अवश् जावुनु, परतन्त्र जावुनु (स्वातन्त्रय् नत्तिन्ने) जनन्गेवुनु जनन् गेवुनु नां जत्त। फल्ले जंचाक् आरंभु प्णफडेन् उद्भवूयि जत्ता।

२०. परस्तस्मात्तु भावोऽन्योऽव्यक्तोऽव्यक्तात्सनातनः ।
यः स सर्वेषु भूतेषु नश्यत्सु न विनश्यति ।

जल्यारि ते अव्यक्तांतु धक्कूँ श्रेष्ठ जावुनु केदनायि अस्सुचे वेग्ग्ले एक् अव्यक्त् भावस्स्। तें त् सर्व भूतांलेयि नाशांतूयि नाशुनत्तिन्ने रब्बुचे।

२१. अव्यक्तोऽक्षर इत्युक्तस्तमाहुः परमां गतिम् ।
यं प्राप्य न निवर्तन्ते तद्धाम परमं मम ।

ते अव्यक्त् जावुनऽस्सिल्लेक् "अक्षर्" ह्मोण् संङ्गतायि। तक्क श्रेष्ठ जावुनऽस्सिल्लि ग्ति ह्मोणूयि संगतायि। तक्क प्राप्प्जल्यारि मग्गीरि (उपरांते) पुनर्जन्मु न। तें त् मिग्गेने श्रेष्ठ् जावुनऽस्सिल्ले धाम् (बेस्सुचे स्थ्ल्-बेस्सुचो थायु)।

२२. पुरुषः स परः पार्थ! भक्त्या लभ्यस्त्वनन्यया ।
यस्यान्तःस्थानि भूतानि येन सर्वमिदं ततम् ।

हे पार्थ, कोणले हृदयांतु (हर्देतु) भूत सर्वै स्थिति कर्त्तायि कोणचान् यें सर्वै व्याप्त् जावुनस्स् तो श्रेष्ठु जावुनऽस्सिल्लो पुरुषु अनन्य (एकाग्र्जावुनऽस्सिल्ले) भक्तीन् मेळ्चो त्।

२३. यत्र काले त्वनावृत्तिमावृत्तिं चैव योगिनः ।
प्रयाता यान्ति तं कालं वक्ष्यामि भरतर्षभ !

हे भरतश्रेष्ठ, खंचे कालारि प्रयाण्कोर्चि योगीयो पुनरावृत्ति (पुनर्जन्मु) नत्तिल्लेयि, पुनरावृत्ति प्राप्य्जंचेयि ह्मोणु ते कालापसूँ हांव् सङ्गून् दीन्।

२४. अग्निर्ज्योतिरहः शुक्लः षण्मासा उत्तरायणम् ।
तत्र प्रयाता गच्छन्ति ब्रह्म ब्रह्मविदो जनाः ।

अग्नि देवत, दीसु (ज्योतिस्स्), शुक्लपक्ष् (उत्तरायणंतूले स् मास् (६ मास्), अंतुल्यान् (ये देवतेचे वटटेन्) गमन् कोंचे (वोच्चुच्चे–बोंचे) ब्रह्मज्ञ् जावुनऽस्सिल्ले ज्न् ब्रह्माक् प्राप्य्जत्तायि (ब्रह्मालग्गि पव्तायि)।

२५. धूमो रात्रिस्तथा कृष्णः षण्मासा दक्षिणायनम् ।
तत्र चान्द्रमसं ज्योतिर्योगी प्राप्य निवर्तते ।

धूम् (दूवोरु), राति, कृष्णपक्ष् (दक्षिणयनांतूले ६ मास्) अंतुल्यान् ये देवतांले वट्टेन्) गमन् कोर्चे योगीयो चान्द्रमस् जावुनऽस्सिल्ले ज्योतिस्साक् (चन्द्र लोकाक्) प्राप्य् कोर्नु दुस्स्रीयि भूमीरि एत्तायि (दुस्सरीयि भूमीरि जन्मुगेत्तायि)।

२६. शुक्लकृष्णे गती ह्येते जगतः शाश्वते मते ।
एकया यात्यनावृत्तिमन्ययावर्तते पुनः ।

जगत्ताचे (लोकांतूले) शुक्लपक्ष्यि कृष्णपक्ष्यि–स् मास् ये दोनि वट्टेयि (गतीयि) शश्वत् त् ह्मोण् सङ्गतायि। एक्कांतुलेन् वच्चांक् अनावृत्तीयि (मोक्षयि–पुनर्जन्मुनत्तिल्लि–अवस्थयि) अनियेक्कांतुलेन् गमन् कोर्चांक् पुनर्जन्मूयि जत्ता।

२७. नैते सृती पार्थ! जानन्योगी मुह्यति कश्चन ।
तस्मात्सर्वेषु कालेषु योगयुक्तो भवार्जुन !

हे पार्थ, ये दोन्नीयि माग्र्गक्यि मन्नां कोर्चो एकु योगीयि मोहाक् अधीनु जायिन। हे अर्जुना, तें दुक्कूनु (ते पस्सावत्) तू सग्ग् कालाक्यि योगयुक्तु जावुनस्सुका।

२८. वेदेषु यज्ञेषु तपःसु चैव दानेषु यत्पुण्यफलं प्रदिष्टम् ।
अत्येति तत्सर्वमिदं विदित्वा योगी परं स्थानमुपैति चाद्यम् ।

ये तत्व मन्नांजल्लेनि योगीयो– वेदु, यज्ञ् तपस्स् दान् अज्जान् सर्वै मेळ्चे सर्व पुण्य फलाप्श्शि उंचारि त्। तन्नि ये लोकांतु श्रेष्ठ् जावुनऽस्सिल्ले देवालग्गि पवंतायि जत्ता।

ॐ तत् सदिति श्रीमद् भगवद् गीतासूपनिषत्सु ब्रहमविध्यायां योगशास्त्रे श्रीकृष्णार्जुन संवादे "अक्षरब्रह्मयोगे" नाम अष्टमोऽध्यायः ।

ॐ तत् सत् एश्शि श्रीमद् भागवद्गीतांतूले उपनिषत्तांतूले ब्रह्मविद्ध्यांतूले योगशास्त्रांतूले श्रीकृष्णार्जुन संवादांतु "अक्षरब्रह्मयोगु" ह्मोल्लोलो अट्टोवो (८) अध्यायु समाप्त्।

*****



अध्याय् - ९

राजविधाराजगुह्ययोगु

श्रीभगवानुवाच–

१. इदं तु ते गुह्यतमं प्रवक्ष्याम्यनसूयवे ।
ज्ञानं विज्ञानसहितं यज्ज्ञात्वा मोक्ष्यसेऽशुभात् ।

देवान्सङ्गीले–

अनीक् होल्ले रहस्यि विज्ञानसमन्वित्यि जावुनऽस्सिल्ले ये "ज्ञानाक्" असूय (कुसुंगायो) नत्तिल्ले– दोषदृष्टिनत्तिल्ले तुक्क हांव् उपदेशु कोर्नु दीन्। यें जाण्जल्यारि तू अशुभांतुधक्कूँ (मन्नांतूले विषमांतु धक्कूनु) मुक्तु जत्तोलो।

२. राजविद्या राजगुह्यं पवित्रमिदमुत्तमम् ।
प्रत्यक्षावगमं धर्म्यं सुसुखं कर्तुमव्ययम् ।

यें विध्येंतु दोवोर्नु श्रेष्ठ्यि, अत्यन्त् रहस्यि पवित्र्यि, उत्तम्यि, संकीचि मनांकोरुक् जंचेयि, धर्म्मानुकूल्ययि, होग्गी अनुष्टान् कोरूक् जंचेयि, अव्यय्यि (दिक्कूएवुनत्तिल्लेयि) त्। क्षत्रियांले कूट्टांतु मात्र् प्रचारु जल्लेले कारणन् राजविधा राजगुह्यं ह्मोणूयि संङ्गुयात्।

३. अश्रद्दधानाः पुरुषा धर्मस्यास्य परंतप !
अप्राप्य मां निवर्तन्ते मृत्युसंसारवर्त्मनि ।

हे शत्रुनाशना, ये धर्मांतु श्रद्धनत्तिल्ले सर्वै–मक्क शराण् पाव्नत्तिल्ले मृत्युसंसार मार्ग्गंतु (मरणंतूयि जीवितांतूयि) परिभ्रमु कड्तायि।

४. मया ततमिदं सर्वं जगदव्यक्तमूर्तिना ।
मत्स्थानि सर्वभूतानि न चाहं तेष्ववस्थितः ।

यो लोकु सर्वै अव्यक्तमूर्त्ति जावुनऽस्सिल्ले (दिक्कू एंचाक् प्ण जल्लेले) मिज्जान् व्याप्त् त्। (हांव् ए जगत् सग्गयि व्यपिजावुनस्स्) सर्व भूत्यि मिज्जेरि स्थिति कर्तायि। जल्यारि हांव तंचेरि न्यि स्थिति कर्ता।

५. न च मत्स्थानि भूतानि पश्य मे योगमैश्वरम् ।
भूतभृन्न च भूतस्थो ममात्मा भूतभावनः ।

जल्यारि सत्याक् हांव् असङ्गूयि, निर्लेपूयि कोणले कूटांतु अस्सिल्लेयि न्यि–स्वतन्त्रु त्। भूत् सर्वै कल्पित् पसावत् हांव् सङ्गल्पु कोर्चेयि जंचेयि त्। तें मिज्जेरि स्थिति क्र्ना। मिग्गेले ऐश्वर्य जावुनऽस्सिल्ले योगक् तू दर्शन् क्रि – भूत् मिग्गेले आत्मावाक् अधीन् त्। हांव् तंक्क जांका-जल्लेने दीवुनु पोषण् कर्ता। जल्यारि भूतांतु हांव स्थिति क्र्ना।

६. यथाकाशस्थितो नित्यं वायुः सर्वत्रगो महान् ।
तथा सर्वाणि भूतानि मत्स्थानीत्युपधारय ।

सर्व कडेयि सग्ग् वेलारीय् बोंचेयि, महत्त्यि जावुनऽस्सिल्ले वारे नित्यि आकाशंतु स्थिति कर्त क्शिकी, त्शीचि सर्व जीवजाल्यि मिज्जेरि स्थिति कर्तायि ह्मोणु मनां कोर्का।

७. सर्वभूतानि कौन्तेय प्रकृतिं यान्ति मामिकाम् ।
कल्पक्षये पुनस्तानि कल्पादौ विसृजाम्यहम् ।

हे कौन्तेय सर्व भूत्यि मिग्गेले अधीनारि-मिग्गेले अनुसरण् जावुनु मिग्गेल् प्रकृतीक् प्राप्य् जाव्प्यि दुस्सरीयि तक्क सृष्टि क्र्प्यि जत्त। कल्पक्षय् जायनाभडेन् ते भूत् मिग्गले प्रकृतीक् प्राप्य्जत्त। कल्पारंभारि हांव् दुस्सरीयि तक्क सृष्टीयि कर्ता।

८. प्रकृतिं स्वामवष्टभ्य विसृजामि पुनः पुनः ।
भूतग्राममिमं कृत्स्नमवशं प्रकृतेर्वशात् ।

मिग्गेले प्रकृतीक् वश् (अधीन्) कोर्नु हांव् ए भूत समूहाक् सर्वै दुस्सरीयि दुस्सरीयि (प्रकृतीक्) अधीन् कोर्नुयि अस्वतन्त्र् कोर्नूयि सृष्टि कर्ता।

९. न च मां तानि कर्माणि निबध्नन्ति धनञ्जय !
उदासीनवदासीनमसक्तं तेषु कर्मसु ।

हे धनञ्जय, हांव् ते कर्मांतु होल्लो उल्साहु दक्कोवुनत्तिल्लोयि, असक्तूयि पसावत् मक्क ते कर्म् सर्वै बन्धन् क्र्ना।

१०. मयाध्यक्षेण प्रकृतिः सूयते सचराचरम् ।
हेतुनानेन कौन्तेय! जगद्विपरिवर्तते ।

हे कौन्तेय, सर्वांचेयि अधिपु (नियन्तावु) जावुनऽस्सिल्लो हांव् कारण् जावुनु प्रकृति चराचरात्मक् (प्रकृतींतूले बोंचेयि बोंवुनत्तिल्लेयि) जावुनऽस्सिल्ले ये लोकाक् (जगत्ताक्) दुस्सरीयि दुस्सरीयि जनन् गेवुनु रब्बीलिया। तश्शि मिग्गेले अधिष्ठानांतु (देवाले अधीनारि) यो लोकु सविशेष् जावुनु परिवर्त्तन् कोरु रब्बीला।

११. अवजानन्ति मां मूढा मानुषीं तनुमाश्रितम् ।
परं भावमजानन्तो मम भूतमहेश्वरम् ।

१२. मोघाशा माघकर्माणो मोघज्ञाना विचेतसः ।
राक्षसीमासुरीं चैव प्रकृतिं मोहिनीं श्रिताः ।

मिग्गेले सर्व भूतमहेश्वर् स्वरूप् जावुनऽस्सिल्ले श्रेष्ठ भावाक् कोल्नत्तिन्ने (मन्नां कोर्नत्तिन्ने) आशायि; कर्मयि, ज्ञान्यि निषफ्ल् जावुनऽस्सिन्नीयि, विपरीत् मन्न् अस्सिन्नीयि–राक्षसीयि, आसुरीयि, मोहिनीयि जावुनऽस्सिल्ले प्रकृतीक् आश्रयुकोर्नु रबुच्चो मूढलोकु मानुषदेह् स्वीकारु कोर्चे मक्क अवगणँ कर्तायि। (मक्क बहुमानु क्न्नायि)।

१३. महात्मानस्तु मां पार्थ! दैवीं प्रकृतिमाश्रिताः ।
भजन्त्यनन्यमनसो ज्ञात्वा भूतादिमव्ययम् ।

हे पार्थ, दैवीक् जावुनऽस्सिल्ले प्रकृतीक् आश्रयु केल्लेले महात्माजावुनऽस्सिन्नि–भूतादीयि जगल् कारण्यि, अव्ययूयि त् हांव् ह्मोणु मन्नां कोर्नु अनन्यचित्तान् (एकक्चि म्नान्) मक्क बोजितायि। (दैवी प्रकृतीकयि आसुरी प्रकृतीकयि संबन्धु जावुनु सोलावे (१६) अद्ध्यायांतु सविस्तरान् सङ्गिन्नस्स्)।

१४. सततं कीर्तयन्तो मां यतन्तश्च दृढव्रताः ।
नमस्यन्तश्च मां भक्त्या नित्ययुक्ता उपासते ।

तन्नि सर्वदा (स्ग्ग्वेलारीयि) मक्क कीर्ति कर्तायि अनीक् द्रढव्रत् अनुष्ठान कोर्नु यत्नु कर्त्तायि। भक्तीन् नमस्कारु कोर्नु नित्य युक्त् जावुनु मक्क उपासन् कर्तायि।

१५. ज्ञानयज्ञेन चाप्यन्ये यजन्तो मामुपासते ।
एकत्वेन पृथक्त्वेन बहुधा विश्वतोमुखम् ।

ते नन्त्न एदींज्नानि ज्ञानयज्ञान् (देवु त् होल्लो ह्मल्लेले भावान्) एकत्वभावान्यि प्रत्येक् भावान्यि यज् कोर्नु, पले वटेन् (विथान्) विश्व्सर्वै कोल्चो जावुनऽस्सिल्ले मक्क उपासन् क्र्पस्स्।

१६. अहं क्रतुरहं यज्ञः स्वधाहमहमौषधम् ।
मन्त्रोऽहमहमेवाज्यमहमग्निरहं हुतम् ।

वेदुप्रकारस्सिल्ले कर्म हांव् त्। हांव् त् यज्ञ्, हांव्चित् स्वधा (पितृांक् अठोवुनु समर्पण् कोर्चे) हावेंचि त् मन्त्र्, हांव् त् औषध्, हाव्चित् आर्ज्यै, हव्ंचि अग्नि हाव्ंचि हूतम् (होमु केल्लेने)।

१७. पिताहमस्य जग्तो माता धाता पितामहः ।
वेधं पवित्रमोङ्कार ऋक्साम यजुरेव च ।

१८. गतिर्भर्ता प्रभुः साक्षी निवासः शरणं सुहृत् ।
प्रभवः प्रलयः स्थानं निधानं बीजमव्ययम् ।

ए लोकाचो आवुसु बप्पूसु, लोकाक् धारण कोर्चो, आबु जावुनऽस्सिल्लो, वेद्यि (कोल्काजल्लेले तत्व्), पवित्र् जावुनऽस्सिल्ले "ओंकार्" ऋक्, यजुस्; साम् ये वेदूयि तज्जे गतीयि (चोंकुचे स्थान्यि–प्राप्य्स्थान्यि, कोल्चोयि) भरण् कोर्चोयि, प्रभूयि साक्षीयि वासस्थान्यि, शरण्यि, सुहृत्यि, प्रभव्यि (स्थितीयि), लयस्थान्यि अव्यय्जावुनस्सिल्ले (दिक्कु एवुनत्तिल्ले) बीज्यि हांव् त्।

१९. तपाम्यहमहं वर्षं निगृह्णाम्युत्सृजामि च ।
अमृतं चैव मृत्युश्च सदसच्चाहमर्जुन !

हे अर्जुना, हांव् अग्नि, सूर्य ये रूपाँ हुन्साणि दित्त। हांव् पव्साक् दोरु रब्बेय्त, पावुसु प्डेयित। अमृत्यि (मोर्नतिन्नेयि-मरण नत्तिन्नेयि) मृत्यूयि, सत्य्यि, असत्य्यि हांव्चि त्।

२०. त्रैविद्या मां सोमपाः पूतपापा यज्ञैरिष्टवा स्वर्गतिं प्रार्थयन्ते ।
ते पुण्यमासाध सुरेन्द्रलोकमश्नन्ति दिव्यान्दिवि देवभोगान् ।

तिन्नीयि वेद्यि सिक्कूनु अनुष्ठान् कोर्चे-सोमरस् (यज्ञशेष् अस्सिल्ले सोमरस्) पान् कोर्नु पाप् नत्तिल्ले जत्तायि। तन्नि यज्ञान् यज् कोर्नु स्वर्लोक गतीक् प्रार्थन् कर्तायि। ते पुण्य् जावुनऽस्सिल्ले देवेन्द्र लोकु प्राप्य् कोर्नु स्वर्गांतु दिव्य जावुनसिल्ले देव भोगाक् (देवानि अनुभवु कोर्चे सुखाक्) अनुभवु कर्तायि।

२१. ते तं भुक्त्वा स्वर्गलोकं विशालं क्षीणे पुण्ये मर्त्यलोकं विशन्ति ।
एवं त्रयीधर्ममनुप्रपन्ना गतागतं कामकामा लभन्ते ।

तन्नि विशाल् जावुनऽस्सिल्ले स्वर्गलोकांतु पावुनु स्वर्गक् अनुभवु कोर्नु पुण्यफ्ल् स्र्नाफडेन् मर्त्यलोकांतु पंव्तायि। एश्शि तिन्नीयि वेदा धर्मु अनुसरण् कोर्चि कामकाम् जावुनऽस्सिल्लि (भोगंतु आग्रहु अस्सिन्नि) वोच्चूनूयि एवुनूयि स्वर्गांतूयि मर्त्यलोकांतूयि जावुनु जीवित् कर्तायि।

२२. अनन्याश्चिन्तयन्तो मां ये जनाः पर्युपासते ।
तेषां नित्याभियुक्तानां योगक्षेमं वहाम्यहम् ।

एक्क् म्न्नान् मक्क अठोवुनु (बोज्जूनु) ख्चि जन् उपासन् कर्तायि वे नित्य् (केदनायि) युक्त् जावुनऽस्सिल्ले तंगेले योगक्षेम् हांव् चोयित (हांव् कोर्नु दित्ता)।

२३. येऽप्यन्यदेवता भक्ता यजन्ते श्रद्धयान्विताः ।
तेऽपि मामेव कौन्तेय! यजन्त्यविधिपूर्वकम् ।

हे कौन्तेय, कोण सर्वै अन्य देवताचेरि भक्ति दोव्वोरु श्रद्धेन् युक्त जावुनु यज् कर्तायि वे तन्नीयि विधिप्रकार न्यि जल्यारीयि मक्काचि त् यज् कर्तायि (भोजितायि आश्रयु कर्तायि)।

२४. अहं हि सर्वयज्ञानां भोक्ता च प्रभुरेव च ।
न तु मामभिजानन्ति तत्वेनातश्च्यवन्ति ते ।

तें इत्तिकी ह्मल्लेरि हांव्चि त् सर्व यज्ञांचेयि भोक्तावूयि (भक्षण् कोर्चोयि) प्रभूयि (हांव् दिक्कूनत्तिन्ने यज्ञ कोल्चि कोण नायि), जल्यारि मक्क तात्विक् जावुनु तन्नि व्ल्क्कनायि (मन्नांक्र्नायि) ते पसावत् तन्नि खल्लाक् पोणु वत्तायि।

२५. यान्ति देवव्रता देवान्पितृन्यान्ति पितृव्रताः ।
भूतानि यान्ति! भूतेज्या यान्ति मद्याजिनोऽपि माम् ।

देवा भक्त् देवाक्यि, पितृभक्त् पितृांक्यि प्राप्य् जत्तायि। भूतांक् यज् कोर्चि (भोज्जुचि) भूतांक् प्राप्य् जत्तायि। मक्क् यज् कोर्चि मक्काय् प्राप्य् जत्तायि (मिज्जे लग्गीयि पंव्तायि)।

२६. पत्रं पुष्पं फलं तोयं यो मे भक्त्या प्रयच्छति ।
तदहं भक्त्युपहृतमश्नामि प्रयतात्मनः ।

पल्लो, फूल्, फल्, उद्दाक्, इत्तिजल्यारीयि मक्क कोण् भक्तीन् दान् कर्त्ता, भक्तीन् इष्टान् दिंचे तग्गेले ते उपहाराक् हांव् भक्षण् कर्ता।

२७. यत्करोषि यदश्नासि यज्जुहोषि ददासि यत् ।
यत्तपस्यसि कौन्तेय! तत्कुरुष्व मदर्पणम् ।

हे कौन्तेय, इत्तिकी तू कर्त्तवे, इत्तिकी आग्रहु कर्त्तवे, इत्तिकी होमु कर्त्तवे, इत्तिकी दान् कर्त्तवे, इत्तिकी तपस्स् अनुष्ठान् कर्त्तवे तें सर्वै मक्क अर्पण् कोर्नु कोरुका।

२८. शुभाशुभफलैरेवं मोक्ष्यसे कर्मबन्धनैः ।
संन्यासयोगयुक्तात्मा विमुक्तो मामुपैष्यसि ।

एश्शि सग्ग् जल्यारि शुभाशुभ् फलानस्सिल्ले कर्मबन्धांतु धक्कून् तू मुक्तु जत्तोलो। विमुक्तु जावुनु– संन्यास योगयुक्तु जावुनु तू मक्क प्राप्य्जत्तोलो। तू मिज्जेलग्गि पंतोलो।

२९. समोऽहं सर्वभूतेषु न मे द्वेष्योऽस्ति न प्रियः ।
ये भजन्ति तु मां भक्त्या मयि ते तेषु चाप्यहम् ।

हांव सर्व भूतांतूयि एक्क् लेक्कान् त्। मक्क शात्रु न, प्रिय् जावुनऽसल्लो ना। मक्क भक्तीन् बोज्जुचि मिज्जेरीयि हांव् तंचेरीयि स्थिति कर्ता।

३०. अपि चेत्सुदुराचारो भजते मामनन्यभाक् ।
साधुरेव स मन्तव्यः सम्यग्व्यवसितो हि सः ।

ओल्लो दुराचारु कोर्चो जल्यारीयि, एकाग्रबुद्धीन्-भक्तीन् मक्क बोज्जुचो "साधु" मोणूचि अठोवुंक। इत्तिकी ह्मल्लेरि जांकाजल्लेल् मतिरीन् यत्नु कोर्चो त् तो।

३१. क्षिप्रं भवति धर्मात्मा शश्वच्छान्तिं निगच्छति ।
कौन्तेय प्रतिजानीहि न मे भक्तः प्रणश्यति ।

तो ओग्गि धर्मात्मावु जत्तोलो। तक्क शाश्वत् जावुनऽस्सिल्लि शन्ति मेल्त। हे कौन्तेय मिग्गेले भक्ताक् नाशुना (नाशिंजंन) ह्मोणु तू प्रतिज्ञ काडि (प्रतिज्ञ क्रि-द्रढ् जावुनु मन्नां क्रि)।

३२. मां हि पार्थ व्यपाश्रित्य येऽपि स्युः पापयोनयः ।
स्त्रियो वैश्यास्तथा शूद्रास्तेऽपि यान्ति परां गतिम् ।

इत्तिकी ह्मल्लेरी, हे पार्थ, पाप् केल्लेंलि जावो, स्त्रीयो जावो वैशय शूद्र जातींतु जल्लेनि जावो-क्स्नि जल्यारीयि मक्क आश्रयुकोर्चि, परमगति (चांगि गति) प्राप्य् जतायि।

३३. किं पुनर्ब्राह्मणाः पुण्या भक्ता राजर्षयस्तथा ।
अनित्यमसुखं लोकमिमं प्राप्य भजस्व माम् ।

मग्गीरि, पुण्य कोर्चे ब्राह्मणलेयि, भक्त् जावुनऽसिल्ले राजर्षियांलेयि क्थ संङ्गुकावे? अनित्ययि (अशश्वत्यि) असुखयि (सुखनत्तिल्ले) जावुनऽस्सिल्ले ये लोकांतु अस्सिल्लो तू मक्क बोज्जुका।

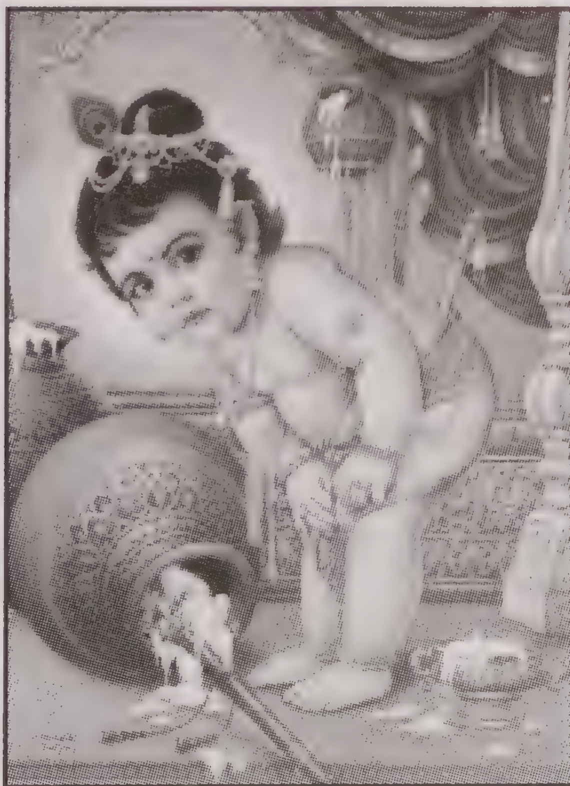
३४. मन्मना भव मद्भक्तो मघाजी मां नमस्कुरु ।
मामेवैष्यसि युक्त्वैवमात्मानं मत्परायणः ।

मक्क (मिज्जेरि) मात्र्म्न्न् दोवोर्नु मिग्गेलो भक्तु जावुनु मक्क यज् कोर्क। मक्क नमस्क्कारु कोर्क। एश्शि आत्मावाक् (प्राणाक्) मिज्जेरि एकक्डे कोर्नु मिग्गेले कैरि संगुच्चोयि, मन्नांतु दोवोर्चोयि जायनाफडेन् तू मक्काचि प्राप्य् जत्तोलो।

ॐ तत् सदिति श्रीमदभगवद्गीतासूपनिषत्सु ब्रह्मविध्यायां योगशास्त्रे श्रीकृष्णार्जुन संवादे राजविधाराजगुह्य योगो नाम नवमोऽध्यायः।

ॐ तत् सत् एश्शि श्रीमद् भगवद्गीतांतूले उपनिषत्तांतूले, ब्रह्मविध्यांतूले योगशास्त्रांतूले श्रीकृष्णार्जुन संवादांतूले (अर्जुनालेयि श्रीकृष्णालेयि निंग्प्यि सङग्प्यि तंतूले) राजविधा राजगुह्य योगु ह्मोल्लोलो णव्वावो (९) अध्यायु समाप्त्।

*****



अध्याय् - १०

विभूति योगु

श्री भगवानुवाच–

१. भूय एव महाबाहो! श्रृणु मे परमं वचः ।
यत्तेऽहं प्रीयमाणाय वक्ष्यामि हितकाम्यया ।

देवान् संङ्गीने–मिग्गेले श्रेष्ठ् जावुनऽसिल्ले उत्त्र् अनिक्यि अय्क्कुक। तें मिग्गेलो प्रिय (स्नेहितु) जावुनऽसिल्ले तुग्गोले हिताक् जावुनु हांव् सङ्गुचे त्।

२. न मे विदुः सुरगणाः प्रभवं न महर्षयः ।
अहमादिर्हि देवानां महर्षीणां च सर्वशः ।

मिग्गेले आविर्भावाक् देवसमूह् जावो महर्षीयो जोवो जाण् जायिनायि। इत्तिकी ह्मल्लेरि, हांव् त् सर्व विधान्यि देवालेंयि महर्षियांलेय् आदि कारण् (सर्वै सृष्ठीकयि आदि कारण् हांव त् ह्मोण् देवु सङ्ग्त)।

३. यो मामजमनादिं च वेत्ति लोकमहेश्वरम् ।
असंमूढः स मर्त्येषु सर्वपापैः प्रमुच्यते ।

जननरहितु ह्मोणूयि अनादीयि (आरंभु दिक्कूनु दोरुक् ओस्सूनत्तिल्लो) ह्मोणूयि, लोकांतूलो होल्लो ईश्वर्यि जावुनु कोण मक्क मन्नां कर्त्त तो मनुष्यांतु मोहुनत्तिल्लो जावुनु सर्व पापांतूयि धक्कून् मुक्तु जत्ता।

४. बुद्धिर्ज्ञानमसंमोहः क्षमा सत्यं दमः शमः ।
सुखं दुःखं भवोऽभावो भयं चाभयमेव च ।

५. अहिंसा समता तुष्टिस्तपो दानं यशोऽयशः ।
भवन्ति भावा भूतानां मत्त एव पृथग्विधाः ।

बुद्धि, ज्ञानु, मोहुनत्तिल्लवस्थ, क्षम, सत्य् अहंग्गारू, शन्ति, सुख्, दुख्, भव् (उत्भव्), अभाव् (नाशु) भय्, अभय्, (भय्नत्तिल्लवस्थ) अहिंस

(हिंस नत्तिन्ने), समत्व्, सन्तुष्टि, तपस्स्, दान् यशस्स्, अयशस्स् एश्शि भूतांगेले नानाविध् जावुनऽसिल्ले भाव् सर्वै मिज्जेरि धक्कूनूचि त् उत्पादन् (उद्भवु) जत्त। (मिज्जेरि धक्कून् जंचे त्–सर्वांकयि कारण् हांव् त्)।

६. महर्षयः सप्त पूर्वे चत्वारो मनवस्तथा ।
मद्भावा मानसा जाता येषां लोक इमाः प्रजाः ।

सप्तर्षियोयि (सप्त महर्षियोयि); जय्ते काल् फूडे जावुनऽसिल्ले चारि (४) मनूयि मिग्गेले भावान् (दैवीक् शक्ति मेल्नु) मन्नांतुधक्कूनु जल्लेनि त्। तंचेरि धक्कूँ उत्पादँ (उद्भव्) जल्लेनि त् लोकांतूले ये प्रज सर्वै।

७. एतां विभूतिं योगं च मम यो वेत्ति तत्त्वतः ।
सोऽविकम्पेन योगेन युज्यते नात्र संशयः ।

मिग्गेले ये विभूतीक्यि, योगक्यि, योगशक्तीक्यि, तात्विक् जावुनु कोण् मन्नां कर्ता तो अचञ्चल् जावुनऽसिल्ले योगान् युक्तु जत्त ह्मल्लेलेंतु संशयु ना।

८. अहं सर्वस्य प्रभवो मत्तः सर्वं प्रवर्तते ।
इति मत्वा भजन्ते मां बुधा भावसमन्विताः ।

सर्वांचेयि उत्पत्तिहेतूयि, सर्वै प्रवर्त्तन् कोर्चोयि हांव् हमोण् मनां कोर्नु विद्वत् जावुनऽसल्लिं भक्ति भाव् संयुक्तजावुनु मक्क बोजितायि। ये भाव्यि भजन प्रकार्यि सग्ग्यि लग्गीचि सङ्गुचे श्लोकान् विशदँ कर्ता (विवरण् कर्ता)।

९. मच्चित्ता मद्गतप्राणा बोधयन्तः परस्परम् ।
कथयन्तश्च मां नित्यं तुष्यन्ति च रमन्ति च ।

मिज्जेरि मात्र् म्न्न् दोवोर्नु, मिग्गेल् वट्टेन् एंचे प्राणसिल्ले जावुनु (आत्मावाक् मिज्जेरि हाणु) तन्नि मिज्जे परस्सूनु अन्योन्य (एल्तांतूयि पेल्तांतूयि) संङ्गूनूयि मनांतु कोरूयि क्थ संगूनूयि केदनायि संतोषु पंतायि। तंतु–ते संतोषांतु तन्नि लयि जत्तायि।

१०. तेषां सततयुक्तानां भजतां प्रीतिपूर्वकम् ।
ददामि बुद्धियोगं तं येन मामुपयान्ति ते ।

जांका जल्लेले लेक्कान् (मतिरीन्) युक्त् जावुनऽसिल्लेयि, प्रीतीन्यि बोज्जुचेयि तंक हांव् बुद्धि योगु दित्त। तश्शि तंक मिज्जेरि भक्ति एत्त। ते वट्टेन् तन्नि मक्क प्राप्य जत्तायि।

११. तेषामेवानुकम्पार्थमहमज्ञानजं तमः ।
नाशयाम्यात्मभावस्थो ज्ञानदीपेन भास्वता ।

तंचेलग्गि अस्सिल्ले (तंचेरि असिले) अनुकम्पेन् हांव् तंग्गेले भित्तेरि (मन्नांतु) आत्मभावु दोरु बेस्सूनु विवोरुनत्तिल्लेन् जंचे कल्काक् प्रकाशमान् जावुनसिल्ले (उजुवाडा धारा जावुनऽसिल्ले) ज्ञानदीपान् नाशु कोर्नु प्र् गल्ता।

अर्जुन उवाच–

१२. परं ब्रह्म परं धाम पवित्रं परमं भवान् ।
पुरुषं शाश्वतं दिव्यमादिदेवमजं विभुम् ।

१३. आहुस्त्वामृषयः सर्वे देवर्षिर्नारदस्तथा ।
असितो देवलो व्यासः स्वयं चैव ब्रवीषि मे ।

यें सग्गयि अयक्कूनु अर्जुनान् संङ्गीने– तुम्मि परम् (असिल्लेंतु होल्लो जावुनऽसिल्लो) ब्रह्म त्। (तेजस्स् त्) होल्ले पवित्र्यि त्। शाश्वत्यि दिव्यूयि जावुनसिल्लो पुरुषु, आदिदेवु, अजु, सर्व व्यापि- एश्शि सग्ग्यि तुंक्क सर्व ऋषीयोयि, देवर्षि जावुनऽसिल्लो नारोदु, असितु देवलु, व्यासु ये सर्वै सङ्गतायि, स्वयं (स्वय जावुनु) देवूय् मिज्जेलग्गि त्श्शी संङ्ग्ता।

१४. सर्वमेतदृतं मन्ये यन्मां वदसि केशव !
न हि ते भगवन्व्यक्तिं विदुर्देवा न दानवाः ।

हे केशवा, तुम्मि मिज्जेलग्गि संङ्गुचे सर्वै सत्य ह्मोणु हांव् अष्टेयिता। इत्तिकी ह्म्ल्लेरि हे भगवान् (देवा) तुंगेले स्वरूप् देवानि जावो, मनुष्यानि जावो (कोण्सरि) मन्नांक्र्नायि।

१५. स्वयमेवात्मनात्मानं वेत्थ त्वं पुरुषोत्तम !
भूतभावन! भूतेश! देवदेव जगत्पते ।

हे पुरुषोत्तम, सर्व भूतांलेयि उल्पत्ति कारण् जावुनऽसिल्या, भूतांले देवा, जगत्पते, तुम्मीचि त् स्वय् आत्मावान् आत्मावाक् जाण् जंचो-मनांकोर्चो (वोल्क्कुचो)।

१६. वक्तुमर्हस्यशेषेण दिव्या ह्यात्मविभूतयः ।
याभिर्विभूतिभिर्लोकानिमांस्त्वं व्याप्य तिष्ठसि ।

खंचे विभूतीन् की ये लोकांतु सर्वै व्यापि जावुनु तुम्मि स्थिति कर्त्त ते दिव्य् जावुनऽसिल्ले तुंग्गेले आत्म विभूतियांक् सर्वै पूर्ण जावुनु मक्क उपदेशु कोर्नु दिय्यायि।

१७. कथं विद्यामहं योगिंस्त्वां सदा परिचिन्तयन् ।
केषु केषु च भावेषु चिन्त्योऽसि भगवन्मया ।

हे योगिन् खंचे खंचे विभूतियसिल्लो जावुनु सदा (दुस्रीयि दुस्रीयि) चिन्तन् कोर्नुकी हांवे तुंक मनांकोर्क। हे भगवन् खंचे सर्वै भावानि की तुंक हांवे भावन कोर्क (खंचे प्रकारेण की हांव् तुंक मन्नांकोर्का)।

१८. विस्तरेणात्मनो योगं विभूतिं च जनार्दन !
भूयः कथय तृप्तिर्हि श्रृण्वतो नास्ति मेऽमृतम् ।

हे जनार्दना, स्वन्त् आत्मावाले योगक्यि, यागैश्वर्याक्यि, शक्तीक्यि, विभूतियांक्यि, विस्तारुकोर्नु (मनांजंचेलेक्कान् उप कथानि) दुस्रीयि संङ्गिलेरीयि। इत्तिकी ह्मल्लेरि अमृताक् (तुंगेले अमृतामतिरीनऽसिल्ले उत्तरांक्) उत्तूने अय्किलेरीयि मक्क तृप्ति जायिना।

श्री भगवानुवाच–

१९. हन्त ते कथयिष्यामि दिव्या ह्यात्मविभूतयः ।
प्राधान्यतः कुरुश्रेष्ठ! नास्त्यन्तो विस्तरस्य मे ।

देवान् सङ्गीने - हे कुरुश्रेष्ठ, शरि, दिव्य विभूतींतु (देवाले पले विधानसिल्ले भावांतु) प्रधान् जावुनऽसिल्लो हांव् तुक्क सङ्गून् दीन्। इत्तिकी ह्मल्लेरि, मिग्गेले विभूतीचो (भावाचो–वेषाचो–प्रवर्त्तनाचो) विस्तारु अन्त्य् नत्तिल्लो त्।

२०. अहमात्मा गुडाकेश! सर्वभूताशयस्थितः ।
अहमादिश्च मध्यं च भूतानामन्त एव च ।

हे गूडाकेश-हांव् सर्व भूतांचेयि हृदयांतु स्थितिकोर्चो आत्मावु त्, हांव् भूतांले आदीयि मध्य्यि अन्त्यि त्।

२१. आदित्यानामहं विष्णुर्ज्योतिषां रविरंशुमान् ।
मरीचिर्मरुतामस्मि नक्षत्राणामहं शशी ।

हांव् आदित्यांतु महाविष्णु, ज्योतिसांतु रश्मियुक्तु जावनऽसिल्लो रवीय् (सूर्यायि) मरुद्गणंतु मरीचीयि नक्षत्रांतु चन्द्रूयि त्।

२२. वेदानां सामवेदोऽस्मि देवानामस्मि वासवः ।
इन्द्रियाणां मनश्चास्मि भूतानामस्मि चेतना ।

वेदांतु दोवोरु हांव् साम वेदु त्। देवांतु हांव् इन्द्रु त्। इन्द्रियांतु हांव् म्न्न् त्। भूतांतूले चेतस्यि (शक्तीयि) हांव् त्।

२३. रुद्राणां शंकरश्चास्मि वित्तेशो यक्षरक्षसाम् ।
वसूनां पावकश्चास्मि मेरुः शिखरिणामहम् ।

एकादश रुद्र जावुनऽसिल्लेंतु महादेवु त् हांव्। यक्षरक्षसांतु वित्तेशुत् हांव्। अष्टवसूंतु पावकूयि, पर्वतांतु महामेरूयि हांव् त्।

२४. पुरोधसां च मुख्यं मां विद्धि पार्थ! बृहस्पतिम् ।
सेनानीनामहं स्कन्दः सरसामस्मि सागरः ।

हे पार्थ, पुरोहितांतु मुख्य् जावुनऽसिल्लो बृहस्पति त् हांव् ह्मोण् मन्नांकोर्क। सेनानींतु हांव् स्कन्दूयि जलाशयांतु दोवोरु सागरूयि त् हांव्।

२५. महर्षीणां भृगुरहं गिरामस्म्येकमक्षरम् ।
यज्ञानां जपयज्ञोऽस्मि स्थावराणां हिमालयः ।

महर्षियांतु भृगुमहर्षि त् हांव्। उत्तरांतु (शब्दांतु) हांव् एक् जावुनऽसिल्ले अक्षर् "ॐ" कारु त्। यज्ञांतु मन्त्रजप् त्, स्थावर् जावुनसिल्लेंतु हांव् हिमालयूयि त्।

२६. अश्वत्थः सर्ववृक्षाणां देवर्षीणां च नारदः ।
गन्धर्वाणां चित्ररथः सिद्धानां कपिलो मुनिः ।

वृक्षांतु हांव् पिंपोलु त् (अरयाल्) देवर्षींतु नारोदु, गन्धर्वांतु चित्ररथु, सिद्धांतु कपिलमुनि त्।

२७. उच्चैः श्रवसमश्वानां विद्धि माममृतोद्भवम् ।
ऐरावतं गजेन्द्राणां नराणां च नराधिपम् ।

घोडेंतु दोवोरु (अमृत् काडूक् देवानीयि असुरानीयि ह्मोणु दुद्धा समुद्रु गण्टिल्ले वेलारि मेळ्ळेने) उच्चैःश्रवस्स् त् हांव्। हस्तींतु ऐरावत् ह्मोणूयि, मनुष्यांतु नराधिपूयि (मनुष्यांक् नियन्त्रण् कोर्चो) त् हांव् ह्मोणु मक्क मन्नां कोर्का।

२८. आयुधानामहं वज्रं धेनूनामस्मि कामधुक् ।
प्रजनश्चास्मि कन्दर्पः सर्पाणामस्मि वासुकिः ।

आयुधांतु हांव वज्रयि, गय्यांतु कामधेनूयि, प्रजननांतु (सन्तान् उत्पादनांतु सन्तान् कोर्चांतु) कामदेवूयि हावंचि त्। सर्पांतु हांव् वासुकि त्।

२९. अनन्तश्चास्मि नागानां वरुणो यादसामहम् ।
पितृणामर्यमा चास्मि यमः संयमतामहम् ।

नागंतु हांव् अनन्तु त्, जलाशयांतु बोंचांतु हांव् वरुणूयि, पितृांतु (पितृांले रायु जावनऽसिल्लो) अर्यमायि, ये लोकांतूले जनन् मरण् नियम् चोंकोंचांतु यमूयि त् हांव्।

३०. प्रह्लादश्चास्मि दैत्यानां कालः कलयतामहम् ।
मृगाणां च मृगेन्द्रोऽहं वैनतेयश्च पक्षिणाम् ।

मनुष्यांतु हांव् प्रहलादूयि मेज्जुचांतु हांव् कालूयि, मृगंतु हांव् मृगेन्द्रूयि, पक्षियांतु हांव् गरुडूयि त्।

३१. पवनः पवतामस्मि रामः शस्त्रभृतामहम् ।
झषाणां मकरश्चास्मि स्त्रोतसामस्मि जाह्नवी ।

परिशुद्ध् कोर्चांतु-ओग्गि व्च्चांतु हांव् वायु (वारे) त्। आयुध् धरियांतु हांव् रामु त्। मत्स्यान्तु हांव् मकरमत्स्यि, नदींतु दोवोरु हांव् गंगनदीयि त्।

३२. सर्गाणामादिरन्तश्च मध्यं चैवाहमर्जुन !
अध्यात्मविद्या विद्यानां वादः प्रवदतामहम् ।

हे अर्जुना, सृष्ठींतु आदीयि, मध्यि, अन्त्यि हांव् त्। विद्धेंतु अध्यात्म विध्य त् (आत्मावा पसूनऽसिल्लो शरि जावुनऽसिल्लो विवोरसिल्लो) हांव्। तर्क्क् कर्त्तल्लेंतु वादूयि (तत्व-शरि जावुनसिल्ले तत्व सङ्गुच्चे चर्च्चे-उल्ल्व्प्यि) हांव्चि त्।

३३. अक्षराणामकारोऽस्मि द्वन्द्वः सामासिकस्य च ।
अहमेवाक्षयः कालो धाताहं विश्वतोमुखः ।

अक्षरांतु हांव् अकार्यि, समासांतु हांव् द्वन्द्व समास्यि, एकक् कालाक्यि क्षयिजावुनत्तिल्लो "समयूयि' हांव् त्। सर्वत्र मुख असिल्लोयि (सर्वै धारण् कोर्च्चोयि) हाव्चि त्।

३४. मृत्युः सर्वहरश्चाहमुद्भवश्च भविष्यताम् ।
कीर्तिः श्रीर्वाक्च नारीणां स्मृतिर्मेधा धृतिः क्षमा ।

सर्वै नां कोर्च्चो मृत्यु त् हांव्। जंचे (जनन् गेंचे) सर्वाचेयि उद्भवूयि हांव्चि त्। स्त्री गुणंतु कीर्त्ति, ऐश्वर्य् चांग् उत्त्र् स्मृति, मेधाशक्ति, धृति (धैर्य्) क्ष्म एवेयि हाव्चि त्।

३५. बृहत्साम तथा साम्नां गायत्री छन्दसामहम् ।
मासानां मार्गशीर्षोऽहमृतूनां कुसुमाकरः ।

तश्शीचि सामगनांतु हांव् बृहत् सामवं त्। छन्दस्सांतु गायत्रीयि, मासांतु मार्गशीष्यि ऋतूंतु वसन्त्यि हांव् त्।

३६. द्यूतं छलयतामस्मि तेजस्तेजस्विनामहम् ।
जयोऽस्मि व्यवसायोऽस्मि सत्त्वं सत्त्ववतामहम् ।

परस्पर् वञ्जन (भटवण्) कोर्च्यांले चूतान् खेलूयि तेजस्वियांले तेजस्स्यि हांव् त्। जय् त् हांव्। प्रयत्न् त् हांव् (व्यवसायु–व्यापारु कर्त्तल्लेंले प्रयत्नु त् हांव्)। सत्त्व् असिल्लेंले सत्त्वयि (सत्व गुणै) हाव्ंचि त्।

३७. वृष्णीनां वासुदेवोऽस्मि पाण्डवानां धनञ्जयः ।
मुनीनामप्यहं व्यासः कवीनामुशना कविः ।

वृष्णि वंशंतु वासुदेवु त् हांव्, पाण्डवांतु धनञ्जयूयि मुनींकूटांतु व्यासमुनीयि कवींतु दोवोरु हांव् शुक्राचार्यूयि त्।

३८. दण्डो दमयतामस्मि नीतिरस्मि जिगीषताम् ।
मौनं चैवास्मि गुह्यानां ज्ञानं ज्ञानवतामहम् ।

शासन कोर्च्यांले आयुध् (शासनाचि शक्ति) हांव् त्। जय् आग्रहु असिल्येंले नीतीयि, रहस्यांचे मौन्यि, ज्ञानियांले अरिव्यि, (ज्ञान्यि) हांव् त्।

३९. यच्चापि सर्वभूतानां बीजं तदहमर्जुन ।
न तदस्ति विना यत्स्यान्मया भूतं चराचरम् ।

हे अर्जुना, चराचर् जावुनऽसिल्ले जीवजालांतु हांव् नत्तिन्ने जावुनु कांयि पुणै–कोण पुणै–इत्ति पुणै ना। तंगेले (तंतूने) सग्गटानेयि बीज्यि हाव्ंचि त्।

४०. नान्तोऽस्ति मम दिव्यानां विभूतीनां परंतप ।
एष तूद्देशतः प्रोक्तो विभूतेर्विस्तरो मया ।

हे शत्रुनाशना–दिव्य् जावुनऽसिल्ले मिग्गेले रुपाक्, वेषाक् प्रवर्त्तनाक्, अन्त् ना। तज्जे विस्तारु, प्राप्ति–हांवे तुग्गेले बगेक् जावुनु एश्शि स्वल्प् मात्र् कोर्नु (सन् कोर्नु) सङ्गूनु दिल्ले ह्मोण् मात्र् त्।

४१. यद्यद्विभूतिमत्सत्त्वं श्रीमदूर्जितमेव वा ।
तत्तदेवावगच्छ त्वं मम तेजोंऽशसंभवम् ।

ऐश्वर्ययुक्त् जावुनऽसिन्नेयि, लक्ष्मित्वसिन्नेयि, ऊर्जस्वल् जावुनऽस्सिन्नेयि खंचे खंचे वस्तूवे जल्लेने अस्स्यिवे तें सर्वै मिग्गेले तेजस्साचे अंशंतु धक्कूनु जल्लेने त् ह्मोणु तू मन्नांक्रि।

४२. अथवा बहुनैतेन किं ज्ञातेन तवार्जुन !
विष्टभ्याहमिदं कृत्स्नमेकांशेन स्थितो जगत् ।

न्यि जलयारि, हे अर्जुना–एश्शि जयित्ते जाण् जावुनु (मन्नां कोर्नु) तुक्क इत्ति प्रयोजोनु की? हांव् यो लोकु सर्वै मिग्गेले एाक् अंशान् धारण् कोर्नु स्थिति कर्त (रब्बीला त्) त्।

ॐ तत् सदिति श्रीमद् भागवद्गीतासूपनिषत्सु
ब्रह्मविध्यायां योगशास्त्रे श्रीकृष्णार्जुन संवादे
विभूति योगो नाम दशमोऽध्यायः।

ॐ तत् सत् एश्शि श्रीमद् भगवद्गीतांतूले
उपनिषत्तांतूले ब्रहमविध्यांतूले योगशास्त्रांतूले
श्रीकृष्णान्य् अर्जुनान्यि ह्मोण्
चंकिल्ले संवादांतूले "विभूति योगु" ह्मोल्लोलो
दावो (१०) अध्यायु समाप्त्।

*****

अध्याय् - ११

विश्वरूपदर्शन योगु

अर्जुन उवाच–

१. मदनुग्रहाय परमं गुह्यमध्यात्मसंज्ञितम् ।
यत्त्वयोक्तं वचस्तेन मोहोऽयं विगतो मम ।

अर्जुनान् सङ्गीने–मक्क अनुग्रहु दिंचे ब्गेक् जावुनु परम्यि पवित्र्यि, आध्यात्मिक्यि (ह्वदयांतु (हर्ध्यांतु) भित्तेरि अस्सिल्लो आत्मावापसूनसिन्ने विवोरुयि) जावुनसिन्ने कस्न्की उत्तर देवान् सङ्गीने तज्जान् मिग्गेलो यो मोहु नां जल्लो।

२. भवाप्ययौ हि भूतानां श्रुतौ विस्तरशो मया ।
त्वत्तः कमलपत्राक्ष! माहात्म्यमपि चाव्ययम् ।

हे कमलद्ललोचना– हे कृष्ण, पद्माक्षाद्लामतिरीन् दोले असिल्या ये लोकांतूले जीव जालांले उत्पत्तीयि (जनन् गेव्प्यि), तें कश्शि सग्गयि स्थिति कर्त्त–प्रवर्त्तन् कर्त्त ह्मोणूयि देवाले अव्यय्यि (दिक्कूक् एवुनत्तिल्ले) जावुनऽसिल्ले माहात्म्यि देवालग्गी धक्कूनु हांवे विस्तरान् अय्क्कीने।

३. एवमेतद्यथात्थ त्वमात्मानं परमेश्वर ।
द्रष्टुमिच्छामि ते रूपमैश्वरं पुरुषोत्तम !

हे परमेश्वरा–तुंचेपसूनु तुम्मि सङ्गिल्ले सर्वै परमार्थ् त्। हे पुरुषोत्तम, तुंगेले ऐश्वर्य् जावुनऽस्सिल्ले ते रूप् दिक्कूक् मक्क आग्रोहेत्त। (मक्क आग्रहु दिस्स्ता)।

४. मन्यसे यदि तच्छक्यं मया द्रष्टुमिति प्रभो ।
योगेश्वर! ततो मे त्वं दर्शयात्मानमव्ययम् ।

प्रभो, योगेश्वरा (योगु असिल्लेंतु ईश्वरु जावुनऽसिल्या) तें दर्शन् कोरुक् (तुग्गेले ऐश्वर्यपूर्ण्ण् जावुनऽस्सिल्ले रूप्) मक्क जत्त्ने ह्मोणु तुम्मि

अष्टेयितायि (अठेयितायि) जल्यारि तुंगेले अव्यय् जावुनऽसिल्ले स्वरूप् मक्क दक्कोवुनु दिंचाक् द्य जांक। (दय कोर्क–दक्कोवुनु दिय्यायि)।

श्री भगवानुवाच–

५. पश्य मे पार्थ रूपाणि शतशोऽथ सहस्रशः ।
नानाविधानि दिव्यानि नानावर्णाकृतीनि च ।

देवान् संङ्गीने–

हे पार्थ, शेंलेक्कानेयि, सहस्रालेक्कानेयि फलेमतिरीन्यि दिव्य जावुनूयि विविध वोर्णूयि, आकृतीयि (रुप्यि) जावुनूयसिल्ले मिग्गेले रूपांक् तू चोयि।

६. पश्यादित्यान्वसून्रुद्रानश्विनौ मरुतस्तथा ।
बहून्यदृष्टपूर्वाणि पश्याश्चर्याणि भारत !

हे भारत–आदित्य् (आदित्य सर्वै) वसूंव्, रुद्र, अश्वनिदेवत् मरुत्त् सर्वै अंकायि, तश्शीचि फूडे दिक्कूनत्तिल्ले जयित्ते अद्भुत्यि तूं दीक्–चोयि।

७. इहैकस्थं जगत्कृत्स्नं पश्याद्य सचराचरम् ।
मम देहे गुडाकेश! यच्चान्यद्द्रष्टुमिच्छसि ।

हे गुडाकेश अत्त् ये मिग्गेले देहांतु चराचरात्मक् जावुनसिल्लो (चलन् असिन्नेयि नत्तिन्नेयि जावुनु ये लोकांतु असिन्ने) यो लोकु सर्वै एक्क्डे जावनु स्थिति कोर्चे तू दर्शन् कोर्क। तुक्क अनिक्यि इत्तेयि पुणै दिक्कुका ह्मोण् अस्स्जल्यारि तेवेयि दीक्।

८. न तु मां शक्यसे द्रष्टुमनेनैव स्वचक्षुषा ।
दिव्यं ददामि ते चक्षुः पश्य मे योगमैश्वरम् ।

जल्यारि तुग्गेले ये दोलेनि मात्र् मक्क दर्शन् कोरुक् तुक्क जंन। ते पसावत् हांव् तुक्क दिव्य् जावुनसिल्ले दोले दित्त (दीन्)। मिग्गेले ऐश्वर्य् जावुनऽसिल्ले योगशक्तिक् तूं चोवुनु म्ननांक्रि।

सञ्जय उवाच–

९. एवमुक्त्वा ततो राजन्महायोगेश्वरो हरिः ।
दर्शयामास पार्थाय परमं रूपमैश्वरम् ।

१०. अनेकवक्त्रनयनमनेकाद्भुतदर्शनम् ।
अनेकदिव्याभरणं दिव्यानेकोद्यतायुधम् ।

११. दिव्यमाल्याम्बरधरं दिव्यगन्धानुलेपनम् ।
सर्वाश्चर्यमयं देवमनन्तं विश्वतोमुखम् ।

सञ्जयान् सङगीने–

धृतराष्ट्ररय्या–एशि सग्ग् संगिल्ले उपरांते महा योगेश्वरु जावुनऽसिल्ले श्रीहरीन् (श्रीकृष्णन्–महाविष्णून्) अर्जुनाक् तग्गेले विश्वरूप् दक्कोवुनु दिल्ले। ते रूपांतु विविध (फले) जावुनऽसिन्ने जयित्ते तोण्ड्, दोले, जयित्ते अद्भुत् दर्शनार्ह (दिक्किलेरि अद्भुत् दिसुचे) भाव्यि दिक्कीने। ते अनेक् दिव्य आभरण्, दिव्य माला, दिव्य वस्त्र्, सुगन्ध् जावुनऽसिन्ने तीलो नाम्, ये सर्वै गालूयि, प्रयोगु कोरूक् (उपयोगु कोरुक्) सन्नद्ध (तय्यार्) जावुनऽसिल्ले जयित्ते दिव्यायुध् धारण् कोरूयि प्रकाशान् रब्बीलो। तें होड् उजुवाडुजावुनसिल्ले रूप् अत्यन्त् आश्चर्यक्यि, अनन्त्जावुनऽसिल्लेयि, सर्वतोमुखयि (सर्वै, दिक्कारीयि तोण्ड्यि जावुनु) ऐश्वर्यवत्त्यि (ऐश्वर्यान्यि) त् असिन्ने।

१२. दिवि सूर्यसहस्रस्य भवेध्युगपदुत्थिता ।
यदि भाः सदृशी सा स्याद्भासस्तस्य महात्मनः ।

आकाशंतु एकुसासु सूर्य् एक्कडेचि उदय् जाय्नाफडेन् क्स्ल् की तेजस्स् जत्त, तेंचि प्रकारि (तेंचि लेक्कान्) त् ते महात्मावाले ते समयारिऽसिल्ले तेजस्स् ह्मोणु सङ्गुयात्।

१३. तत्रैकस्थं जगत्कृत्स्नं प्रविभक्तमनेकधा ।
अपश्यद्देवदेवस्य शरीरे पाण्डवस्तदा ।

ते देवदेवाले शरीरांतु ते समयारि जैत्ते रूपानि विभक्त् जावुनऽसिल्लो लोकु सर्वै एक्कडेचि स्थिति कर्त्त जावुनूयि पाण्डवान् त्व्लि दर्शन् केल्लें।

१४. ततः स विस्मयाविष्टो हृष्टरोमा धनञ्जयः ।
प्रणम्य शिरसा देवं कृताञ्जलिरभाषत ।

उपरांते धनञ्जयान् (अर्जुनान्) विस्मयान् (सर्वै विसोरु अतिशयु जावुनु) रोमाञ्चान् भर्ल्लेले देह्यि जावुनु देवाक् शिरस् बव्गेवुनु (मत्ते बव्गेवुनु), हात् एक्क्डे कोर्नु प्रणम् कोर्नु सङ्गीने।

अर्जुन उवाच–

१५. पश्यामि देवांस्तव देव देहे सर्वांस्तथाभूतविशेषसङ्घान् ।
ब्रह्माणमीशं कमलासनस्थमृषींश्च सर्वानुरगांश्च दिव्यान् ।

अर्जुनान् सङ्गीने– हे देव, हांव् तुंगेले शरीरांतु सर्वै देवांक्यि, विभिन्न् (फलेमतिरीनसिन्ने) जीवजालांक्यि पत्माक्षांतु बेस्सल्लोयि, देवानीयि बोज्जुचोयि जावुनऽसिल्लो ब्रहम्मावाक्यि, सर्व ऋषियांक्यि, दिव्य जावुनसिल्ले उरगंक्यि दिक्क्ता।

१६. अनेकबाहूदरवक्त्रनेत्रं पश्यामि त्वां सर्वतोऽनन्तरूपम् ।
नान्तं न मध्यं न पुनस्तवादिं पश्यामि विश्वेश्वर! विश्वरूप ।

हे विश्वेश्वर, विश्वरूप, अन्तनत्तिल्ले रूपसिल्ले तुक्क जैत्ते हत्त्यि, पोट्यि (उद्र्यि), मुख्यि, दोलेयि असिल्लेमतिरीन् अस्सिल्ले लेक्कान् हांव् सर्वत्र दर्शन् कर्त्त (चोयत–दिक्क्त)। तुग्गेलि आदि, मदध्य, अन्त् कांयिपुणै मक्क दिक्कू ऐना।

१७. किरीटिनं गदिनं चक्रिणं च तेजोराशिं सर्वतो दीप्तिमन्तम् ।
पश्यामि त्वां दुर्निरीक्ष्यं समन्ताद्दीप्तानलार्कद्युतिमप्रमेयम् ।

किरीड् धारण् केल्लोलोयि, हस्तांतु गदायि चक्र्यि धारण् कोर्नूयि, तेजोराशीयि, सर्वत्र शेभेयि (शेभेन्–संकिचोंचाक सर्वांक्यि प्रयासु जावुनऽसिल्लोयि) उज्ज्वल् जावुनऽस्सिल्लग्नि, सूर्य अंगेले शेभेयि उजुवाडूयसिल्लोयि कोणक् कांयि पुणै ऊणउु संगूकोस्सूनत्तिल्लोयि जावुनऽसिल्ले तुक्क सर्व दिक्कारीयि हांव् दिक्क्ता।

१८. त्वमक्षरं परमं वेदितव्यं त्वमस्य विश्वस्य परं निधानम् ।
त्वमव्ययः शाश्वतधर्मगोप्ता सनातनस्त्वं पुरुषो मतो मे ।

सग्ग्टानेयि जाण्जांकाजलेने होल्ले विशेष्जावुनसिल्लक्षर् तुम्मि त् (परब्रह्म्)। ये लोकाचे परम्जावुनऽसिल्लाश्रय– स्थान्यि, दिक्कूएवुनत्तिल्लो (अव्यय् जावुनऽसिल्लो) शाश्वत धर्म पालकूयि तुम्मीचि त्। तुम्मि सनातन् जावुनसिल्लो पुरुषूयि त् ह्मोणु मक्क दृढ्विश्वासु जल्लो।

१९. अनादिमध्यान्तमनन्तवीर्यमनन्तबाहुं शशिसूर्यनेत्रम् ।
पश्यामि त्वां दीप्तहुताशवक्त्रं स्वतेजसा विश्वमिदं तपन्तम् ।

आदीयि, मध्य्यि अन्त्यि कांयि-नत्तिल्लोयि होडु बलवन्तूयि, होडु हातुऽस्सिल्लोयि सूर्य चन्द्रांले दोले असिल्लोयि, होल्ले दीप्ति (शेभ) असिल्ले अग्निमुख् (जयित्ते मुख्) असिल्लोयि स्वन्त (स्वय्) तेजस्सान् (उजुवाडान्) यो लोकु सग्गायि तापु दिंचोयि (कोर्चोयि) जावुनऽसिल्लो ह्मोणु तुंक हांव् मन्नां कर्त्ता (दिक्क्ता)।

२०. द्यावापृथिव्योरिदमन्तरं हि व्याप्तं त्वयैकेन दिशश्च सर्वाः ।
दृष्ट्वाद्भुतं रुपमुग्रं तवेदं लोकत्रयं प्रव्यथितं महात्मन् !

हे महात्मा, आकाशचेयि भूमीचेयि यो मद्रध्य् भागूयि सर्वै दिक्कूयि एक्कोलो जावुनऽसिल्ले तुंचान् व्याप्त् जावुनस्स् (भोर्नस्स्)। बहु अद्भुत्यि उग्र्यि जावुनऽसिल्ले तुंगेले ये रूप् दिक्कूनु तिन्नीयि लोकूयि अत्यन्त् व्यथित् जावुनऽस्सयि (इत्तिकी क्र्प् ह्मल्लेले विचारान् भीति पाव्नस्स्यि)।

२१. अमी हि त्वां सुरसङ्घा विशन्ति केचिद्भीताः प्राञ्जलयो गृणन्ति ।
स्वस्तीत्युक्त्वा महर्षिसिद्धसङ्घाः स्तुवन्ति त्वां स्तुतिभिःपुष्कलाभिः ।

ये देवांले सङ्घ् (कूटट्) सर्वै तुंचेरि प्रवेशँ कर्तायि। एद्दीं जाण् भय्याँ हातु एक्क्डे कोर्नु (पायिंपोणु) रब्बूनु प्रार्थन् कर्तायि। स्वस्तिक्चन् उच्चारण् कोर्नु महर्षियोयि सिद्ध सङ्घ्यि (सिद्धि-योग सिद्धि ह्मेल्लेले) तुंक श्रेष्ट् जावुनसिल्ले गिंतान् स्तुति कर्तायि।

२२. रुद्रादित्या वसवो ये च साध्या विश्वेऽश्विनौ मरुतश्चोष्मपाश्च ।
गन्धर्वयक्षासुरसिद्धसङ्घा वीक्षन्ते त्वां विस्मिताश्चैव सर्वे ।

रुद्र, आदित्य् वसु, सादध्य्, विश्वदेव्, अश्विनिदेव् मरुत्त् पित्र्, गन्धर्व्, यक्ष्, असुर्, सिदध् अंगेले सङ्घ्यि, सर्वै जाण्यि विस्मित् (सर्वैविसोंरु-अद्भुतान्) जावुनु श्रद्धेन् तुंक चोवुनु रब्तायि।

२३. रूपं महत्ते बहुवक्त्रनेत्रं महाबाहो! बहुबाहूरुपादम् ।
बहूदरं बहुदंष्ट्राकरालं दृष्ट्वा लोकाः प्रव्यथितास्तथाहम् ।

हे महाबाहो, जैत्ते तोण्डयि, दोलेयि, जत्ते हत्तेयि, देह्यि, पैय्येयि, जैत्ते पोटस्सिन्नेयि, जैत्ते दंतानीयि, भयानक् जावुनऽसिल्ले तुंगेले महत्त् रूप् दिक्कूनु लोक् सर्वै होड् व्यथित् (विषमाँ-अधीन्) जावुनऽस्सयि। त्शीचि हांव्यि होल्ले व्यथेनस्स्। (मक्कायि होल्ले दुःख् जल्लेया)।

२४. नभःस्पृशं दीप्तमनेकवर्णं व्यात्ताननं दीप्तविशालनेत्रम् ।
दृष्ट्वा हि त्वां प्रव्यथितान्तरात्मा धृतिं न विन्दामि शमं च विष्णो ।

हे विष्णो-आकाश् स्पर्शीयि, होल्ले तेजसान् अनेक (जैत्ते) वर्णानीयि, विस्तारानसिल्ले तोण्डान्यि, तेजसान् विशलनेत्रान्यि असिल्ले तुंक दर्शन् कोर्नु मिग्गेले अन्तरात्मावु (मिग्गेले भित्तेरसिल्लो प्राणु) होल्ले व्यथेन् जल्ले पसावत् मक्क कस्ल्या पुणै (क्स्ल् कैरेक् स्रि) धैर्य्, शान्ति-समाधान् ये कांयि जाय्ना।

२५. दंष्ट्राकरालानि च ते मुखानि दृष्ट्वैव कालानलसन्निभानि ।
दिशो न जाने न लभे च शर्म प्रसीद देवेश! जगन्निवास !

भय्य् दिसुचे दांत्यि, कलेवर्णरि अग्नि सदृश् (अग्नि मतिरीन्) असिन्ने तुंगेले तोण्ड्यि (जैत्ते तोण्ड्) दिक्कूनु मक्क दिग्भ्रम् (खंतय्, इत्ते, इत्तिकी जंचाक्व्त्त ह्मोण् भय्य् भ्रम्) जत्त। मक्क समाधान् मेल्न। हे देव देव, जगन्निवास मिज्जेरि प्रसादि जांका।

२६. अमी च त्वां धृतराष्ट्रस्य पुत्राः सर्वे सहैवावनिपालसङ्घैः ।
भीष्मो द्रोणः सूतपुत्रस्तथासौ सहास्मदीयैरपि योधमुख्यैः ।
२७. वक्त्राणि ते त्वरमाणा विशन्ति दंष्ट्राकरालानि भयानकानि ।
केचिद्विलग्ना दशनान्तरेषु संदृश्यन्ते चूर्णितैरुत्तमाङ्गैः ।

ये धृतराष्ट्रपुत्र्यि, राजगण्यि, भीषमर्यि, द्रोणर्यि, तो कर्ण्णूयि अंगेले प्रमुख् जावुनऽसिल्ले योद्धाव् सर्वै होड् प्रयासान् तुंगेले (देवाले) भ्य्य् दिस्सुच्चे तोण्णंतु (जयित्ते तोण्णंतु) प्रवेशु कर्त्तायि। एदींजाण् मत्ते सग्ग्यि फुट्टल्ले जावुनु देवाले दंता खंचींतु सिर्क्कूनु रब्बिल्ले जावुनूयि दिक्कूएत्ता।

२८. यथा नदीनां बहवोऽम्बुवेगाः समुद्रमेवाभिमुखा द्रवन्ति ।
तथा तवामी नरलोकवीरा विशन्ति वक्त्राण्यभिविज्वलन्ति ।

नदियांतु धक्कूनु उद्दाक् होड् जावुनु कश्शिकी होल्नु समुद्रांतु पंव्त(प्ड्त) त्श्शीचि ये नरलोक् वीर् जावुनऽसिल्ले सर्वै तुंगेले होल्ले उज्ज्वल् जावुनऽसिल्ले मुखांतु (जैत्ते मुखांतु) प्रवेशु कोर्नु रब्बीलेयायि।

२९. यथा प्रदीप्तं ज्वलनं पतङ्गा विशन्ति नाशाय समृद्धवेगाः ।
तथैव नाशाय विशन्ति लोकास्तवापि वक्त्राणि समृद्धवेगाः ।

जोल्नु रब्बिल्ले अग्नींतु पक्कीयो (शलाभ्) नाशक् जावुनु खंचे प्रकारि प्रयासुकाणु प्रवेशु कर्त्त, तेंचि प्रकारि यो लोकूयि (सर्वै लोकूयि) नाशक् जावुनु ओग्गि ओग्गि तुंग्गेले वक्त्रांतु (जैत्ते तोण्णंतु) एवुनु पंव्तायि।

३०. लेलिह्यसे ग्रसमानः समन्ताल्लोकान्समग्रान्वदनैर्ज्वलद्भिः ।
तेजोभिरापूर्य जगत्समग्रं भासस्तवोग्राः प्रतपन्ति विष्णो !

ज्वलिजावुनसिल्ले तोण्डान् सर्व लोकाक्यि, सर्वै दिक्कारीयि तुम्मि बोर्नु रब्बीला। हे विष्णे तेजस्सान् भोर्नु तुंगेले उग्र् जावुनऽसिल्ले प्रभापडल् (तेजसाचो प्रभेचो मण्टोवु) लोकाक् सर्वै दहँ कर्त्ता। (लोकाक् नाशु जंचे लेक्कान् कर्त्ता)।

३१. आख्याहि मे को भवानुग्ररूपो नमोऽस्तु ते देववर! प्रसीद ।
विज्ञातुमिच्छामि भवन्तमाद्यं न हि प्रजानामि तव प्रवृत्तिम् ।

श्रेष्ठु जावुनऽसिल्ले हे देवा, तुक्क नमस्क्कार कर्त्त। मिज्जेरि प्रसादि-जावुनु उग्र स्वरूप्जावुनऽसिल्लो तुम्मि कोण् ह्मोणु मक्क सङ्गूनु दिय्यायि। सर्वांतूयि आध्य् जावुनऽसिल्ले देवाक् (तुंक) यथार्थ् जावुनु जाण् जंचाक् हांव् आग्रहु कर्त्त (मक्क आग्रहु अस्स्)। इत्तिकी ह्मल्लेरि, तू इत्तिकी समारंभु कोरूक् व्त्त ह्मोण् मक्क कांयि पुणै मन्नांतु जायिना।

श्री भगवानुवाच–

३२. कालोऽस्मि लोकक्षयकृत्प्रवृद्धो लोकान्समाहर्तुमिह प्रवृत्तः ।
ऋतेऽपि त्वां न भविष्यन्ति सर्वे येऽवस्थिताः प्रत्यनीकेषु योधाः ।

ते समयारि देवान् सङ्गीने–लोकांक् क्षय् कोर्चेबगेक् अती उग्र जावुनु तीर्जल्लेल् कालाक्सिल्लोकालपुरुषुत् हांव्। अंग ये जनांक् (ये दिक्कू एंचे सग्गाडांक्यि) संहारू कोरूक् तय्यार जावुनु त् हांव् रब्बीला। तू नां जल्यारीयि (यो संहारु कोरूक् तू तय्यार जावुनु एयलोनाजल्यारीयि) ए दोन्नीयि सेनांतूयसिल्ले योद्धाव् कोण् पुणै शेषिजंचाक् व्च्चना (हांव तंक दिंशि मर्त्तोनो)।

३३. तस्मात्त्वमुत्तिष्ठ यशो लभस्व जित्वा शत्रून्भुङ्क्ष्व राज्यं समृद्धम् ।
मयैवैते निहताः पूर्वमेव निमित्तमात्रं भव सव्यसाचिन् ।

ते पसावत् तू उट्टांक, यशस्स् संब्बादन् कोर्क। शत्रूलग्गि जयु–पावुनु समृद्ध् जावुनसिल्ले राज्य अनुभवुकोरुक। अन्नि (ये मुक्कारी रब्बिन्नि सर्वै-पाण्डवालग्गि युद्ध कोरूक् रब्बिन्नि सर्वै जाण्) मुर्त्थम्चि (फुडेचि) मिज्जान् मोर्नु जल्लेनित्। हे सव्यसाचिन् तू अक्क ये संभवाक्-कौरव मरणक्) एक् निमित्त् मात्र् जावुनु भविजांका।

३४. द्रोणं च भीष्मं च जयद्रथं च कर्णं तथान्यानपि योधवीरान्।
मया हतांस्त्वं जहि मा व्यथिष्ठा युध्यस्व जेतासि रणे सपत्नान्।

मिज्जान् हत् जावुनु रब्बिल्ले (हांव् दिंशि मर्ल्लेले) द्रोणु, भीष्मु, जयद्रथु कर्णु अंकायि तश्शि अस्सिल्ले वेग्ग्ले योद्धावांक्यि (युद्धांतु वीर्

जावुनऽसिल्लेंकयि) तू दुख कांयि पुणै म्न्नांतु हाणत्तिल्ले हनन् कोर्क (दिंशि मारुक)। युद्ध कोर्नु तुग्गेले शत्रुपक्षांक् तू जयु पंव्तोलो। संशयु ना।

सञ्जय उवाच–

३५. एतच्छ्रुत्वा क्चनं केशवस्य कृताञ्जलिर्वेपमानः किरीटी ।
नमस्कृत्वा भूय एवाह कृष्णं सगद्गदं भीतभीतः प्रणम्य ।

सञ्जयु सङ्ग्त–कृष्णले ये उत्त्रयिक्कूनु अर्जुनु (किरीटि) भय्यान् कडकडेवुनु दुस्स्रीयि दुस्स्रीयि देवाले पय्यांकडे पोणु नमस्क्कारु कोर्नु, हातेक्क्डे कोर्नु (पांयिप्ल्लेले हत्तान्) प्रार्थन कोरु रोणु गद्गदेन् सङ्ग्त इत्तिकी ह्मलयारि–

अर्जुन उवाच–

३६. स्थाने हृषीकेश! तव प्रकीर्त्या जगत्प्रहृष्यत्यनुरज्यते च ।
रक्षांसि भीतानि दिशो द्रवन्ति सर्वे नमस्यन्ति च सिद्धसङ्घाः ।

अर्जुनान् सङ्गीने–हे हृषीकेश तुंगेले गुण्गनान् लोकु आनन्द्यि, अनुरज्ञन्यि कर्त्त हमल्लेने वास्तव् त्। युक्तय् त्। रक्षस्स् सर्वै एन्चेयि भय्यान् नानादिक्कारीयि जावुनु क्शिश, इत्ति कोर्क ह्मोण् कोल्नत्तिन्ने खंत खंत्यि की धंतायि। सर्वै सिद्ध सङ्घ्यि तुंक नमस्क्कारु कर्त्तायि।

३७. कस्माच्च ते न नमेरन्महात्मन् गरीयसे ब्रह्मणोऽप्यादिकर्त्रे ।
अनन्त! देवेश! जगन्निवास! त्वमक्षरं सदसत्तत्परं यत् ।

हे महात्मन्, सर्वांतूयि श्रेष्टूयि, ब्रह्मावालोयि आदि कारण्यि जावुनऽसिल्ले तुंक तन्नि सग्ग्यि नमस्कारु कोर्नत्तिल्ले जंचाक् क्शिश दिस्त्ने, हे अनन्त, देवेश्वरा, जगन्निवासा, सत्त्यि असत्त्यि सत्ताक्यि, असत्ताक्यि अतीतु (सर्व्वांतूयि होल्लो) जावुनऽसिल्ले अक्षर्यि (परब्रहम्यि) तूंचित्।

३८. त्वमादिदेवः पुरुषः पुराणस्त्वमस्य विश्वस्य परं निधानम् ।
वेत्तासि वेद्यं च परं च धाम त्वया ततं विश्वमनन्तरूप !

तुम्मि आदिदेवु त्। पुराण पुरुषु त्। तुम्मि ये लोकांचे सर्वै आश्रयुत्। सर्वै कोल्चोयि, दिंचोयि, कोलोंचोयि, परम् जावुनऽसिल्ले होल्ले धाम्यि तुम्मीचि त् तेज्स्स्यि तुम्मीचि त् हे अनन्तरूप, यो लोकु (विश्व सर्वै) सर्वै तुंचान् व्याप्त् मू। (तुंचान् भोर्नस्स्)।

३९. वायुर्यमोऽग्निर्वरुणः शशाङ्कः प्रजापतिस्त्वं प्रपितामहश्च ।
नमो नमस्तेऽस्तु सहस्रकृत्वः पुनश्च भूयोऽपि नमो नमस्ते ।

वायूयि, यमूयि, अग्नीयि, वरुणूयि, चन्द्रूयि, प्रजापतीयि, बप्पाल्बप्पायि (आबूयि) तुम्मीचि त्। तुंक सासु सासु नमस्क्कारु। दुस्रीयि दुस्रीयि अनेक् जावुनु तुंक नमस्क्कारु कर्त्ता।

४०. नमः पुरस्तादथ पृष्ठतस्ते नमोऽस्तु ते सर्वत एव सर्व ।
अनन्तवीर्यामितविक्रमस्त्वं सर्वं समाप्नोषि ततोऽसि सर्वः।

हे सर्व स्वरूप– तुंक सर्व विधानेयि, सर्व दिक्कारीयि, स्ग्ग्वेलारीयि नमस्क्कार। अन्त्नत्तिल्ले वीर्यूयि अमितविक्रमूयि जावुनऽस्सिल्लो तुम्मि सर्वांचेरीयि भोर्नु रब्बीला। तश्शि सर्वै तुम्मि त्।

४१. सखेति मत्वा प्रसभं यदुक्तं हे कृष्ण हे यादव, हे सखेति ।
अजानता महिमानं तवेदं मया प्रमादात्प्रणयेन वापि ।
४२. यच्चावहासार्थमसत्कृतोऽसि विहारशय्यासनभोजनेषु ।
एकोऽथवाप्यच्युत! तत्समक्षं तत्क्षामये त्वामहमप्रमेयम् ।

सखि ह्मोणु विचारुकोर्नु तुंगेले ये विश्वरूपयि, महिमयि मन्नांकोर्नत्तिल्ले हांव् कोल्नत्तिल्लेन्–च्ड् स्नेहान्–इत्तिकी जावुनु कृष्ण, यादवा, सखे ह्मोण् स्ग्ग् उल्दिल्लस्स्। सबाव् बेस्सुचे वेलारि, विहारु, शयन्, भोजन् ये समयारि स्ग्ग् कोण् कोल्नत्तिल्ले जावो (एकलो असिल्ले वेलारि जावो), वेगल्याले सान्निद्ध्यारि जावो, सबाव्, जल्यारीय् हांव तुंक खेलु केल्लेलस्स्। हे अच्युता तें सर्वै लोकांतुलो होड्डु (सर्वै कोल्चो, सर्वै असिल्लो, भोर्ल्लोलो, सर्वांतूय् होल्लो) जावुनऽसिल्ले तुम्मि क्ष्म पांक ह्मोण् हांव् मग्गून् गेत्ता।

४३. पितासि लोकस्य चराचरस्य त्वमस्य पूज्यश्च गुरुर्गरीयान् ।
न त्वत्समोऽस्त्यभ्यधिकः कुतोऽन्यो लोकत्रयेऽप्यप्रतिमप्रभाव ।

हे अतुल्य प्रभावा, सर्व विधानेयसिल्ले (चराचरात्मक् जावुनऽसिल्ले) लोकाचे पितात् तुम्मि। ये लोकाचे पूजनीयूयि, उत्कृष्टूयि जावुनऽसिल्लो गुरूयि तुम्मि त्। ये तिन्नीयि लोकांतूयि तुल्य जावुनु एक्कोलो स्रि न। मग्गीरि वे-उत्कृष्टु जावुनऽसिल्ले तुम्मि निस्तुल्य प्रभावूचि त्।

४४. तस्मात्प्रणम्य प्रणिधाय कायं प्रसादये त्वामहमीशमीड्यम् ।
पितेव पुत्रस्य सखेव सख्युः प्रियः प्रियायार्हसि देव! सोढुम् ।

तें दुक्कून् (ते पसावत्) देहाक् बव्गेवुनु नमस्कारु कोर्नु आराद्ध्यूयि, देवूयि जावुनसिल्ले तुंक हांव् बोज्जीत कर्त्त। हे देव, बप्प पुत्ताक मतिरीन्यि सखि सखीलगिमतिरीन्यि प्रियु जावुनऽसिल्ले तुम्मि, प्रियु जावुनऽसिल्ले मिग्गेलपराधु क्ष्म पांव्का।

४५. अदृष्टपूर्वं हृषितोऽस्मि दृष्ट्वा भयेन च प्रव्यथितं मनो मे ।
तदेव मे दर्शय देवरूपं प्रसीद देवेश! जगन्निवास! ।

फूडे कोणे पुणै, केद्दाण पुणै दिक्कूनत्तिल्ले ये रूप् (ये विश्वरूप्) दर्शन् कोर्नु हांव् रोमाञ्च् धर्त्ता। मक्क आंग् फुल्लेत। मिग्गेले म्न्न् भयान् दुस्रीयि दुस्रीयि आकुल् जत्त। हे देवा, देवाले पूर्व्व रूपाक्चि मक्क दक्कोवुनु दिय्यायि। हे देवेश्वरा, जगन्निवासा प्रसादिजांका, प्रसादिजांका।

४६. किरीडिनं गदिनं चक्रहस्तमिच्छामि त्वां द्रष्टुमहं तथैव ।
तेनैव रूपेण चतुर्भुजेन सहस्रबाहो! भव विश्वमूर्ते ।

तुंक फूडे मतिरीन् किरीड् धारीयि गदाधारीयि हस्तांतु चक्रयि धोर्नु दिक्कूक् हांव् आग्रहु कर्त्त। हे सहस्रबाहो, विश्वमूर्त्ते, चतुर्भुजसिल्ले तेंचि रूप् अनिक्यि मक्क दर्शन् कोरूक् द्य कोर्का।

श्रीभगवानुवाच–

४७. मया प्रसन्नेन तवार्जुनेदं रूपं परं दर्शितमात्मयोगात् ।
तेजोमयं विश्वमनन्तमाद्यं यन्मे त्वदन्येन न दृष्टपूर्वम् ।

देवान् सङ्गीने–हे अर्जुन तुक्क हांव् प्रसादिजावुनु मिग्गेले उत्तम् जावुनऽसिल्ले ये रूप् आत्मयोगन् (मिग्गेले योग शक्तीन्) दक्कोवुनु दिल्लेने त्। तेजोमय्यि, अनन्त्यि, आध्य्यि, सर्व कारण् कारण्यि जावुनऽसिल्ले मिग्गेले ये विश्वरूप् तूं नंत्न वेग्ग्ले कोण् पुणै अत्त् पर्यान् दर्शन् केल्लेने न्यि।

४८. न वेदयज्ञाध्ययनैर्न दानै-र्न च क्रियाभिर्न तपोभिरुग्रैः ।
एवंरूपः शक्य अहं नृलोके द्रष्टुं त्वदन्येन कुरुप्रवीर !

हे कुरुवंशंतु जल्लेल्यांतु वीरुजावुनऽसिल्ल्या–वेदु सिक्कूँ जावो, दान्धम्माँ जावो, अग्नि होत्रादि क्रियाँ जावो, उग्र् जावुनऽसिल्ले तपस्साँ जावो मिग्गेलें ये विश्वरूप् दर्शन् मेलूक् मनुष्य लोकांतु तुक्क नंत्न कोणक् साधिजंना।

४९. मा ते व्यथा मा च विमूढभावो दृष्ट्वा रूपं घोरमीदृङ्ममेदम् ।
व्यपेतभीः प्रीतमनाः पुनस्त्वं तदेव मे रूपमिदं प्रपश्य ।

सदृश् जावुनऽसिल्ले (वेग्ग्ले नत्तिल्ले मतिरीनसिल्ले) मिग्गेले ये घोररूप् दर्शन् कोर्नु तूं व्याकुलु जांकानक्क। कांयि कोरूक् दिस्सूनत्तिल्ले लेक्कान् बेस्सुकायि नक्क। भय्य् सग्गय् सोणु सन्तोषसिल्ले म्नान् तूं अनिक्क्यि मिग्गेले ते सौम्य् जावुनऽसिल्ले मनुष्य् रूप्चि एंचेयि दीक् (चोयि्)।

सञ्जय उवाच–

५०. इत्यर्जुनं वासुदेवस्तथोक्त्वा स्वकं रूपं दर्शयामास भूयः ।
आश्वासयामास च भीतमेनं भूत्वा पुनः सौम्यवपुर्महात्मा ।

सञ्जयान् सङ्गीने–येप्रकारि अर्जुनालग्गी सङ्गूनु जावुनु देवु श्रीवासुदेवान् दुस्स्रीयि तंग्गेले पूर्व रूप् दक्क्यिले। तश्शि सौम्य् मूर्त्ति जल्लेले ते महात्मावान् भय्यान् बेस्सल्ले तक्क (अर्जुनाक्) आश्वासवचन्यि (आश्वासाचे उत्तर्यि) दीवुनु समाधाँ केल्लें।

अर्जुन उवाच–

५१. दृष्ट्वेदं मानुषं रूपं तव सौम्यं जनार्दन ।
इदानीमस्मि संवृत्तः सचेताः प्रकृतिं गतः ।

अर्जुनान् सङ्गीने–हे जनार्दन, तुंग्गेले सौम्य जावुनऽसिल्ले ये मनुष्यरुप् दिक्कूँ हांव् समाधान् जावुनूयि, जीवुमेळ्ळोलोयि जावुनूयि अस्स्।

श्री भगवानुवाच–

५२. सुदुर्दर्शमिदं रूपं दृष्टवानसि यन्मम ।
देवा अप्यस्य रूपस्य नित्यं दर्शनकाङ्क्षिणः ।

देवान् सङ्गीने–तू अत्त् दिक्किन्ने ये रूप् दिक्कूक् ओग्गि जंचे न्यि। देव्स्रि ये रूप् दिक्कूक् सर्व वेलारीयि आग्रहु कड्तायित् (आग्रहु कर्तायि त्)।

५३. नाहं वेदैर्न तपसा न दानेन न चेज्यया ।
शक्य एवंविधो द्रष्टुं दृष्टवानसि मां यथा ।

तूं दिक्किल्ले मतिरीन् मक्क दिक्कूक् वेदुसिक्क्प्, तपस्स् क्र्प्, दान् दीव्प्, यागुक्र्प्, हजान् कांयि पुणै साद्धय् न्यि।

५४. भक्त्या त्वनन्यया शक्य अहमेवंविधोऽर्जुन !
ज्ञातुं द्रष्टुं च तत्त्वेन प्रवेष्टुं च परंतप ।

हे अर्जुना, परंतप, (चांग् मन्न् अस्सिल्ल्या) ये लेक्कान् रुपस्सिल्ले मक्क (मिग्गेले कैरि) जाण् जंचाक्यि, दर्शन कोरूक्यि, यथार्त्थांतु मिज्जेरि प्रवेशँ कोरूक्यि शरिजावुनऽस्सिल्लि भक्ति एक्काँ मात्र् त् जत्त्ने।

५५. मत्कर्मकृन्मत्परमो मद्भक्तः सङ्गवर्जितः ।
निर्वैरः सर्वभूतेषु यः स मामेति पाण्डव !

हे पाण्डवा, मिग्गेल् बगेक् (देवाक् अर्पण कोर्नु) कर्म कोर्चोयि, मक्क परम् गति ह्मोण् लेक्कुच्चोयि मिग्गेलो भक्तूयि, संङ्गरहितूयि (मन्नांतु

क्स्सल्संशयु नत्तिल्लोयि) सर्व भूतांतूयि वैर् (विरोधु) नत्तिल्लोयि जावुनु कोणस्स्, तोमक्क प्राप्य् जत्तोलो।

ॐ तत्सदिति श्रीमद् भगवद्गीतासूपनिषत्सु ब्रह्मविध्यायां योगशास्त्रे श्रीकृष्णार्जुन संवादे "विश्वरूपदर्शनयोगो" नामैकादशोंऽध्यायः।

ॐ तत् सत् एश्शि श्रीमद् भगवद् गीतांतूले उपनिषत्तांतूले ब्रहमविध्यांतूले योगशास्त्रांतूले श्रीकृष्णार्जुन संवादांतूले "विश्वरूपदर्शन योगु" ह्मोल्लोलो इखरावो (११) अध्यायु समाप्त्।

*****



अध्याय् - १२

भक्ति योगु

अर्जुन उवाच–

१. एवं सततयुक्ता ये भक्तास्त्वां पर्युपासते ।
ये चाप्यक्षरमव्यक्तं तेषां के योगवित्तमाः ।

अर्जुनु देवालग्गि निंगीत–एश्शिसग्ग्यि (ऐप्रकारि सर्वै) (पूर्वाधायाचे अन्त्यारि सङ्गिगल्ले मतिरीन्) विश्वरूपि जावुनऽसिल्ले तुंक उपासँ कोर्चे नित्य युक्त् जावुनऽसिल्ले भक्तांतूयि, अव्यक्त्यि अक्षर्यि (दिक्कूक् एवुनत्तिल्लेयि एक्क्कालाक्यि नशिंजावुनऽत्तिल्लेयि) जावुनसिल्ले ब्रह्माक् बोज्जुच्चांतूयि दोव्वोंरु कोण की श्रेष्ट् जावुनऽसिल्ले योगीयो (भाग्यवन्त्)?

श्री भगवानुवाच–

२. मय्यावेश्य मनो ये मां नित्ययुक्ता उपासते ।
श्रद्धया परयोपेतास्ते मे युक्ततमा मताः ।

देवान सङ्गीने– मिज्जेरि आत्मार्त्थ जावुनु म्न्न् देवोर्नु (हृदयांतु भित्तेरि धक्कूँ म्न्न् द्रढ् जावुनु मिज्जेरि दोवोर्नु) कोणकी केदनायि होड् श्रद्धेन् मक्क उपासँ कर्तायि तन्नित् श्रेष्ट् जावुनऽस्सिल्ले योगीयो (भाग्यवन्त्) ह्मोणु त् मिग्गेलो अभिप्रायु।

३. ये त्वक्षरमनिर्देश्यमव्यक्तं पर्युपासते ।
सर्वत्रगमचिन्त्यं च कूटस्थमचलं ध्रुवम् ।
४. संनियम्येन्द्रियग्रामं सर्वत्र समबुद्धयः ।
ते प्राप्नुवन्ति मामेव सर्वभूतहिते रताः ।

क्स्सल् रूपान् ह्मोणु सङ्गूक् जावुनऽत्तिल्लोयि, सर्व व्यापीयि, अंगेले चिन्ते पशि उंचारियस्सिल्लोयि, कूडस्थ्यि (मायेन् भोर्ल्लोलोयि) अचञ्चल्यि, स्थिर्यि (केदनायि असिल्लोयि) अव्यक्तूयि (व्यक्त् जावुनु दिक्कूक् एवुनत्तिल्लोयि) जावुनऽसिल्ले "अक्षरब्रह्माक्"– इन्द्रियांक् निश्चल्

कोर्नु दोवोर्नु सर्वविधानेयि केदनायि समबुद्धि जावुनु सर्व जीवजालांलेयि मंगलांतु (चंग्प्णंतु) आग्रहु जावुनु कोण की उपासन् कर्तायि तन्नीयि (तीवेंयि) मिज्जेरीचि (मिज्जे लग्गिचि) पंव्तायि।

५. क्लेशोऽधिकतरस्तेषामव्यक्तासक्तचेतसाम् ।
अव्यक्ता हि गतिर्दुःखं देहवद्भिरवाप्यते ।

जल्यारि ये प्रकारि अव्यक्तांतु (ब्रह्मांतु) होड् मन्न् दोवोर्चेंक् तंगेले जीवित मार्ग्गाक् होड् क्लेश (बुद्धिमुट्टु) काडुक जत्तोलो। इत्तिकी ह्मल्लेरि अव्यक्ताक् (ब्रह्माक्) संबन्ध् "जावुनऽसिल्ले निष्ट" देहींक् (देहाभिमानियांक्) अत्यन्त् क्लेश् काणु मात्र् त् मेळ्त्ने।

६. ये तु सर्वाणि कर्माणि मयि संन्यस्य मत्पराः ।
अनन्येनैव योगेन मां ध्यायन्त उपासते ।

७. तेषामहं समुद्धर्ता मृत्युसंसारसागरात् ।
भवामि नचिरात्पार्थ मय्यावेशितचेतसाम् ।

हे पार्थ, कोणकी सर्व प्रवर्तीयि मिज्जेरि समर्पण् कोर्नु देवाचेरीचि मन्न् दोवोर्नु एक्क् मन्नान् अचञ्चल् (चञ्चल् नत्तिन्ने) योगँ मक्क ध्यान् कोर्नु भोज्जूनु उपासँ कर्तायि तश्शीचि मिज्जेरीचि म्न्न् दृढ् जावुनु दवर्ल्लेले तंक जनन् मरण् रूप् जावुनऽसिल्ले संसार समुद्रांतु धक्कूँ हांव् संत् उद्धारु कर्त्ता।

८. मय्येव मन आधत्स्व मयि बुद्धिं निवेशय ।
निवसिष्यसि मय्येव अत ऊर्ध्वं न संशयः ।

मिज्जेरीचि म्न्न् दृढ् जावुनु दोव्वोरु बुद्धीक् मिज्जेरि हाडुक। एश्शि केल्लेरि (ये प्रकारि कोरूक् जल्लेरि) तू मिज्जेरीचि वासु कोर्त्तोलो संशयु ना।

९. अथ चित्तं समाधातुं न शक्नोषि मयि स्थिरम् ।
अभ्यासयोगेन ततो मामिच्छाप्तु धनञ्जय !

हे धनञ्जय, म्न्नाक् मिज्जेरि स्थिर् जावुनु दोव्रूक् तुक्क शक्ति नांजल्यारि निरन्तर प्रयत्नान् (अभ्यासयोगन्) मक्क प्राप्य्जंचाक् तू श्रमु काडुका (श्रमु कोरुका)।

१०. अभ्यासेऽप्यसमर्थोऽसि मत्कर्मपरमो भव ।
मदर्थमपि कर्माणि कुर्वन्सिद्धिमवाप्स्यसि ।

अभ्यास योगक् तू समर्थु न्यि जल्यारि मिग्गेल् बगेक् (मिज्जेरि समर्पण् कोर्नु) प्रवर्त्त कोर्च्चेंचि होड् लक्षय् जावुनु दोव्वोर्क। मिग्गेल् बगेक् जावुनु प्रवर्तन् कोर्नु अस्स् जल्यारि तुक्का सिद्धि (मोक्षु) मेळ्तोलो।

११. अथैतदप्यशक्तोऽसि कर्त्तुं मधोगमाश्रितः ।
सर्वकर्मफलत्यागं ततः कुरु यतात्मवान् ।

धोकडे वेलारि- मिज्जेरि म्न्न्यि बुद्धियि दोव्वोरु (योगयुक्तु जावुनु) देवाल् बगेक् जावुनु कर्म कोरुक् तुक्क शक्ति मेल्नाजल्यारि, म्न्न् संयमन् कोर्नु दोव्वोर्नु (एक्क् म्न्नान्) सर्व कर्मांतूयि (सग्ग् प्रवर्त्तीचेयि) फलाक् (फल् मेल्क्का ह्मल्लेलि आसक्ति) प्र् घाल्का।

१२. श्रेयो हि ज्ञानमभ्यासाज्ज्ञानाद्ध्यानं विशिष्यते ।
ध्यानात्कर्मफलत्यागस्त्यागाच्छान्तिरनन्तरम् ।

इत्तिकी ह्मल्लेरि, प्रवर्त्तीपश्शि श्रेष्ठ् त् ज्ञान्। ज्ञानापश्शि ध्यान् विशिष्टतर् त्। ध्यानापश्शि श्रेष्ट त् कर्मफलत्याग्। ते त्यागांतु धक्कूँ शांन्ति संत् मेळ्त्लि।

अभ्यासु
|
ज्ञान्
|
ध्यान्
|
कर्म फलत्यागु —> —> शांन्ति

१३. अद्वेष्टा सर्वभूतानां मैत्रः करुण एव च ।
निर्ममो निरहंकारः समदुःखसुखः क्षमी ।

१४. संतुष्टः सततं योगी यतात्मा दृढनिश्चयः ।
मय्यर्पितमनोबुद्धिर्यो मद्भक्तः स मे प्रियः ।

कोणचे लग्गि पुणै (एक्कालग्गीयि) कोपु दक्कोवुनत्तिन्ने सर्व जीवजालांलग्गीयि, मिग्गेलींचि ह्मल्लेले एक्मलेनस्सिन्ने भाव्यि दययि अस्सिल्लोयि, हांव्, मिग्गेले ह्मल्लेले (अहङ्गारा) भावु नत्तिल्लोयि, सुखाक्यि, दुःखाक्यि एक्क्मतिरीन् लेक्कुच्चोयि, क्षम अस्सिल्लोयि, केदनायि (सग्ग् वेलारीयि) सन्तुष्ठूयि (संतोषु असिल्लोयि) योगु असिल्लोजावुनूयि, म्न्नाक् निश्चल् कोर्नु दोव्रूक् (मन्नाक् संयमँ कोरुक्) कोल्चोयि, दृढनिश्चयु अस्सिल्लोयि, म्न्न्यि बुद्धीयि मिज्जेरि अर्पण् केल्लोलोयि जावुनऽस्सिल्लो मिग्गेलो भक्तु मक्क प्रियु त्। मक्क तज्जेरि होड् इष्ट् त्।

१५. यस्मान्नोद्विजते लोको लोकान्नोद्विजते च यः ।
हर्षामर्षभयोद्वेगैर्मुक्तो यः स च मे प्रियः ।

कोणलग्गि धक्कूँ लोकाक् सन्ताप् जावुनत्तिन्नेयि, ये लोकांतु धक्कून् कोणक् सन्ताप् जावुनत्तिन्नेयि, च्ड् संतोषु, अमर्ष्, कोपु, भय्, क्षोभ् अंतु सर्वै धक्कूनु कोण् विमुक्तु जावुनूयि, बेस्स्त, तोवेयि मक्क प्रियु त्।

१६. अनपेक्षः शुचिर्दक्ष उदासीनो गतव्यथः ।
सर्वारम्भपरित्यागी यो मद्भक्तः स मे प्रियः ।

तश्शि जांक, एश्शि जांक देवा ह्मोण् कस्ले अपेक्षायि नत्तिल्लोयि, म्न्न्यि देह्यि परिशुद्ध जावुनुऽसिल्लोयि, प्रवर्त्तन् कोरूक् (कोर्च्यांतु) सामर्थ्य्सिल्लोयि, उदासीनूयि, (लाभांतूयि नष्टांतूयि एक्क्मतिरीँ), दुख्नत्तिल्लोयि, स्वन्त् कय्रेक् मात्र् जावुनु एक् कर्मयि आरम्भु कोर्नत्तिल्लोयि जावुनु खोंचोकी एक्कोलो मिग्गेलो भक्तु जावुनु बेस्स्ला तो मक्क प्रियु त्।

१७. यो न हृष्यति न द्वेष्टि न शोचति न काङ्क्षति ।
शुभाशुभपरित्यागी भक्तिमान्यः स मे प्रियः ।

कोण की सन्तोषूयि, कोप्पूयि, आग्रहूयि, कोर्नात्तिन्नेयि शुभ्यि अशुभ्यि प्र् घाल्नु मिग्गेलो भक्तु जावुनस्स् तोवेयि मक्क प्रियु जावुनऽस्सिल्लो त्।

१८. समः शत्रौ च मित्रे च तथा मानापमानयोः ।
शीतोष्णसुखदुःखेषु समः सङ्गविवर्जितः ।

१९. तुल्यनिन्दास्तुतिर्मौनी संतुष्टो येन केनचित् ।
अनिकेतः स्थिरमतिर्भक्तिमान्मे प्रियो नरः ।

शत्रु मित्र्, तश्शीचि मान् अपमान्, शेलोवु उष्ण्, सुख् दुःख् हंतु सर्वै सम् (एक्क् मतिरीन्) जावुनु, मन्नांतु कस्स्ल् विचारुनत्तिन्ने स्तुतींतूयि, निन्देंतूयि एक्क्मतिरीन् अठोवुनु, मौनि जावुनु, अस्सिलेन् (मेल्लेलेन्) मात्र् सन्तोषु पावुनु गृहासक्ति नत्तिल्लोयि, स्थिरचित्तूयि जावुनऽस्सिल्लो भक्तु कोणकी तो मक्क प्रियु त्।

२०. ये तु धर्म्यामृतमिदं यथोक्तं पर्युपासते ।
श्रद्दधाना मत्परमा भक्तास्तेऽतीव मे प्रियाः ।

खंचे भक्त् की श्रद्धेन् मक्काचि होडु ह्मोण् अठोवुनु अत्त्पर्यॉं संङ्गिन्ने धार्मिक् जावुनऽस्सिल्ले अमृताक् (मोक्षु मेल्चे उपदेशक्) अनुष्ठॉं कर्त, ते सग्ग्यि (ते सर्वै) मक्क अत्यन्त् प्रिय् त्।

ॐ तत् सदिति श्रीमद् भगवद्गीतासूपनिषत्सु ब्रह्मविध्यायां योगशास्त्रे श्रीकृष्णार्जुनसंवादे "भक्ति योगो" नाम द्वादशोऽध्यायः।

ॐ तत् सत् एश्शि श्रीमद् भगवद्गीतांतूले उपनिषत्तांतूले ब्रह्मविध्यांतूले योगशास्त्रांतूले श्रीकृष्णार्जुन संवादांतूले "भक्ति योगु" ह्मोल्लोलो अध्यायु बार (१२) समाप्त्।

*****

अध्याय् - १३

क्षेत्र क्षेत्रज्ञ विभाग योगु

अर्जुन उवाच–

१. प्रकृतिं पुरुषं चैव क्षेत्रं क्षेत्रज्ञमेव च ।
एतद्वेदितुमिछामि ज्ञानं ज्ञेयं च केशव !

अर्जुनु सङ्ग्त त् – हे केशवा, प्रकृति, पुरुषु, क्षेत्र् क्षेत्रज्ञु, ज्ञान् ज्ञेय् हज्जे पस्सून् सग्ग्यि (सर्वै) जाण्जंचाक् मक्कऽग्रेहस्स् ख्ङयि।

श्री भागवानुवाच–

२. इदं शरीरं कौन्तेय! क्षेत्रमित्यभिधीयते ।
एतद्यो वेत्ति तं प्राहुः क्षेत्रज्ञ इति तद्विदः ।

देवान् सङ्गीने–हे कौन्तेय ये शरीराक् क्षेत्र् ह्मोण् सङ्गतायि। अक्क (ये शरीराक्) कोण् व्ळ्क्ता (जाण्जत्ता) तक्का, क्षेत्र क्षेत्रज्ञविवेकियो क्षेत्रज्ञु ह्मोण् सङ्गतायि।

३. क्षेत्रज्ञं चापि मां विद्धि सर्वक्षेत्रेषु भारत !
क्षेत्रक्षेत्रज्ञयोर्ज्ञानं यत्तज्ज्ञानं मतं मम ।

हे भारत, सर्व शरीरांतूयि हांव् क्षेत्रज्ञु जावुनु स्थिति कर्त ह्मोणु जाण् जांक। क्षेत्रक्षेत्रज्ञापसूनसिल्लो ज्ञानु त् यथार्थ ज्ञानु ह्मोणु त् मिग्गेलभिप्रायु।

४. तत्क्षेत्रं यच्च यादृक्च यद्विकारि यतश्च यत् ।
स च यो यत्प्रभावश्च तत्समासेन मे शृणु ।

ते शरीर् इत्ते, क्शिश अस्सिल्ले तक्क कस्सल् सग्गयि विकारु अस्स्, कस्सल्यां धक्कूँ कशिश तो जल्लो तो कोण् (क्षेत्रज्ञु कोण्)? इत्तिकी तग्गेले प्रभाव् (ब्ल्) हज्जे पसून् सग्ग् हांव् संक्षिप्त् जावुनु सङ्ग्न् अयिक्कुका।

५. ऋषिभिर्बहुधा गीतं छन्दोभिर्विविधैः पृथक् ।
ब्रह्मसूत्रपदैश्चैव हेतुमद्भिर्विनिश्चितैः ।

ऋषियानि विविध् जावुनसिल्ले वेद मन्त्रानीयि; प्रत्येक् जावुनु पले मतिरीँ सुनिश्चित्यि, युक्ति युक्त्यि जावुनऽसिल्ले ब्रह्म सूत्र् वाक्यानीयि (ब्रह्म सूत्र मन्नांजंचे उत्तरानीयि) यें सग्ग् विवरण् कोर्नु सङ्गिल्लस्स्।

६. महाभूतान्यहंकारो बुद्धिरव्यक्तमेव च ।
इन्द्रियाणि दशैकं च पञ्च चेन्द्रियगोचराः ।

७. इच्छा द्वेषः सुखं दुःखं संघातश्चेतना धृतिः ।
एतत्क्षेत्रं समासेन सविकारमुदाहृतम् ।

महाभूत् सर्वै (भूमि, अग्नि, वायु, जल्, आकाश, एव्यि अहङ्गरु, बुद्धि, अव्यक्त्, मूलप्रकृति पाञ्च कर्मेन्द्रिय्यि-शब्दु, र्स्पश, रूप् रस् गन्ध्, पाञ्च ज्ञानेन्द्रिय्यि-इच्छ (आग्रहु), द्वेष्य्, सुख्, दुख्, संघात् (अज्जे समूह्यि) चेतन (धृति) धैर्य ऐवेयि म्न्न्यि सहित् जावुनऽस्सिल्ले त् संक्षिप्त् जावुनु सङ्गिलेरि विकार सहित् जावुनऽसिल्ले क्षेत्र् (शरीर्)।

८. अमानित्वमदम्भित्वमहिंसा क्षान्तिरार्जवम् ।
आचार्योपासनं शौचं स्थैर्यमात्मविनिग्रहः ।

आत्मप्रशंस कोरूक् प्ण, अहङ्गरु-गर्व्, हिंस प्ण। क्षम, आर्ज्जव्, गुरुसेव, देहयि मन्न्यि शुचि जावुनु दव्र्प् स्थैर्य्, आत्मावाक् (म्न्नाक्) नियन्त्रण कोर्नु रब्बोंचाक् अभ्यासु क्र्प्–

९. इन्द्रियार्थेषु वैराग्यमनहङ्कार एव च ।
जन्ममृत्युजराव्याधिदुःखदोषानुदर्शनम् ।

इन्द्रिय विषयांतु विरक्ति, अहङ्गरु नत्तिल्लवस्थ, जनन् मरण् जरा रोगु (व्याधि) अंतूले दुखाकयि दोषाकयि पस्सून् तीवृ जावुनस्सिल्लनुचिन्तँ क्र्प् (दुस्सरीय् दुस्सरीय् चिन्तँ क्र्प्),–

१०. असक्तिरनभिष्वङ्गः पुत्रदारगृहादिषु ।
नित्यं च समचित्तत्वमिष्टानिष्टोपपत्तिषु ।

बायिल् चेर्डूव् घ्र् अंतु कांयि आसक्तीयि आवेशूयि नत्तिल्लवस्थ, इष्ट प्राप्तींतूयि अनिष्ट प्राप्तींतूयि केदनायि एक्क् मतिरीन् म्न्न् दव्र्प्,–

११. मयि चानन्ययोगेन भक्तिरव्यभिचारिणी ।
विविक्तदेशसेवित्वमरतिर्जनसंसदि ।

मिज्जेरि एकाग्र् जावुनऽसिल्ले म्न्नाँ, दृढ् भक्तीं विजन प्रदेशंतु वासुकोरूक् ताल्पर्य् दक्क्वप्, बोरुंजाण् एक्क्डे जंचेक्डे व्च्चाक् ताल्पर्य नत्तिल्ले दक्क्वप्,–

१२. अध्यात्मज्ञाननित्यत्वं तत्त्वज्ञानार्थदर्शनम् ।
एतज्ज्ञानमिति प्रोक्तमज्ञानं यदतोऽन्यथा ।

अध्यात्मज्ञानांतु केदनायि तू तत्वज्ञानाचे (सर्वांतूयि देवु त् अस्स् ह्मल्लोलो विवोरु) सत्याक् (परमार्थाक्) दर्शन् कोर्का। यें सर्वै ज्ञान् ह्मोण् सङ्गतायि। अक्का विपरीत् जावुनऽसिल्ले सर्वैं अज्ञान्यित्।

१३. ज्ञेयं यत्तत्प्रवक्ष्यामि यज्ज्ञात्वामृतमश्नुते ।
अनादिमत्परं ब्रह्म न सत्तन्नासदुच्यते ।

ज्ञेय् खंचे की ह्मोण वे तें हांव् सङ्गून् दीन्। तें क्ल्लेरि (म्न्नांजल्यारि) अमृतत्व् (मोक्ष्) प्राप्य्जत्तोलो। तें आदीयि अन्त्यि नत्तिन्नेयि, होड् जावुनऽसिन्नेय् "ब्रह्म त्"। तक्क चांग् ह्मोणूयि बल्लाव् ह्मोणूयि सङ्गूक् जंन (इत्तिकी ह्मल्लेरि उत्तराक्यि, मन्नाक्यि, इन्द्रियांक्यि ब्रह्म् दिक्कु एंना। जल्यारि सत्याक् तें अस्सिन्नेयि त्)।

१४. सर्वतः पाणिपादं तत्सर्वतोऽक्षिशिरोमुखम् ।
सर्वतः श्रुतिमल्लोके सर्वमावृत्य तिष्ठति ।

तक्क सग्गलेकडेयि (at all the places) हत्त्यि, पय्य्यि अस्स्। दोलेयि, शिरस्स्यि, मुख्यि अस्स्। सग्गले कडेयि कन्न्यिऽस्स्। यें लोकांतु सर्वांकयि आवरण् कोर्नु (व्यापिजावुनु) स्थितिकर्ता।

१५. सर्वेन्द्रियगुणाभासं सर्वेन्द्रियविवर्जितम् ।
असक्तं सर्वभृच्चैव निर्गुणं गुणभोक्तृ च ।

सर्व इन्द्रियांचेयि इन्द्रियगुणंचेयि (प्रतिभास कोर्चे) मात्र जावुनऽस्सिन्नेयि, वास्तवाक् इन्दिय् कांयि पुणै नत्तिल्लेयि सङ्ग्रहित् (संङ्ग्नत्तिन्ने) जल्यारीयि

सर्वांकयि नियन्त्रण कोर्चेयि, निर्गुण् जल्यारीयि गुणंक् अनुभवु कोर्चेयि त् ते ब्रह्म्।

१६. बहिरन्तश्च भूतानामचरं चरमेव च ।
सूक्ष्मत्वात्तदविज्ञेयं दूरस्थं चान्तिके च तत् ।

तें सर्व जीवजालांलेयि भाय्रेयि अन्तर्भागरीयि स्थिति कर्त। ते स्थावरयि जंगम्यि त् (एक्क्डे स्थिर् जावुनु रब्बुच्चेयि जल्यारी चलन् अस्सिन्नेयि-सग्गलेकडेयि व्च्चेयि त्) दूर्यि लग्गीयि तें उज्वाडाँ रब्ब्त। तज्जे सूक्ष्मत्वान् (जैत्ते सान् जावुनऽस्सिल्लवस्थेन्) इन्द्रियांक्यि मन्नाक्यि दिक्कू एवुनत्तिन्ने पसावत् ते "अविज्ञेय्" (यें त् ह्मोण् दृढ्जावुनु सङ्गूक् जावुनऽत्तिल्ले) त्।

१७. अविभक्तं च भूतेषु विभक्तमिव च स्थितम् ।
भूतभर्तृ च तज्ज्ञेयं ग्रसिष्णु प्रभविष्णु च ।

विभजँ कोर्नत्तिन्ने त् जल्यारीयि सर्वै जीवियांतूयि (सर्वै भूतांतूयि) विभजँ केल्लेले मतिरीन् तें स्थिति कर्ता। तें जीवजालांक् मन्नांकर्ता, धारण् कर्ता, सृष्टि, स्थिति, संहारूयि कर्ता।

१८. ज्योतिषामपि तज्ज्योतिस्तमसः परमुच्यते ।
ज्ञानं ज्ञेयं ज्ञानगम्यं हृदि सर्वस्य विष्ठितम् ।

उजुवाडांतु उजुवाडु जावुनऽसिल्ले तें कलुक्काक्यि अतीत् ह्मोणु सङ्गतायि। सर्वांचेयि हृदयांतु स्थिति कोर्च्चे तें ज्ञान्यि, ज्ञेय्यि ज्ञानाक् दिक्कू एंचेयि त्।

१९. इति क्षेत्रं तथा ज्ञानं ज्ञेयं चोक्तं समासतः ।
मद्भक्त एतद्विज्ञाय मद्भावायोपपद्यते ।

एशि क्षेत्र्यि (देह्यि), ज्ञान्यि (देवाक् मन्नांकोर्चो विवोरु), ज्ञेय्यि (सर्वांतूयि अस्सिन्ने ब्रह्म्) सर्वांचेयि पस्सूनु हांव् संक्षिप्त् जावुनु सङ्गून् जल्ले। यें मन्नांकोर्नु मिग्गेलो भक्तु (भक्ताक्) मिग्गेले भाव् प्राप्त् कोरूक् अर्हु जत्त (भक्ताक् अर्हत मेळ्ता)।

२०. प्रकृतिं पुरुषं चैव विद्ध्यनादी उभावपि ।
विकारांश्च गुणांश्चैव विद्धि प्रकृतिसम्भवान् ।

प्रकृतीयि मनीषूयि दोन्नीयि अनादि (आदि नत्तिन्ने) ह्मोण् मन्नांकोर्का। विकार्यि गुण्यि प्रकृतींधक्कून् जल्लेन् ह्मोणूयि मन्नांकोर्का।

२१. कार्यकरणकर्तृत्वे हेतुः प्रकृतिरुच्यते ।
पुरुषः सुखदुःखानां भोक्तृत्वे हेतुरुच्यते ।

अम्मि कोर्चे, दिक्कुचे, अय्कुचे, मेल्चे एक्क्क् कार्य करण् भावाक्यि, कतृत्व भावाकयि हेतु प्रकृतीयि सुखदुखाचे अनुभूतीक् हेतु मनीषूयि ह्मोण् सङ्गतायि।

२२. पुरुषः प्रकृतिस्थो हि भुङ्क्ते प्रकृतिजान्गुणान् ।
कारणं गुणसङ्गोऽस्य सदसधोनिजन्मसु ।

इत्तिकी ह्मल्लेरि मनीषु प्रकृतींतु स्थिति कोर्नु प्रकृतींधक्कून् जल्लेले गुणंक् (सुखदुखादींक्) अनुभवु कर्त। चांग् गर्भांतूयि, नीच्जावुनऽसिल्ले गर्भांतूयि तो जनन् गेंचाक् कारण् तग्गेले (मनुष्याले) गुणसङ्ग् त्।

२३. उपद्रष्टानुमन्ता च भर्ता भोक्ता महेश्वरः ।
परमात्मेति चाप्युक्तो देहेऽस्मिन्पुरुषः परः ।

साक्षिसङ्गुच्चो, अनुवादुदिंचो, नियन्त्रण् कोर्चो, अनुभवु कोर्चो (भोग्गुच्चो), "महेश्वरु, परमात्मावु" एश्शि सग्गयि ये देहांतु स्थिति कोर्चे परमपुरुषाक् जाण जत्तायि।

२४. य एवं वेत्ति पुरुषं प्रकृतिं च गुणैः सह ।
सर्वथा वर्तमानोऽपि न स भूयोऽभिजायते ।

कोण की ए प्रकारि (एश्शि) पुरुषाक्यि (अंगेले देहांभित्तेरि बेस्सल्ले पुरुषाक्यि) प्रकृतीक्यि, प्रकृतिगुणंक्यि जाण् जत्त–तो खंचे प्रकारि जीवित् कड्त (कर्त) जल्यारीयि दुस्रीयि जन्मु घेंन। (तक्क मोक्षु मेल्ता ह्मोणु मन्नांकोर्का)।

२५. ध्यानेनात्मनि पश्यन्ति केचिदात्मानमात्मना ।
अन्ये सांख्येन योगेन कर्मयोगेन चापरे ।

ध्यान् कोर्नु आत्मावांतु आत्मावाँ (प्राणन्) प्राणक् एदीं जाण् दर्शन् कर्तायि। वेग्ग्लि सांख्य योगन्यि मग्गीरि एदींजाण् कर्म योगन्यि प्राणक् (आत्मावाक्) दर्शन् कर्तायि।

२६. अन्ये त्वेवमजानन्तः श्रुत्वान्येभ्य उपासते ।
तेऽपि चातितरन्त्येव मृत्युं श्रुतिपरायणाः ।

जल्यारि एश्शि कांयिपुणै कोल्नत्तिल्लिं एदींजाण् वेगलेलग्गि धक्कून् “तत्व्” (तत् त्वं तत्वं तें तूं त् - सर्वै देवु ह्मोणूयि अंगेले आत्मावूयि (प्राणूयि) शरीर्यि क्श्शि ह्मोणूय् सग्ग्) अय्क्कूँ मन्नांकोर्नु उपासन् कर्तायि। तंकायि अयिक्किल्ले कर्त्न, श्रद्धायुक्त् जावुनु मृत्यूक् (जनन मरण रूप् जावुनऽसिल्ले संसाराक्) तारण् कोरुयात्।

२७. यावत्संजायते किंचित्सत्त्वं स्थावरजङ्गमम् ।
क्षेत्रक्षेत्रज्ञसंयोगात्तद्विद्धि भरतर्षभ !

हे भरत श्रेष्ठ, स्थावर् जावो, जङ्गम जावो (एक्क्डे स्थिरजावुनु रब्बुच्चे जावो, एक्क्डे धक्कूनु वेग्ग्ल्क्डे ओरुयात् जलेने जावो) क्रस्सन् की-खंचे की वस्तु (Thing) जनन घेत्त जल्यारीयि तें क्षेत्राचेयि क्षेत्रज्ञाचेयि संयोगन् त् ह्मोणु मन्नांकोर्का।

२८. समं सर्वेषु भूतेषु तिष्ठन्तं परमेश्वरम् ।
विनश्यत्स्वविनश्यन्तं यः पश्यति स पश्यति ।

सर्व जीवजालांतूयि एक्क्मतरीन् स्थिति कोर्चोयि नश्वरांतूयि अनश्वरु जावुनु रब्बूचोयि त् होड्ड जावुनऽस्सिल्लो देवु ह्मोणु कोणकी मन्नांकर्ता तो त् यथार्त्थ विवोरु अस्सिल्लो (ज्ञानि)।

२९. समं पश्यन्हि सर्वत्र समवस्थितमीश्वरम् ।
न हिनस्त्यात्मनात्मानं ततो याति परां गतिम् ।

इत्तिकी ह्मल्लेरि स्ग्गलेकडेयि एक्क्मतिरीन् देवु स्थिति कर्त ह्मोणु मन्नांकोर्चि आत्मावान् (प्राणन्) आत्मावाक् (प्राणक्) हनन् क्र्नायि (दिंशिमारनायि)। ते पसावत् तो चांग् गतीक् प्राप्य् जत्त (परमगतीक्-देवालग्गि पंत–तक्क शान्ति मेळ्ता)।

३०. प्रकृत्यैव च कर्माणि क्रियमाणानि सर्वशः ।
यःपश्यति तथात्मानमकर्तारं स पश्यति ।

प्रकृतीचित् सर्व प्रकारीनेयि प्रवर्त्तन् कोर्चि ह्मोणूयि प्राणु (आत्मावु) कांयि पुणै कोर्नत्तिल्लो ह्मोणूयि मनां कोर्च्चो त् यथार्त्थ् जावुनऽसिल्लो तत्वदर्शिश (तत्व् क्ळ्त्तल्लो)।

३१. यदा भूतपृथग्भावमेकस्थमनुपश्यति ।
तत एव च विस्तारं ब्रह्म सम्पधते तदा ।

केद्दाण प्ले एक्कोलो सर्वै जीवजालांले पलेविधानेयि प्रत्येक् जावुनूयि अस्सिल्ले भाव् एक्कांतु (देवांतूचि) स्थिति कर्त जावुनूयि तंतु धक्कून् विस्तारु जंचे जावुनूयि पलेमतिरीन् जंचेयि मनांकर्ता, त्व्लि तो ब्रह्म जत्ता।

३२. अनादित्वान्निर्गुणत्वात्परमात्मायमव्ययः ।
शरीरस्थोऽपि कौन्तेय! न करोति न लिप्यते ।

हे कौन्तेय, अव्ययु जावुनऽसिल्लो (दिक्कू एावुनत्तिल्लो) यो परमात्मावु शरीरांतु (देहांतु) स्थिति कर्त जल्यारीयि अनादीयि (आदिनत्तिल्लोय्) गुण् नत्तिल्लोयि पसावत् क्स्सल् प्रवर्त्तीयि क्र्ना। एक्कान्यि लयिजावुनूयि व्च्च्ना।

३३. यथा सर्वगतं सौक्ष्म्यादाकाशं नोपलिप्यते ।
सर्वत्रावस्थितो देहे तथात्मा नोपलिप्यते ।

खंचे प्रकारॉं सर्व व्यापि जावुनऽसिल्ले आकाश् तग्गेले सूक्ष्म भाव् पसावत् एक्कान्यि लयिजावुनत्तिन्ने बेस्स्ल, तेचि प्रकारि आत्मावु सर्व देहांतूयि स्थिति कर्त जल्यारीयि एक्कान्यि लयिजायिना।

३४. यथा प्रकाशयत्येकः कृत्स्नं लोकमिमं रविः ।
क्षेत्रं क्षेत्री तथा कृत्स्नं प्रकाशयति भारत !

हे भारत, खंचे प्रकारि की लोकाक् सर्वै एकु जावुनसिल्लो सुर्यु प्रकाशु कर्ता, तेचि विधाँ क्षेत्राक् (शरीराक्) सगलेंचि क्षेत्रज्ञु (आत्मावु) प्रकाशु कर्ता।

३५. क्षेत्र क्षेत्रज्ञयोरेवमन्तरं ज्ञानचक्षुषा ।
भूतप्रकृतिमोक्षं च ये विदुर्यान्ति ते परम् ।

ये प्रकारि क्षेत्राचेयि (देहाचेयि) क्षेत्रज्ञालेयि (आत्मावाचेयि) रूप भेदाक्यि जीवजालांक् प्रकृतींधक्कूनस्सिन्ने मोक्षाक्यि (मोचनाकस्सिल्ले उपाय्यि–वाट्यि) कोण् सर्वै ज्ञान चक्षुसान् (अरिव्-विवोरु मेल्लेले दोलेन्) दर्शन् कर्तायि तन्नि परम् जावुनऽस्सिल्ले (होड्) पदाक् प्राप्य् जत्तायि-देवाले पय्यांकडे पंवत्तायि।

ॐ तत् सदिति श्रीमद् भागवद् गीतासूपनिषत्सु ब्रह्मविध्यायां योगशास्त्रे श्रीकृष्णार्जुन संवादे "क्षेत्रक्षेत्रज्ञविभागयोगो" नाम त्रयोदशोऽध्यायः।

ॐ तत् सत् एश्शि श्रीमद् भागवद्गीतांतूले उपनिषतांतूले ब्रह्मविध्यांतूले योगशास्त्रांतूले श्रीकृष्णार्जुन संवादांतूले "क्षेत्रक्षेत्रज्ञविभाग योगु" ह्मोल्लोलो अध्यायु तेरा (१३) समाप्त्।

*****

अध्याय् - १४

गुणत्रय विभाग योगु

श्री भागवानुवाच–

१. परं भूयः प्रवक्ष्यामि ज्ञानानां ज्ञानमुत्तमम् ।
यज्ज्ञात्वा मुनयः सर्वे परां सिद्धिमितो गताः ।

देवान् संङ्गीने–ज्ञानांतु दोव्वोरु उत्तम्यि होडयि जावुनऽस्सिल्ले ज्ञान्, हांव् अनिक्यि उपदेशु कोर्नु दीन्। यो ज्ञानु मन्नांकोर्नु त् सर्वै मुनीयोयि संसार बन्धांतु धक्कून् मुक्त् जावुनु परम्सिद्धीक् (होड् योगाक्) प्राप्य् जल्लेनि।

२. इदं ज्ञानमुपाश्रित्य मम साधर्म्यमागताः ।
सर्गेऽपि नोपजायन्ते प्रलये न व्यथन्ति च ।

ये ज्ञानाक् आश्रयुकोर्नु मिग्गेले परमार्त्थ भावाक् प्राप्य् जंचि– सृष्टिकालाक् जनन् घेव्प् जावो, मरण् दुख अनुभवु जाव्प् जावो जाय्नायि। (जनन मरण रूप् जावुनऽसिल्ले संसाराक् तन्नि तारण् कर्त्तनि ह्मोण् अर्त्थु)।

३. मम योनिर्महद्ब्रह्म तस्मिन्गर्भं दधाम्यहम् ।
संभवः सर्वभूतानां ततो भवति भारत !

हे भारत, मिग्गेलि योनि (गर्भाधानस्थान्) प्रकृतित् (होड् ब्रह्म)। तंतु हांव् गर्भाक् बीज् निक्षेपु कर्त्त। तंतु धक्कून् त् सर्व जीवजालांचेयि आरंभु (उल्भवु जाव्प्)।

४. सर्वयोनिषु कौन्तेय! मूर्तयः सम्भवन्ति याः ।
तासां ब्रह्म महद्योनिरहं बीजप्रदः पिता ।

हे कौन्तेय, सर्व योनींतूयि जनन् घेंचे रूपांक् (चराचर रूपांक्-चलँ अस्सिल्लेयि नत्तिल्लेयि जावुनऽस्सिल्ले रूपांक्) महत् ब्रह्म् त् योनि (होड् जावुनस्सिल्ले ब्रह्म् त् योनि–प्रकृति)। हांव् बीज् दिंचो (गर्भाधान् कोर्चो) पितास्थानीयु त् (बप्पायि त्– ह्मोणु अर्त्थु)।

५. सत्त्वं रजस्तम इति गुणाः प्रकृतिसंभवाः ।
निबध्नन्ति महाबाहो! देहे देहिनमव्ययम् ।

हे महाबाहो, सत्त्व्, रजस्स् तमस्स् यश्शि प्रकृतीं धक्कून् जनन् घेंचे ये तीनि गूण्यि देहांतु स्थिति कोर्चे अव्ययु जावुनऽस्सिल्ले देहीक् (आत्मावाक्) बन्धन् कर्त्ता।

६. तत्र सत्त्वं निर्मलत्वात्प्रकाशकमनामयम् ।
सुखसङ्गेन बध्नाति ज्ञानसङ्गेन चानघ !

हे अनघ (पाप् कोर्नत्तिल्ल्या) तंतु (सत्त्व्, रजस्, तमस् ये तीनि गुणंतु) सत्त्व् गुण् तज्जे निर्मलत्वान् कर्त्त्न प्रकाशु दिंचेयि अनामय्यि (दोषुनत्तिल्लेयि) त्। तें सुखाचेयि ज्ञानाचेयि लग्गियस्सिल्ले सङ्गान् कर्त्त्न देहीक् बन्धन् कर्ता।

७. रजो रागात्मकं विद्धि तृष्णासङ्गसमुद्भवम् ।
तन्निबध्नाति कौन्तेय कर्मसङ्गेन देहिनम् ।

हे कौन्तेय, रजोगुण् रागत्मक् त् ह्मोणु जाण् जांका। तृष्ण (जाण् जंचाक्–कोलूक्–कोरूक्–इत्याक्यिऽस्सिल्लो होडु आग्रहु), सङ्ग् ये सग्ग्यि रजो गुणंतु धक्कूनु त् जनि जत्त। तें (रजोगुण्) कर्मांतस्सिल्ले आसक्तीन् (होड् आग्रहु पसावत्) देहीक् बन्धँ कोरू अस्त्ने।

८. तमस्त्वज्ञानजं विद्धि मोहनं सर्वदेहिनाम् ।
प्रमादालस्यनिद्राभिस्तन्निबध्नाति भारत !

हे भारत, सर्व देहीलेंयि मोह कारण् जावुनऽस्सिल्लो कालूकु अज्ञानांतु धक्कून् उद्भवु जत्त ह्मोण् कोल्क (मन्नांकोर्क)। प्रमाद्, आलस्य्, निद्र अज्जान् (ये कैरेन्) सग्ग्यि त् तें देहीक् बन्धन् कर्त्ता।

९. सत्त्वं सुखे सञ्जयति रजः कर्मणि भारत !
ज्ञानमावृत्य तु तमः प्रमादे सञ्जयत्युत ।

हे भारत, सत्वगुण् सुखांतूयि, रजस्स् कर्मांतूयि ताल्पर्य् क्र्य्त। जल्यारि तमस्स् (कालूकु) ज्ञानाक् निप्पोवुनु दोव्वोरु प्रमादांतु त् आग्रहु (आसक्ति) दक्केवेय्ता (क्रेय्ता)।

१०. रजस्तमश्चाभिभूय सत्त्वं भवति भारत !
रजः सत्त्वं तमश्चैव तमः सत्त्वं रजस्तथा ।

हे भारतश्रेष्ठ, (भारतांतु श्रेष्ठुजावुनऽसिल्या) - रजस्साक्यि तमस्साक्यि निश्चल् कोर्नु सत्व्यि सत्त्वाकयि तमस्साकयि पोन्दाक्गाल्नु रजस्स्यि, सत्त्वाक्यि रजस्साक्यि पोन्दाक्गाल्नु तमस्स्यि प्रबल् जावुनु तीर्जंत्ता (प्रबल् जावुनेत्ता)।

११. सर्वद्वारेषु देहेऽस्मिन्प्रकाश उपजायते ।
ज्ञानं यदा तदा विधाद्विवृद्धं सत्त्वमित्युत ।

ये देहांतूले सर्व इन्द्रियांतूयि मन्नांतूयि ज्ञानाचो उजुवाडु केद्दाण की जत्त त्व्लि (ते समयारि–at that time) सत्त्व गुणाक् वद्धन् (च्ड्) जल्लेया ह्मोण् मन्नां कोर्का।

१२. लोभः प्रवृत्तिरारम्भः कर्मणामशमः स्पृहा ।
रजस्येतानि जायन्ते विवृद्धे भरतर्षभ !

भरतश्रेष्ठ–रजोगुणचे वर्द्धँ जाय्नाफडेन् पिशुक्क् (लोभ्) दक्क्व्प्, कर्मांचे आरंभु क्र्प्, अशन्ति, आग्रहु यें जाव्प्–एश्शि सग्ग्यि जत्त (यें सर्वै जनन घेत्त)। यें लक्ष्ण् दिक्कनाफडेन् रजोगुण् च्ड् जल्ले ह्मोण् मन्नांकोर्का।

१३. अप्रकाशोऽप्रवृत्तिश्च प्रमादो मोह एव च ।
तमस्येतानि जायन्ते विवृद्धे कुरुनन्दन !

हे कुरुनन्दना (कुरुवंशंतूले पुत्ता) उजुवाडु नत्तिल्लवस्थ– (अज्ञानाचो अन्धकारु न्यि जल्यारि अविवेकु–विवेकु नत्तिल्लि अवस्थ) प्रवृत्ति कोरुक् वैमुख्य (म्डि–अल्सायि) प्रमाद, मोहु ये सर्वै तमस्स्-तमोगुण् वर्द्धन्जाय्नाफडेन् जत्त। ये सर्वै तमोगुण् लक्ष्ण् त्।

१४. यदा सत्त्वे प्रवृद्धे तु प्रलयं याति देहभृत् ।
तदोत्तमविदां लोकानमलान्प्रतिपद्यते ।

सत्वगूण् च्ड् जावुनऽस्सिल्लवस्थेरि देहत्यागु कोर्चो देहि होड् (उत्तम् जावुनऽसिल्ले) ज्ञानियांले निर्म्मल् जावुनसिल्ले लोकांतु पंव्ता।

१५. रजसि प्रलयं गत्वा कर्मसङ्गिषु जायते ।
तथा प्रलीनस्तमसि मूढयोनिषु जायते ।

रजोगूण् च्ड् जाय्नाफडेँ मृत्यु जत्त जल्यारि तो देहि कर्मासक्तांले कूटांतु जनन्गेत्त। तमोगुणंचे वर्द्धनावस्थेरि त् म्र्ण् जत्त जल्यारि तो (देहि–आत्मावु) मूढ योनियांतु जनन् गेत्ता।

१६. कर्मणः सुकृतस्याहुः सात्त्विकं निर्मलं फलम् ।
रजसस्तु फलं दुःखमज्ञानं तमसः फलम् ।

सुकृत (सात्विक) कर्माचे फ्ल् (चंग्पण् केल्यारि फ्ल्) सात्विक्यि निर्मलयि ह्योण् सङ्ग्तायि। रजस कर्माचे फ्ल् दुःख् त्। तामसिक् कर्माचे फ्ल् अज्ञान्यि त्।

१७. सत्त्वात्संजायते ज्ञानं रजसो लोभ एव च ।
प्रमादमोहौ तमसो भवतोऽज्ञानमेव च ।

सत्व गुणंधक्कून् ज्ञान् जत्त। रजस्सां धक्कून् जंचे त् लोभ् (ऊणत्व दक्क्व्प्)। प्रमाद्यि मोह्यि, अज्ञान्यि तमस्सांतु धक्कूनु जत्ता।

१८. ऊर्ध्वं गच्छन्ति सत्त्वस्था मध्ये तिष्ठन्ति राजसाः ।
जघन्यगुणवृत्तिस्था अधो गच्छन्ति तामसाः ।

सत्व गुणँ रब्बुच्चि ऊर्ध्वगति प्राप्य् जत्तायि (तंक होल्लि चांगि गति मेल्त)। मोक्षु मेल्ता ह्मोण् अर्थु। रजसवृत्ति कोर्चे मध्ये (मनुष्य) लोकांतु रब्तायि। तामसवृत्ति कोर्चे निकृष्ट गुणवृत्तीयो जावुनु अधोगति प्राप्य् जत्तायि (तंक बल्लाव्प्ण्चि मेळ्ता)।

१९. नान्यं गुणेभ्यः कर्तारं यदा द्रष्टानुपश्यति ।
गुणेभ्यश्च परं वेत्ति मद्भावं सोऽधिगच्छति ।

गुण्जंचे कैरि नंत्न वेग्गले कांयिपुणै कर्तृभावांतु प्रवर्त्तन् क्न्नायि ह्मोणु दृष्टावु (विवेकि–विवोरऽस्सिल्लो) निरन्तर् जावुनु (केदनायि) मन्नांकर्ता।

गुणंक् अतीत् जावुनऽस्सिल्लेक् परमात्मावाक् (देवाक्) मन्नांक्र्प्यि–(जाण् जाव्प्यि) क्र्ना–फडेन् तो मिग्गेले भावाक् प्राप्य् जत्ता (मिग्गेले भावारि पंता)।

२०. गुणानेतानतीत्य त्रीन्देही देहसमुद्भवान् ।
जन्ममृत्युजरादुः खैर्विमुक्तोऽमृतमश्नुते ।

देहांतुधक्कून् (देहारि) उद्भविजंचे ये तीनि गुणंक्यि अतिक्रमु–कोर्नु देहि (जीवात्मावु) जनन्, मरण्, ज्र एश्शिऽस्सिल्लेन् जंचे दुखांतु धक्कून् विमुक्तु जावुनु अमृत् अनुभवु कर्ता (तक्क मोक्षु मेळ्ता)।

अर्जुन उवाच-

२१. कैर्लिङ्गैस्त्रीन्गुणानेतानतीतो भवति प्रभो !
किमाचारः कथं चैतांस्त्रीन्गुणानतिवर्तते ।

एश्शि अस्सिल्ले वेलारि अर्जुनु निंङ्गीत त्–

हे प्रभो ये तीनि गुणंक्यतीत् जावुनऽस्सिल्लो ह्मोणु क्स्स्ले लक्षणानि मन्नांकोरुयात्? तग्गेलो आचारित्ति की अस्तोलो? तग्गेले प्रवर्तन् कश्शि की अस्त्ने? ये तीनि गुणंक्यि तो कश्शि तारण कोर्तोलो?

श्री भगवानुवाच–

२२. प्रकाशं च प्रवृत्तिं च मोहमेव च पाण्डव !
न द्वेष्टि संप्रवृत्तानि न निवृत्तानि काङ्क्षति ।

तव्व्लि देवान संङ्गीने–हे पाण्डु नन्दना (पाण्डूले पुत्ता) सत्वगुणवर्द्धनाफ्ल् जावुनऽस्सिल्ले प्रकाश्यि, रजोणुग वर्द्धना फ्ल् जावुनऽस्सिल्ले प्रवृत्तीयि, तमोगुण वर्द्धना फ्ल् जावुनऽस्सिल्ले मोहयि (तें तिन्नीयि गुण्) एनाफडेन् कोणकी एक्कोलो कोपु दक्क्व्प् जावो, तें तिन्नीयि गुण् सोणु वच्च्नाफडेन् दुस्स्रीयि एंका ह्मोण आग्रहु जावो क्र्ना–

२३. उदासीनवदासीनो गुणैर्यो न विचाल्यते ।
गुणा वर्तन्त इत्येव योऽवतिष्ठति नेङ्गते ।

कोणकी एक्कोलो उदासीनामतिरीन् (साक्षि जावुनु) रब्बूनू गुणंतु धक्कून् (गुण् जंचे प्रवृत्तींतु धक्कून्) अल्लूनत्तिन्ने रब्ब्प्यि (वेग्ग्ले वटेन् ओचूनत्तिन्ने रब्ब्प्यि) गुणंचे कैरि त् हांव् प्रवर्त्तन कोर्नु रब्बीला ह्मोणु मन्नांकोर्नु निश्चलु जावुनु, दृढ् जावुनऽस्सिल्ले मन्नान् प्रवर्त्तन्यि कर्ता –

२४. समदुःखसुखः स्वस्थः समलोष्टाश्मकाञ्चनः ।
तुल्यप्रियाप्रियो धीरस्तुल्यनिन्दात्मसंस्तुतिः ।

२५. मानापमानयोस्तुल्यस्तुल्यो मित्रारिपक्षयोः ।
सर्वारम्भपरित्यागी गुणातीतः स उच्यते ।

कोणकी एक्कोलो सुखांतूयि दुखांतूयि स्म् जावुनु स्वस्थ् जावुनु (प्राणक् दृढ् जावुनु प्रतिष्ठ कोर्नु– धैर्यान् रब्बूनु– भत्तोरुयि रेवेंयि, भङ्गर्यि (सुवर्ण्यि) एक्क् मतिरीन् अठोंचोयि (दिक्कुच्चोयि) जत्त –

इष्टांतूयि अनिष्टांतूयि, स्तुतींतूयि निन्देंतूयि तुल्यबुद्धि जावुनु मानांतूयि अपमानांतूयि एक् भावस्सिल्लो जावुनु (एक्क् मतिरीन् लेक्कुच्चो जावुनु) मित्रपक्षाक्यि शत्रुपक्षाक्यि एकक् विधान् वीक्षण् कोर्चो जावुनु, स्वार्त्थ ताल्पर्याक् जावुनु (स्वन्त कैरेक्-लाभाक्मात्र् जावुनु) एक् कर्म्यि आरंभु कोर्नत्तिल्लो जावुनु, धीरुजावुनु, ज्ञानिजावुनु रब्ब्त-तो उंचारि ४ स्लोकांतु सङ्गिन्ने लक्षणऽस्सिल्लो (ये तिन्नीयि गुणंकयि अतीतु (उंचारि) ह्मोण् मन्नांकोर्का) गुणतीतु ह्मोण् सङ्गतायि।

२६. मां च योऽव्यभिचारेण भक्तियोगेन सेवते ।
स गुणान्समतीत्यैतान्ब्रह्मभूयाय कल्पते ।

स्ग्ग् वेलारीयि मन्न् सोणस्सिल्ले भक्तिन् मक्क कोणकी भोज्जीत (प्रार्त्थन कर्ता) उपवासु कर्ता तोव्यि त्रिगुणंक् तारण कोर्नु "ब्रह्मभावु" प्राप्ति जंचाक् (मेळूक्) अर्हु जत्ता।

२७. ब्रह्मणो हि प्रतिष्ठाहममृतस्याव्ययस्य च ।
शाश्वतस्य च धर्मस्य सुखस्यैकान्तिकस्य च ।

इत्तिकी हमल्लेरि, हांव्त् (अक्षर) ब्रह्माक्यि, अव्यय् जावुनस्सिल्लमृताक्यि (मोक्षाक्यि), शश्वत् जावुनऽस्सिल्ले धर्माक्यि, एकान्त् जावुनसिल्ले अखण्ड् आत्यन्तिक सुखाकय् आश्रयुजावुनस्स्।

ॐ तत् सदिति श्रीमद्भगवद्गीतासूपनिषत्सु
ब्रह्मविध्यायां योगशास्त्रे श्रीकृष्णार्जुन संवादे
"गुणत्रयविभागयोगो" नाम चतुर्दशोऽध्यायः।

ॐ तत् सत् एश्शि श्रीमद् भगवद् गीतांतूले
ब्रह्मविध्यांतूले योगशास्त्रांतूले श्रीकृष्णार्जुन
संवादांतूले गुणत्रयविभागयोगु ह्मोल्लोलो
अध्यायु चोद्द (१४) समाप्त्।

*****



अध्याय् - १५

पुरुषोत्तम योगु

श्री भगवानुवाच–

१. ऊर्ध्वमूलमधःशाखमश्वत्थं प्राहुरव्ययम् ।
छन्दांसि यस्य पर्णानि यस्तं वेद स वेदवित् ।

देवान् सङ्गीने–उंचावेल् भगक् मूल्यि खल्लच्चे भागक् खंदेयि अस्सिल्ले अश्वत्थ वृक्षाक् (संसारा वृक्षाक्) अव्यय् ह्मोणु सङ्गतायि (आदीयि अन्त्यि नत्तिल्ले ह्मोण् सङ्गतायि)। संसाराचे मूलकारण् ब्रह्म्यि कैरिं क्शिश क्रप् ह्मल्लेले उपाधीयो खंदेयि ते वृक्षाचे पन्न्-वेदूयि (छन्दस्स्)। कोणकी ये प्रकारि अक्क (ये वृक्षाक्) मन्नांकर्तायि तो त् वेदज्ञु। (वेदु कोल्चो ह्मोण् अर्थु)।

२. अधश्चोर्ध्वं प्रसृतास्तस्य शाखा गुणप्रवृद्धा विषयप्रवालाः ।
अधश्च मूलान्यनुसंततानि कर्मानुबन्धीनि मनुष्यलोके ।

तज्जे (संसार वृक्षाचे) शख सर्वै खल्लाक्यि उंचारीयि व्यापि-जावुनु रब्बीला। तें (शखा) त्रिगुणनि (सत्व, रजस्स्, तमस्स् गुणनि) परिपुष्ट्यि (समृद्ध्यि) विषय्यि जावुनऽस्सिल्लंकुर्यानि बोर्नऽस्सिन्नेयि त्। खांचिनत्तिल्ले भोर्नुवटूनु रब्बिल्ले ते रुक्काचे मूल् सर्वै अथो भागक् मनुष्य लोकांतु कर्मालग्गि अहन्त, ममत, वासन एश्शि केदनायि–निरन्तर् जावुनु बन्धन् कोर्नु रबीला त्।

३. न रूपमस्येह तथोपलभ्यते नान्तो न चादिर्न च संप्रतिष्ठा
अश्वत्थमेनं सुविरूढमूलमसङ्गशस्त्रेण दृढेन छित्त्वा ।
४. ततः पदं तत्परिमार्गितव्यं यस्मिन्गता न निवर्तन्ति भूयः।
तमेव चाघं पुरुषं प्रपघे यतः प्रवृत्तिः प्रसृता पुराणी ।

ये लोकांतु तज्जे (संसारवृक्षाचे) स्वरूप् जाण् जाय्नायि (क्रस्स्ने ह्मोणु कोण् सङ्गनायि–कोणक् वोल्क्कुच्चे जावुनूयि न्यि)। तेंचि लेक्कान्चि

तज्जे आदीयि अन्त्यि, मूल्यि (अडिस्थान्यि) क्ला। ब्लान् वढूनु रब्बिल्ले ते संसार वृक्षाक्–ब्लानस्सिल्ले "असङ्ग्" जावुनऽस्सिल्ले (अनासक्ति जावुनऽस्सिल्ले–ह्म्ल्लेरि एक्कांतूयि आसक्ति नत्तिन्ने रब्ब्प् ह्म्ल्लेले आयुधान्) आयुधान् कत्तोरु प्र् घाल्क। तज्जे उपरांते पुनर्जन्म् जावुनत्तिल्ले ते पय्यांकडे (देवाले पय्यांकडे) पंचाक् अन्वेषण् कोर्क जलेन् त्। खंचेकी मूलस्थानारि धक्कून् संसार प्रवृत्ति प्रसारण् केल्लें की–ते आदि पुरुषाक् हांव् शरण् पंत ह्मोणु प्रार्थन कोरुका।

५. निर्मानमोहा जितसङ्गदोषा अध्यात्मनित्या विनिवृत्तकामाः ।
द्वन्द्वैर्विमुक्ताः सुखदुःखसंज्ञैर्गच्छन्त्यमूढाः पदमव्ययं तत् ।

अहंभाव्यि मोह्यि नत्तिल्लींयि, भयन्गर् जावुनस्सिल्लाग्रहाक् जयिजल्लेनीयि, काम वासन नत्तिन्नीयि, सुख् दुखादि द्वन्द्वांतु धक्कून् मुक्त् जावुनु अद्ध्यात्म ज्ञानांतु नित्य निष्ठकोर्चीयि जावुनऽस्सिल्लेयि, ज्ञान् मेल्लेनीयि–अव्यय् जावुनऽस्सिल्ले ते 'पदाक्' (देवाले पय्यांकडे) शरण् पंतायि।

६. न तद्भासयते सूर्यो न शशाङ्को न पावकः ।
यद्गत्वा न निवर्तन्ते तद्धाम परमं मम ।

तक्क (ते पदाक्) सूर्य, चन्द्रु आग्नि हन्नि कांयि प्रकाशु कोर्नु दीनायि। तें प्राप्तु जावुनु जल्लेरि मग्गीरि दुस्सरीयि एंचाक् जाय्न (जनन् घेंचाक् जंन) तेंत् मिग्गेले होड् जावुनऽस्सिल्ले स्थान्।

७. ममैवांशो जीवलोके जीवभूतः सनातनः ।
मनः षष्ठानीन्द्रियाणि प्रकृतिस्थानि कर्षति ।

मिग्गेले सनातन् जावुनऽस्सिल्ले अंश्चित् जीवलोकांतु जीवात्मावु जावुनु प्रकृतींतु धक्कून् मेल्लेले पञ्चेन्द्रियांक्यि सट्टे इन्द्रिय् जावुनऽस्सिल्ले म्न्नाक्यि आकर्षाण् कर्ता (मिज्जे लाग्गि दोर्नु कड्ता)।

८. शरीरं यदवाप्नोति यच्चाप्युत्क्रामतीश्वरः ।
गृहीत्वैतानि संयाति वायुर्गन्धानिवाशयात् ।

देवु–(ईश्वरांश् जावुनऽस्सिल्लो जीवात्मावु) एकशरीरांतु प्राप्य् जाय्ना फडेनेयि, शरीराक् प्र्गल्ना फडेनेयि (शरीरांतु धक्कून् व्च्च्नाफडेनेयि) वायु आकाशांतु (मल्बारि) (पुष्पादि स्थानारि रब्बूनु) गन्धाक् मतिरीन् अङ्कायि (पञ्चेन्द्रियांक्यि मन्नाक्यि) गेवुनुत् व्त्त (जीवात्मावु एाक् शरीरांतु प्रवेशु क्र्ना फडेन् पञ्चेन्द्रियांकयि म्न्नाकयिगेवुनु एत्त-शरीरांतु धक्कून् व्च्चना-फडेन् अङकायि गेवुनु व्त्त ह्मल्लेने त् सारांश्)।

९. श्रोत्रं चक्षुः स्पर्शनं च रसनं घ्राणमेव च ।
अधिष्ठाय मनश्चायं विषयानुपसेवते ।

कानु, दोले, अंगसालि (स्पर्शन्) जीब्, नांक्, म्न्न् यें सर्वै इन्द्रियांतु अधिष्ठाँ कोर्नु (बेस्सूनु) यो आत्मावु (प्राणु) सोवुदु आदि विषयांक् अनुभवु कर्ता।

१०. उत्क्रामन्तं स्थितं वापि भुञ्जानं वा गुणान्वितम् ।
विमूढा नानुपश्यन्ति पश्यन्ति ज्ञानचक्षुषः ।

आत्मावु देह् सोणु व्च्चे जावो
देहांतु स्थिति कोर्च्चे जावो
भोगु अनुभवु कोर्च्चे जावो
गुणयुक्तु जावुनु बेस्सुच्चे जावो
मूढ् जावुनऽस्सिल्ले म्नीष् मन्नांक्र्नायि। जल्यारि
विवेकि-जावुनऽस्सिन्नि (ज्ञानचक्षुस्स्ऽस्सिन्नि) मन्नांकर्तायि।

११. यतन्तो योगिनश्चैनं पश्यन्त्यात्मन्यवस्थितम् ।
यतन्तोऽप्यकृतात्मानो नैनं पश्यन्त्यचेतसः ।

योगीयो प्रयत्नुकर्त कारण (प्रयत्नु कड्चे योगीयो) तंग् तंगलेंतु (देहांतु) स्थिति कोर्च्चे आत्मावाक् दर्शन कर्तायि, आत्म प्रतिष्ठ सिद्धि कोर्नात्तिल्ले म्नीष् (मन्दबुद्धियो) प्रयत्नु केल्लेरीयि तक्क (आत्मावाक्) दिक्कू एंना।

१२. यदादित्यगतं तेजो जगद्भासयतेऽखिलम् ।
यच्चन्द्रमसि यच्चाग्नौ तत्तेजो विद्धि मामकम् ।

आदित्यांधक्कूनु एंचे क्स्सल् की तेजस्स् लोकांतु सर्वै प्रकाशु दित्त, क्स्सल्की एाक् चन्द्रांतूयि, अग्नींतूयि स्थिति कर्त, तें तेजस्स् मिग्गेल् त् ह्मोणु मन्नां कोरुका।

१३. गामाविश्य च भूतानि धारयाम्यहमोजसा ।
पुष्णामि चौषधीः सर्वाः सोमो भूत्वा रसात्मकः ।

हांव् भूमींतु एवुनु सूर्य तेजोरूपान् सर्व भूतांक्यि धारण् कर्त। रसात्मक्जावुनऽस्सिल्लो चन्द्रु जावुनु जीवजालांक्यि औषधींक्यि सर्वै पोषण्यि कर्ता।

१४. अहं वैश्वानरो भूत्वा प्राणिनां देहमाश्रितः ।
प्राणापानसमायुक्तः पचाम्यन्नं चतुर्विधम् ।

हांव् वैश्वानरु (जठराग्नि) जावुनु प्राणियांले देहांतु प्रवेशु कोर्नु प्राणलाग्गीयि अपानाल्लग्गीयि सोर्नु चारिविध् जावुनऽस्सिल्लाहारु पचन् कर्ता (भक्षण् कर्ता–खत्ता)।

१५. सर्वस्य चाहं हृदि संनिविष्टो मत्तः स्मृतिर्ज्ञानमपोहनं च ।
वेदैश्च सर्वैरहमेव वेद्यो वेदान्तकृद्वेदविदेव चाहम् ।

सर्व जीवियांलेयि हृदयांतु हांव् वासुकर्त। मिज्जेरि धक्कून् त् स्मृतीयि (उड्गसूयि) ज्ञान्यि, विस्सोरूयि (विस्र्प्– उडगासुनत्तिल्लवस्थायि) जत्त। सर्व वेदानीयि जाणजांका जल्लोलो हांव् त्। वेदान्ताचे उपदेष्टावूयि (वेदान्तापसूनुपदेशु दिंचोयि) वेदज्ञूयि हांव्ंचित्।

१६. द्वाविमौ पुरुषौ लोके क्षरश्चाक्षर एव च ।
क्षरः सर्वाणि भूतानि कूटस्थोऽक्षर उच्यते ।

क्षरु अक्षरु ह्मोणु लोकांतु दोनि तराचे पुरुष्अस्सयि। लोकांतूले सर्व भूतयि क्षरांतु त्। मायाशक्ति प्रयुक्तु जावुनऽस्सिल्लो जीवात्मावु अक्षरपुरुषु ह्मोण् सङ्गतायि।

१७. उत्तमः पुरुषस्त्वन्यः परमात्मेत्युदाहृतः ।
यो लोकत्रयमाविश्य बिभर्त्यव्यय ईश्वरः ।

जल्यारि उत्तमु जावुनऽस्सिल्लो पुरूषु ये दोन्नींतु (क्षरूयि अक्षरूयि) धक्कूनूयि व्यत्यस्थु त्। तंक परमात्मावु ह्मोण् सङ्गतायि। तोत् तिन्नीयि लोकांतूयि प्रवेशुकोर्नु लोकु सर्वै नियन्त्रण् कोर्चो अव्ययु जावुनऽस्सिल्लो देवु।

१८. यस्मात्क्षरमतीतोऽहमक्षरादपि चोत्तमः ।
अतोऽस्मि लोके वेदे च प्रथितः पुरुषोत्तमः ।

हांव् क्षरपुरुषांतु धक्कून् (लोकांतूले सर्व भूतांतु धक्कून्) अतीतु त्। अक्षरपुरुषापश्शि (जीवात्मावा पश्शि) हांव् उत्तमु त्। ते पसावत् हांव् लोकांतूयि वेदांतूयि "पुरुषोत्तमु" ह्मोणु प्रसिद्धु त्।

१९. यो मामेवमसम्मूढो जानाति पुरुषोत्तमम् ।
स सर्वविद्भजति मां सर्वभावेन भारत !

हे भारत, मोहरहितु जावनु (मोहुनत्तिन्ने) कोण् मक्क ये प्रकारियस्सिल्लो पुरुषोत्तमु ह्मोण् मन्नां कर्ता तो सर्वै कोल्चो त्। सर्व प्रकारीनीयि (सर्व भावान्यि) तो मक्क भोज्जितायि जत्ता।

२०. इति गुह्यतमं शास्त्रमिदमुक्तं मयानघ ।
एतद्बुद्ध्वा बुद्धिमान्स्यात्कृतकृत्यश्च भारत ।

पाप्कांयि पुणै कोर्नत्तिल्ले हे भारत, ये प्रकारि होड् रहस्य जावुनऽस्सिल्ले ये शास्त्र् हांव् तुक्क उपदेशुकेल्लो। यें जांकाजल्लेल् मतिरीन् (लेक्कान्) मन्नांकोर्चो त् सर्वै कोल्चोयि बुदुवन्तूयि होडु कृतकृत्यूयि (कोरुकाजल्लेने कोरुकाजल्लेल् वेलारि कोर्काजल्लेल् मतिरीन् कोर्चोयि) जावुनु एत्तोलो ह्मोणु मन्नांकोर्का।

ॐ तंत् सदिति श्रीमद्भगवद्गीतासूपनिषत्सु
ब्रह्मविध्यायां योगशास्त्रे श्रीकृष्णार्जुन
संवादे "परुषोत्तम योगो" नाम पञ्चदशोऽध्यायः।

ॐ तत् सत् एश्शि श्रीमद् भगवद्गीतांतूले
उपनिषत्तांतूले ब्रह्मविध्यांतूले योगशास्त्रांतूले
श्रीकृष्णार्जुन संवादांतूलो "पुरुषोत्तम योगु"
ह्मोल्लोलो अध्यायु पन्नेरा (१५) समाप्त्।

*****



अध्याय् - १६

दैवासुरसम्पद्विभागयोगु

श्री भगवानुवाच–

१. अभयं सत्त्वसंशुद्धिर्ज्ञानयोगव्यवस्थितिः ।
दानं दमश्च यज्ञश्च स्वाध्यायस्तप आर्जवम् ।

२. अहिंसा सत्यमक्रोधस्त्यागः शान्तिरपैशुनम् ।
दया भूतेष्वलोलुप्त्वं मार्द्वं ह्रीरचापलम् ।

३. तेजः क्षमा धृतिः शौचमद्रोहो नातिमानिता ।
भवन्ति सम्पदं दैवीमभिजातस्य भारत !

देवान् सङ्गीने– हे भारत, भय्य्नत्तिल्लवस्थ, सत्वसंशुद्धि (मन्नाशुद्धि), ज्ञानयोगनिष्ठ, दान्, द्म्, यज्ञ्, वेदाद्ध्ययन्, तपस्स्, आर्जव्, अहिंस, सत्य्, कोपुनत्तिल्लवस्थ, त्यागु, शान्ति, परनिन्दावर्ज्न्, भूतांतु द्य, पिशुक्क्-(लोभ्) नत्तिल्लवस्थ, मार्द्दव् (परुष् जावुनत्तिल्लवस्थ), नीच् जावुनऽस्सिल्ले कैरि अनुष्ठान् कोर्चातु लज्ज, चापल्य हीन्, तेजस्स्, क्षम, धैर्य्, शुचित्व् द्रोहु नत्तिल्लवस्थ, अहंभावु नत्तिन्ने ए सर्वै दैवीसंबत्तान् (दैवी प्रकृति जावुनु) जनन् घेत्तल्लेक अस्त्ने।

४. दम्भो दर्पोऽभिमानश्च क्रोधः पारुष्यमेव च ।
अज्ञानं चाभिजातस्य पार्थ! सम्पदमासुरीम् ।

धन् धान्य् संबत्त् अस्स् ह्मल्लेले गर्व् (होड्कायि) अभिमानु क्रोध् पारुष्य् अज्ञान् ये सर्वे हे पार्था, आसुरी संबत्तान् जनन् घेत्तल्लेंक् अस्त्ने।

५. दैवी सम्पद्विमोक्षाय निबन्धायासुरी मता ।
मा शुचः सम्पदं दैवीमभिजातोऽसि पाण्डव ।

दैवीक् जावुनऽसिल्ले संबत्त् मोक्षु मेळूक् प्रयोजन् (उपकारू) कोर्चे त्। आसुरी संबत्त् कारण् तक्क बन्धन् जत्ता। हे पाण्डव, तू दुखु जावुनक्का। तू दैवी संबत्तान् जनन् घेत्तल्लोचित्।

६. द्वौ भूतसर्गो लोकेऽस्मिन्दैव आसुर एव च ।
दैवो विस्तरशः प्रोक्त आसुरं पार्थ! मे शृणु ।

हे पार्थ, दैव् आसुर् एश्शि दोनि विध् भूतासृष्टीयो ये लोकांतस्स्। दैवीक् जावुनऽस्सिल्ले सृष्टि हांव् होड् विवरान् संङ्गून् दिल्ले। अनीक् आसुर सृष्टी पसूनु सङ्ग्न् ऐक्कुका।

७. प्रवृत्तिं च निवृत्तिं च जना न विदुरासुराः ।
न शौचं नापि चाचारो न सत्यं तेषु विद्यते ।

धर्मूयि अधर्मूयि आसुरज्न् मन्नांक्र्नायि। तंक शुद्धि (शैच्) सदाचार्, सत्य् यें कांयि पुणै नयींचि।

८. असत्यमप्रतिष्ठं ते जगदाहुरनीश्वरम् ।
अपरस्परसम्भूतं किमन्यत्कामहैतुकम् ।

यो लोकु (ये आसुर जन्) सत्यांतु अधिष्ठित् न्यि, प्रतिष्ठनत्तिल्ले त् (निराधार्–आधारुजावुनु कोण् नत्तिल्ले त्)। तंक देवूयिन। काम हेतु जावुनु परस्पर मिलनान् जल्लेल् त् ते। नंत्न कांयि ना।

९. एतां दृष्टिमवष्टभ्य नष्टात्मानोऽल्पबुद्धयः ।
प्रभवन्त्युग्रकर्माणः क्षयाय जगतोऽहिताः ।

ये दृष्टीक्यि उल्लोंचे उत्तराक्यि दोर्नु (ये दोलेनि दिक्कूएंचेयि कन्नानि अय्क्कू एंचेयि मात्र् त् शरि ह्मोण् मन्नांकोर्नु) आत्मावुनत्तिन्नीयि अल्पबुद्धीयि जावुनऽस्सिन्नि तन्नि (आसुर प्रकृतीयो) भयङ्कर् जावुनऽस्सिल्ले कर्म कोर्नु सर्व्वांक्यि अहित् कोर्नु लोकनाशकारीयो (लोकाक् नांशुकोर्चि जावुनु) जावुनु भवि जत्तायि।

१०. काममाश्रित्य दुष्पूरं दम्भमानमदान्विताः ।
मोहाद्गृहीत्वासद्ग्राहान्प्रवर्तन्तेऽशुचिव्रताः ।

कामाक् आस्त्रयुकोर्नु बल्लाव्जावुनऽस्सिल्ले दंभ्, मान् मद् (अहङगरु) अज्जान् कर्त्त्न मोहुजावुनु विवोरुनत्तिल्लेन् असत्त् जावुनऽस्सिल्ले मिथ्या

लक्ष्यांतु (अर्थु नत्तिल्ले लक्ष्यांतु) म्न्न् दोव्वोरु, अशुचि जावुनऽस्सिल्ले वृतांतु निरंतर् जावुनु तन्नि प्रवर्त्तन् कर्तायि।

११. चिन्तामपरिमेयां च प्रलयान्तामुपाश्रिताः ।
कामोपभोगपरमा एतावदिति निश्चिताः ।

१२. आशापाशशतैर्बद्धाः कामक्रोधपरायणाः ।
ईहन्ते कामभोगार्थमन्यायेनार्थसञ्चयान् ।

कामाचो अनुभवु मात्र्त् होड्लक्ष्य् ह्मोणुयि, तुत्लेंचित् ये जीवितांतुमेलूक (कोरूक्) अस्स् ह्मोणूयि अठोवुनू मरण् पर्यान् जीवितांतु नक्क जल्लेने चिन्तन् कोर्नु आशपाशंतु बद्धयि, काम क्रोध परायण्यि जावुनु तन्नि कामा अनुभवाक् जावुनु अन्याय् जावुनूयि दुड्डु कोरूक् (धन् कोरूक्–मेलूक्) आग्रहु कड्तायि (आग्रहु कर्तायि)।

१३. इदमद्य मया लब्धमिमं प्राप्स्ये मनोरथम् ।
इदमस्तीदमपि मे भविष्यति पुनर्धनम् ।

आजिमक्क ये मेल्लेलस्स्। मन्नांतूलो यो आग्रहूयि हांव् साध्य् कोर्त्तोनो। उतुलेंचि धन् मक्कस्स्। अनिक्क्यि उतुलेंचि धन्यि लग्गि मक्क जत्त्ने ह्मोणु आसुर योगुऽस्सिन्नि अठेयितायि।

१४. असौ मया हतः शत्रुर्हनिष्ये चापरानपि ।
ईश्वरोऽहमहं भोगी सिद्धोऽहं बलवान्सुखी ।

तेशत्रूक् हांव् दिंशि मर्लो। अनीक् असिल्यांक् लग्गेन् हांव् दिंशि मर्त्तोनो। हांव् देवु त्। सग्गडाचेयि चांग् फल् अनुभवु कोर्चो हांव् त्। हांव् सिद्धुत् (मनुष्याक् कोळ्का मेळ्का जल्लेने सर्वै मक्क मेळ्ळेने अस्स् ह्मोण् लेक्कुच्चो) बवबन्तूयि सुखीयि त्।

१५. आढ्योऽभिजनवानस्मि कोऽन्योऽस्ति सदृशो मया ।
यक्ष्ये दास्यामि मोदिष्य इत्यज्ञानविमोहिताः ।

१६. अनेकचित्तविभ्रान्ता मोहजालसमावृताः ।
प्रसक्ताः कामभोगेषु पतन्ति नरकेऽशुचौ ।

हांव् धनवन्तु त्, कुलीनु त्, मिज्जे समान् जावुनु वेग्गले कोणस्स्? हांव् यागु कोर्त्तोनो, दान् दित्तोनो, संतोषान् मदि जत्तोनो (संतोषान् विस्सोरु इत्तेयि-इत्तिकी जल्यारीयि कोर्त्तोनो)। एश्शि अज्ञानान् विमोहित् जावुनु असंख्य् मनोरथानि (मन्नांतु विभ्रान्ति एय्लेले जावुनु (इत्ति कोर्का ह्मोण् कोल्नत्तिन्ने) मोहजालांतु पोणु (मोहु जावुनऽस्सिल्ले बोल्लेंतु पोणु) चारीयि वटेन्यि मोहु अस्सिल्ले अवस्थेरि जावुनु काम भोगंतु बुढूनु तन्नि अशुचिमय् जावुनऽस्सिल्ले नरकांतु पोणु वत्तायि।

१७. आत्मसम्भाविताः स्तब्धा धनमानमदान्विताः ।
यजन्ते नामयज्ञैस्ते दम्भेनाविधिपूर्वकम् ।

१८. अहङ्कारं बलं दर्पं कामं क्रोधं च संश्रिताः ।
मामात्मपरदेहेषु प्रद्विषन्तोऽभ्यसूयकाः ।

आत्मप्रशंस कोर्चेयि, विनयस्वभावुनत्तिल्लेंयि, धन् अस्स् ह्मल्लेले होडकायेन् मानु गर्व, अहङ्कारू ब्ल् दर्प, काम्, क्रोध् अक्क आश्रयिजंचींयि, स्वदेहांतूयि अन्यदेहांतूयि स्थिति कोर्चे मक्क (परमात्मावाक्) कोप्पुच्चीयि, निन्द कोच्चींयि जावुनऽस्सिल्ले तन्नि अहङ्कारान्–असूयेन् नावांक् मात्र् जावुनु (दक्कोंचाक् मात्र् जावुनु) विधिप्रकारु नन्त्न यागु कर्तायि।

१९. तानहं द्विषतः क्रूरान्संसारेषु नराधमान् ।
क्षिपाम्यजस्रमशुभानासुरीष्वेव योनिषु ।

कोपु कड्चीयि, क्रूरयि, अशुभयि, नराधम्यि मनुष्यापश्शि खल्लच्चे प्रवर्त्ति कोर्चे–(बल्लाव् प्रवर्त्तिकोर्च्चि) जावुनऽसिल्ले तंक हांव् दुसरीय् आसुर् जावुनऽसिल्ले योनींतु प्रवेशन् दीवुनु संसारांतु गल्त (संसारांतु गाल्नु बोग्गोय्त)।

२०. आसुरीं योनिमापन्ना मूढा जन्मनि जन्मनि ।
मामप्राप्यैव कौन्तेय! ततो यान्त्यधमां गतिम् ।

हे कौन्तेय, ये मूढ् लोक् मक्क प्राप्य् जावुनत्तिन्ने जन्म जन्मानि आसुर योनींतु पोणु दुस्रीयि दुस्रीयि अधम् जावुनऽसिल्ले गतीक् प्राप्य् जत्तायि (तीं केदनायि बल्लाव्प्णंतूचि पड्तायि-बल्लाव्पण्चि बोग्गितायि)।

२१. त्रिविधं नरकस्येदं द्वारं नाशनमात्मनः ।
कामः क्रोधस्तथा लोभस्तस्मादेतत्त्रयं त्यजेत् ।

आत्माक्–प्राणक् नाशुकोर्चे नरकाक् तीनि द्वारस्सयि (तीनि कव्व्ड्स्सयि)। तें काम, क्रोध् लोभ् यें त्। ते पसावत् तें तिन्नीयि त्यज् कोर्क (तें जीवितांतु काडूक् प्ण–काडूक् पाणा)।

२२. एतैर्विमुक्तः कौन्तेय! तमोद्वारैस्त्रिभिर्नरः ।
आचरत्यात्मनः श्रेयस्ततो याति परां गतिम् ।

हे कौन्तेय ये तीनि तमो द्वारांतु धक्कून् विमुक्तु जंचो मनीषु आत्म श्रेयसाक् प्रयत्नु कर्त। तज्जे उपरांते परम् जावुनऽस्सिल्लि (होडि)चांगि ग्तीयि मेळ्ता।

२३. यः शास्त्रविधिमुत्सृज्य वर्तते कामकारतः ।
न स सिद्धिमवाप्नोति न सुखं न परां गतिम् ।

कोणकी एक्कोलो शास्त्रविधि कैंरिजावुनु काणत्तिल्ले (तक् तग्गेले मन्नांतु दिस्सल्ले मतिरीन् कोर्नु) दीसु कड्त– तक्क सिद्धि, सुख्, होड् ग्ति (परम् जावुनऽसिल्लि ग्ति) यें कांयि मेळ्ना।

२४. तस्माच्छास्त्रं प्रमाणं ते कार्याकार्यव्यवस्थितौ ।
ज्ञात्वा शास्त्रविधानोक्तं कर्म कर्तुमिहार्हसि ।

तें जल्लेल्पसावत्, कैंरि इत्ते कैरि नत्तिन्नित्ते ह्मोणु निर्णयु कोर्चे विषयांतु शास्त्र् मन्नांकोर्नु तक्क प्रमाण् जावुनु तूं प्रवर्तन् कोर्क। (शास्त्रविधि) शास्त्रांतु सङ्गुचे अनुसरण् कोर्नु प्रवर्तन् कोरुका (कर्मानुष्ठान्यि कोरुका ह्मोण् अर्थु)।

ॐ तत्सदिति श्रीमद्भगवद्गीतासूपनिषद्सु
ब्रह्मविध्यायां योगशास्त्रे श्रीकृष्णार्जुन
संवादे दैवासुरसम्पद्विभागयोगो नाम
षोडशोऽध्यायः।

ॐ तत् सत् एश्शि श्रीमद् भगवद्गीतांतूले
उपनिषतांतूले ब्रहमविध्यांतूले योगशास्त्रांतूले
श्रीकृष्णार्जुन संवादांतूले "दैवासुरसम्पद्विभागयोगु"
ह्मोल्लोलो अध्यायु सोला (१६) समाप्त्।

*****



अध्याय् - १७

श्रद्धात्रयविभागयोगु

अर्जुन उवाच–

१. ये शास्त्रविधिमुत्सृज्य यजन्ते श्रद्धयान्विताः ।
तेषां निष्ठा तु का कृषण! सत्त्वमाहो रजस्तमः ।

अर्जुनान् निंङ्गीने– हे कृष्ण शास्त्रविधि (शास्त्रांतु सङ्गुचे मतिरीन्) नन्त्ने जल्यारीयि श्रद्धेनेंचि पूजन् कर्त्तल्याले निष्ठ (स्वभावु) इत्ति की? सत्व् रजस्स् की तमस्स्? हंतु खंचे की?

श्री भगवानुवाच–

२. त्रिविधा भवति श्रद्धा देहिनां सा स्वभावजा ।
सात्त्विकी राजसी चैव तामसी चेति तां शृणु ।

देवान् सङ्गीने–सात्विकी, रजसी, तामसी एश्शि तीनि विधान् देहियांक् (मनुष्यांक्) स्व स्वभावाक् अनुरूप् जावुनु श्रद्ध जावुयात् तज्जे पस्सून् सङ्ग्न् मन्नांक्रि ऐक्कुका।

३. सत्त्वानुरूपा सर्वस्य श्रद्धा भवति भारत ।
श्रद्धामयोऽयं पुरुषो यो यच्छ्रद्धः स एव सः ।

हे भारत, स्वभावाक् अनुरूप् जावुनु त् सर्वांक्यि श्रद्ध जाव्प्। श्रद्धामयु (स्ग्ग् वेलारीयि श्रद्धेन्चि रब्बुचो) त् यो पुरुषु (मनीषु), कोण् खंचे विधानऽसिल्ले श्रद्धेन् बेस्स्तवे तो तेचि प्रकारि जत्ता (तक्क तेंचि गुण् स्वभावु मेळ्ता)।

४. यजन्ते सात्त्विका देवान्यक्षरक्षांसि राजसाः ।
प्रेतान्भूतगणांश्चान्ये यजन्ते तामसा जनाः ।

सात्विक् जावुनऽस्सिल्ले मनीष् देवांक् त् पूजन् कर्तायि। राजस् स्वभावस्सिन्नि यक्षांक्यि राक्षसांक्यि पूजन् कर्तायि। तामस्स् गुणंचि प्रेतांक्यि भूतगणंक्यि त् पूजन् कर्तायि।

५. अशास्त्रविहितं घोरं तप्यन्ते ये तपो जनाः ।
दम्भाहंकारसंयुक्ताः कामरागबलान्विताः ।
६. कर्शयन्तः शरीरस्थं भूतग्राममचेतसः ।
मां चैवान्तःशरीरस्थं तान्विद्ध्यासुरनिश्चयान् ।

डम्ब् (होड्कायो) अहङगरु अज्जान् (ये सहित्) काम् राग् अज्जे ब्लान् आकृष्ट् जावुनु अपक्व् जावुनऽस्सिल्ले खंचे ज्न् शरीरांतु स्थिति कोर्चे पञ्चभूतांक्यि शरीरांन्तर्भागांतु (मन्नांतु) स्थिति कोर्चे मक्कायि दुःख दीवुनु शास्त्र विहित् नंत्नस्सिन्ने घोर तपस्स् कर्त्तायि, तन्नि आसुर जावुनऽसिल्ले निश्चयान् (संङ्गल्पान्स्सिल्ले) ह्मोण् मन्नां कोरुका।

७. आहारस्त्वपि सर्वस्य त्रिविधो भवति प्रियः ।
यज्ञस्तपस्तथा दानं तेषां भेदमिमं शृणु ।

तीनि विधानि (प्रकारानि) असिल्लो आहारु त् सर्वांक्यि प्रिय्। यज्ञय् तपस्स्यि, दान्यि एश्शि तीनि विध्चित्। तें क्शि सग्ग् ह्मोण् सङ्ग्न् ऐक्कुका।

८. आयुः सत्त्वबलारोग्यसुखप्रीतिविवर्धनाः ।
रस्याः स्निग्धाः स्थिरा हृद्या आहाराः सात्त्विकप्रियाः ।

आयुस्स्, सत्व् (अन्तःशक्ति-मन्नांतूले दैढर्य्-शक्ति) ब्ल् (शरीरा ब्ल्) आरोग्य्, सुख् प्रीति, अक्क सग्गयि वर्द्धन् कोर्चोयि रसयुक्त्यि स्निग्द्धयि (तेल् तूप् मय् अस्सिन्नेयि) सारवत्त्यि (प्रयोजन्स्सिन्नेयि) हृध्य्य् जावुनऽस्सिलाहारु त् "सात्विक्" स्वभावस्सिल्ले जनांक् प्रिय्।

९. कट्वम्ललवणात्युष्णतीक्ष्णरूक्षविदाहिनः ।
आहारा राजसस्येष्टा दुःखशोकामयप्रदाः ।

जैत्ते तिक्साणि, अंबुसाणि, मिट्साणि (उन्साणि) ये रस् अस्सिन्नेयि तीक्ष्ण् रूक्ष् (उद्दाक्नत्तिन्ने तोण्ड् सुक्कुच्चे अवस्थे मतिरीन्) तान् ये स्ग्ग् कोर्चेयि जावुनऽस्सिल्लाहार– साध्न् "राजस्स्" स्वभावस्सिल्लेंक् इष्ट् त् अस्त्ने। तें दुख्, रोगु शेक् एश्शि अस्सिल्लेक् उद्भवु कोर्चेयि त्।

१०. यातयामं गतरसं पूति पर्युषितं च यत् ।
उच्छिष्टमपि चामेध्यं भोजनं तामसप्रियम् ।

तर्य्यां कोर्नु एक्याम् जल्लेलेयि, सहज् जावुनऽसिल्ले (तक्क स्वाभाविक् जावुनु असुचे स्वभावु) स्वादु नशिं जल्लेनेयि, दुर्गन्ध्ऽस्सिन्नेयि पर्ण्णे जल्लेनेयि (बेल्शल्लेयि) उच्चिष्ट्यि (एक्लेन् खेल्लेल् बाक्कि (शिष्ट्) उष्टे ह्मोणूयि सङ्गतायि), अशुद्धयि जावुनऽस्सिल्लो आहारु त् "तामस्साक्" प्रिय्।

११. अफलाकाङिक्षभिर्यज्ञो विधिदृष्टो य इज्यते ।
यष्टव्यमेवेति मनः समाधाय स सात्त्विकः ।

यागु अनुष्ठान् क्रप् (यज्ञांतु ये कर्म कोरुका जल्लेने) कर्तव्य त् ह्मोणु मन्नान् निश्चयु कोर्नु फलाक् आग्रहु कोर्नत्तिन्ने विधिप्रकारान् अनुष्ठान् कोर्चे यज्ञ् त् सत्विक यज्ञ् ह्मोण् सङ्गुचे।

१२. अभिसंधाय तु फलं दम्भार्थमपि चैव यत् ।
इज्यते भरतश्रेष्ठ तं यज्ञं विद्धि राजसम् ।

हे भारतकुलश्रेष्ठ, फलाक् उद्देशुकोर्नूयि वेगलेंक् दक्कोंचाक् जावुनूयि कोर्चे यज्ञ् राजस्स् त्।

१३. विधिहीनमसृष्टान्नं मन्त्रहीनमदक्षिणम् ।
श्रद्धाविरहितं यज्ञं तामसं परिचक्षते ।

शास्त्रविधि (शास्त्रांतु सङ्गूचे) अनुसरण् (अनुष्टान्) कोर्नत्तिन्नेयि, जेव्व्ण् दीवुनत्तिन्नेयि, मन्त्रोच्चारण् नत्तिन्नेयि, दक्षिण दीवुनत्तिन्नेयि, श्रद्धनत्तिल्ले कोर्चे यज्ञाक् तामसयज्ञ् ह्मोण् सङ्गतायि।

१४. देवद्विजगुरुप्राज्ञपूजनं शौचमार्जवम् ।
ब्रह्मचर्यमहिंसा च शारीरं तप उच्यते ।

देव् द्विज् गुरु, ज्ञानि हङ्गेले सग्ग् पूजन्, शैच् आर्ज्जव् ब्रह्मचर्य् अहिंस (हिंसकोर्नत्तिल्लवस्थ) ये सर्वै त् देहान् कोर्चे तपस्स् ह्मोणु सङ्गुचे।

१५. अनुद्वेगकरं वाक्यं सत्यं प्रियहितं च यत् ।
स्वाध्यायाभ्यसनं चैव वाङ्मयं तप उच्यते ।

वेगलेक् कष्ट् (उद्वेग् बुद्धिमुट्टु, प्रयासु) जावुनत्तिल्लेयि, सत्यि, प्रिय्यि हितकर्यि जावुनस्सिल्ले उत्तर्यि वेदाशास्त्रा अभ्यासूयि (वेदशास्त्र् सिक्क्प्यि मन्नांक्र्प्यि) "वाङ्मय तपस्स्" (वाचिक्-उत्तरानस्सिन्ने तपस्) ह्मोण् सङ्गतायि।

१६. मनः प्रसादः सौम्यत्वं मौनमात्मविनिग्रहः ।
भावसंशुद्धिरित्येतत्तपो मानसमुच्यते ।

मनप्रसाद् (मन्नासंतोषु) सौम्य भाव् मित् जावुनऽसिल्ले वर्त्तमान् (उत्तर्) आत्मसंयम्, भावशुद्धि (स्वभावशुद्धि) इतुलेंचित् मन्नांधक्कूनुऽस्सिन्ने "तपस्स्" ह्मोण् सङ्गुच्चे।

१७. श्रद्धया परया तप्तं तपस्तत्त्रिविधं नरैः ।
अफलाकाङ्क्षिभिर्युक्तैः सात्विकं परिचक्षते ।

अतीश्रद्धेन् फ्ल् आग्रोहु नत्तिल्ले योगयुक्त् जावुनऽस्सिल्ले जनानि अनुष्ठान् कोर्चे ते तीनिविध्जावुनऽसिल्ले (शरीरान्, उत्तरान्, म्न्नान्) तपस्स्यि सात्विक ह्मोण् सङ्गतायि।

१८. सत्कारमानपूजार्थं तपो दम्भेन चैव यत् ।
क्रियते तदिह प्रोक्तं राजसं चलमध्रुवम् ।

सल्क्कारु, बहुमानु, पूज ये सग्गय् मेलूक्यि वेगलेंक् (जनांक्) दक्कोंचाक्यि जावुनु होड्कायेन्यिकोर्च्चे तपस्स् "राजस्स्" त्। तें स्थिर्न्यि। अनिश्चित्यि त्।

१९. मूढग्राहेणात्मनो यत्पीडया क्रियते तपः ।
परस्योत्सादनार्थं वा तत्तामसमुदाहृतम् ।

दुराग्रहान् (बुद्धिनत्तिन्ने–चांग् प्रकारि मन्नांकोरूक् कोल्नत्तिन्ने) स्वन्त् म्न्नाक् (तग्गेलेचि) अत्यन्त् पीढ (दुख्) दीवुनु जावो वेगलेंक् नाशु कोरूक् जावो अनुष्टान् कोर्चे तपस्स् तामसिक् जावुनऽसिल्ले तपस्स् त्। (स्वय्

जावो वेगलेंक् जावो नाशु कोर्चे तपस्स् तामसिक् जावुनऽसिल्ले तपस्स् ह्मोण् अर्थु)।

२०. दातव्यमिति यद्दानं दीयतेऽनुपकारिणे ।
देशे काले च पात्रे च तद्दानं सात्त्विकं स्मृतम् ।

दान् कोर्काजल्लेने कर्त्तव्य त् ह्मल्लेले निष्ठेन् उपकारु आग्रहु कोर्नत्तिन्ने तें दान् मेलूक् योग्य् जावुनऽस्सिल्लेक् योग्य् जावुनऽस्सिल्ले देशंतु दोव्वोर्नु जांकाजल्लेल् वेलारि (समयाक्) दिंचे दान् 'सात्विक् त्'।

२१. यत्तु प्रत्युपकारार्थं फलमुद्दिश्य वा पुनः ।
दीयते च परिक्लिष्टं तद्दानं राजसं स्मृतम् ।

प्रत्युपकार् प्रतीक्ष कोर्नुजावो फल्अठोवुनु जावो (इत्तिकी जल्यारीयि स्वार्थ लाभाक्) क्लेशन् (मन्न् नत्तिल्ले मन्नान्) दिंचे दान् राजस् त्।

२२. अदेशकाले यद्दानमपात्रेभ्यश्च दीयते ।
असत्कृतमवज्ञातं तत्तामसमुदाहृतम् ।

अयोग्य् जावुनऽस्सिल्ले देशंतूयि वेलारीयि, योग्य्न्यि जल्लेले जनाक् सल्क्कारु कोर्नत्तिन्नेयि (बहुमानु दीवुनत्तिन्नेयि) कोप्पान् (अवज्ञेन्) कोर्चे दान् तामस् ह्मोण् सङ्गतायि।

२३. ॐ तत्सदिति निर्देशो ब्रह्मणस्त्रिविधः स्मृतः ।
ब्राह्मणास्तेन वेदाश्च यज्ञाश्च विहिताः पुरा ।

ॐ तत्सत् ह्मोणु ब्रह्माक् तीनि विध् जावुनु संज्ञ सङ्गतायि। ब्रह्मान् त् जैते काळ् मुर्धम् ब्राह्मणंक्यि (ब्रह्मज्ञान्ऽस्सिल्लेंक्यि) वेदूयि यज्ञयि सृष्टि केल्लेने।

२४. तस्मादोमित्युदाहृत्य यज्ञदानतपःक्रियाः ।
प्रवर्तन्ते विधानोक्ताः सततं ब्रह्मवादिनाम् ।

तें दुक्कून् (ते पसावत्) ॐ ह्मोणु उच्चारण् कोर्नु ब्रह्मवादीयो (वेदु कल्त्तलिं) विहित् जावुनऽसिल्ले यज्ञ, दान्, तपस्स्, यें क्रिय सर्वै सर्वदा (सग्ग् वेलारीयि) अनुष्ठान् कर्तायि।

२५. तदित्यनभिसंधाय फलं यज्ञतपः क्रियाः ।
दानक्रियाश्च विविधाः क्रियन्ते मोक्षकाङ्क्षिभिः ।

'तत्' ह्मोण् उच्चारण् कोर्नु (संङ्गूनु) मोक्षु मेळूक् आग्रहु अस्सिल्लिं, फलांतु आग्रहु नत्तिन्ने विविध् जावुनऽसिन्ने यज्ञ्यि, तपस्स्यि दान्यि कर्तायि।

२६. सद्भावे साधुभावे च सदित्येतत्प्रयुज्यते ।
प्रशस्ते कर्मणि तथा सच्छब्दः पार्थ! युज्यते ।

हे पार्थ; "अस्सिल्ले" ह्मल्लेले अर्थांतूयि, 'शुभ्' ह्मल्लेले अर्थांतूयि 'सत्' ह्मोल्लोलो शब्दु व्यवहारु कर्त (केदनायिऽस्स्)। तश्शि प्रशस्त् जावुनऽस्सिल्ले कर्मांतूयि 'सत्' ह्मोल्लोलो शब्दूचि प्रयोगु कर्त्तायि।

२७. यज्ञे तपसि दाने च स्थितिः सदिति चोच्यते ।
कर्म चैव तदर्थीयं सदित्येवाभिधीयते ।

यज्ञांतूयि, तपस्सांतूयि, दानांतूयिऽस्सिल्लि स्थिति (स्थिर् जावुनऽसिल्ले भाव्) सत् ह्मोणु जाण् जतायि। तक्क (यज्ञादींक्) अठोवुनु अस्सिल्ले कर्मयि 'सत्' ह्मोणूचि सङ्गतायि।

२८. अश्रद्धया हुतं दत्तं तपस्तप्तं कृतं च यत् ।
असदित्युच्यते पार्थ! न च तत्प्रेत्य नो इह ।

श्रद्ध नत्तिन्ने कोर्च्चो होमु, दान् तपस्स् वेग्ग्लि सर्व प्रवृत्तीयि "असत्" ह्मोण् जाण् जतायि (संङ्गतायि) हे पार्था तश्शिऽस्सिल्ले प्रवर्त्तीन् इहलोकांतु जावो परलोकांतु जावो प्रयोजनु ना ह्मोण् मन्नांक्रि।

ॐ तत् सदिति श्रीमद् भगवद्गीतासूपनिषत्सु
ब्रह्मविध्यायां योगशास्त्रे श्रीकृष्णार्जुन संवादे
"श्रद्धात्रयविभाग योगो" नाम सप्तदशोऽध्यायः।

ॐ तत् सत् एश्शि श्रीमद् भगवद्गीतांतूले
उपनिषत्तांतूले, ब्रह्मविध्यांतूले योगशास्त्रांतूले
श्रीकृष्णार्जुन संवादांतूले "श्रद्धात्रयविभागयोगु"
ह्मोल्लोलो अध्यायु स्त्तेरा (१७) समाप्त्।

*****

अध्याय् - १८

मोक्ष संन्यास योगु

अर्जुन उवाच–

१. संन्यासस्य महाबाहो तत्त्वमिच्छामि वेदितुम् ।
त्यागस्य च हृषीकेश पृथक्केशिनिषूदन !

अर्जुनान् देवालाग्गि निंङ्गीने–हे महाबाहो, हृषीकेश, केशिनिषूदन! सन्यासाचेयि, त्यागचेयि तत्व् प्रत्येक् जावुनु (विवेचन् कोर्नु–विशद्जावुनु) जाण्जांका ह्मोण् हांव् आग्रहु कर्ता।

श्री भगवानुवाच–

२. काम्यानां कर्मणां न्यासं संन्यासं कवयो विदुः ।
सर्वकर्मफलत्यागं प्राहुस्त्यागं विचक्षणाः ।

देवान् सङ्गीने-

काम्य् जावुनऽसिन्ने (होड् इष्ट् जावुनसिन्ने कोर्काजलेनें) सर्व कर्मांक्यि निश्शेष् (पुरसून्–सग्गयि) नक्क ह्मोण् दोव्वोर्चे संन्यास् ह्मोण् कवीयो (पण्डित् जावुनऽसिल्ले) मन्नांकर्तायि। विचक्षण् जावुनऽसिल्ले (ज्ञानीयो) सर्व कर्माचेयि फलाक् त्यजु कर्तायि (फलासक्तीक्-त्यजु कर्तायि-त्श्शि एकु आग्रहूचि नां क्रप्)। तक्का त्यागु ह्मोण् सङ्गतायि।

३. त्याज्यं दोषवदित्येके कर्म प्राहुर्मनीषिणः ।
यज्ञदानतपःकर्म न त्याज्यमिति चापरे ।

क्रस्स्लि प्रवृत्तीयि दोष युक्त त्। ते पसावत् त्यज् कोरुयात् जलेन् त् ह्मोणु एदीं पण्डित् संङ्गतायि। जल्यारि यज्ञ, दान् तपस्स् हज्जे अनुष्ठान् जावुनऽसिल्ले कर्म त्याज्य न्यि ह्मोणु त् वेग्गले एदीं जणलो अभिप्रायु।

४. निश्चयं शृणु मे तत्र त्यागे भरतसत्तम! ।
त्यागो हि पुरुषव्याघ्र त्रिविधः संप्रकीर्तितः ।

हे भरतश्रेष्ठ, त्यागक् संबन्ध् जावुनु मिग्गेलो निश्चयु (अभिप्रायु) ऐक्कुक। हे पुरुषवर्या त्यागु तीनि विधानि ह्मोणु प्रत्येक् जावुनु (वेगलेंजावुनु) विवेचन कोर्नु सङ्गिन्नस्स्।

५. यज्ञदानतपःकर्म न त्याज्यं कार्यमेव तत् ।
यज्ञो दानं तपश्चैव पावनानि मनीषिणाम् ।

यज्ञ् दान् तपस्स् ई प्रवृत्तीयो त्यज् कोर्का जल्लेने न्यि। अनुष्ठान् कोर्क जल्लेलेंचित्। यज्ञ्यि, दान्यि, तपस्स्यि मनुष्यांक् (विवेकींक्) मनशुद्धि कोर्चे त्।

६. एतान्यपि तु कर्माणि सङ्गं त्यक्त्वा फलानि च ।
कर्तव्यानीति मे पार्थ! निश्चितं मतमुत्तमम् ।

हे पार्था जल्यारि ते कर्मयि (यज्ञ, दान्, तपस्स्) आसक्तीयि फल्यि त्य्ज् कोर्नु जांका कोरूक् (उपेक्ष कोर्नु–नक्क ह्मोण् दोव्वोरु–आग्रहु कोर्नत्तिल्ले जांका कोरूक्) ह्मोणु त् मिग्गेलो सुनिश्चित्यि, उत्तम्यि जावुनऽसिल्लो अभिप्रायु।

७. नियतस्य तु संन्यासः कर्मणो नोपपद्यते ।
मोहात्तस्य परित्यागस्तामसः परिकीर्तितः ।

कोर्का जावुनऽसिल्ले कर्माचो 'त्यागु' युक्ति युक्त् न्यि। मोहान् क्र्त्न तक्क त्यजु कोर्चे तामस् जावुनऽसिल्लो त्यागु त् (चांगु त्यागु न्यि-बुद्धि नत्तिल्लेनि कोर्चे त्)।

८. दुःखमित्येव यत्कर्म कायक्लेशभयात्त्यजेत् ।
स कृत्वा राजसं त्यागं नैव त्यागफलं लभेत् ।

शरीर क्लेश्यि दुख्यि जत्त्ने ह्मोणऽस्सिल्ले भय्यान् कर्मांक् त्यजु कोर्चो 'राजस्' जावुनऽसिल्लो त्यागु त् अनुष्ठान् कर्ता। तक्क त्यागचे फ्ल् मेळ्चिना।

९. कार्यमित्येव यत्कर्म नियतं क्रियतेऽर्जुन ।
सङ्गं त्यक्त्वा फलं चैव स त्यागः सात्त्विको मतः ।

हे अर्जुना कर्त्तव्य्चित् ह्मल्लेले निष्ठेन् (यें हांवे कोरुका जल्लेनेचित् ह्मोणु लेक्कूनु) आसक्तीयि फल्यि प्र्गाल्नु, कोरुका जल्लेने (नियत् जावुनऽस्सिंल्ले) खंचि प्रवृत्ति केल्लेरीयि तो त्यागु (कर्म फल्त्यागु) 'सात्विक्' जावुनऽसिल्लो त्यागु त्।

१०. न द्वेष्ट्यकुशलं कर्म कुशले नानुषज्जते ।
त्यागी सत्त्वसमाविष्टो मेधावी छिन्नसंशयः ।

सात्विक त्यागीयि, सत्वगुण संबन्नूयि, संशयुनत्तिल्लोयि (कोर्काजल्लेले अनुष्ठानांतु संशयु नत्तिल्लो) जावुनऽसिल्लो ज्ञानि असुख् जावुनऽसिल्लि प्रवृत्ति कोरूक् कोपु काड्ना सुखकर जावुनसिल्ले कर्म कोर्चांतु आसक्तीयि दक्केयिना।

११. न हि देहभृता शक्यं त्यक्तुं कर्माण्यशेषतः ।
यस्तु कर्मफलत्यागी स त्यागीत्यभिधीयते ।

इत्तिकी ह्मल्लेरि देहऽस्सिल्ले जीवींक् कर्मांक् सर्वै (निश्शेष्) जावुनु प्र् धालूक् शक्य् न्यि (जंन)। जल्यारि कोणकी कर्मफलांक् त्यज् कर्त (प्र् गल्त्) तो त्यागि ह्मोण् सङ्गतायि।

१२. अनिष्टमिष्टं मिश्रं च त्रिविधं कर्मणः फलम् ।
भवत्यत्यागिनां प्रेत्य न तु संन्यासिनां क्वचित् ।

इष्ट्, अनिष्ट्, इष्टानिष्ट् (दोन्नीयि एक्क्डे जल्लेने) एश्शि तीनि विध् कर्म फल्त्यागहीनांक् मरणशेष् संभवुजत्त (मेल्त)। जलयारि सन्यासियांक् (त्यागियांक्) एक्क् कालाक्यि कर्मफल् बन्ध् जाय्ना।

१३. पञ्चैतानि महाबाहो कारणानि निबोध मे ।
सांख्ये कृतान्ते प्रोक्तानि सिद्धये सर्वकर्मणाम् ।

हे महाबाहो सर्व प्रवृत्तीचेयि सिद्धीक् सांख्य सिद्धान्तांतु ५ (पांञ्च्) कारण् सङ्गिन्नस्स्। तें इत्तिकी ह्मोणु मन्नांकोरुका (ऐक्कुका)।

१४. अधिष्ठानं तथा कर्ता करणं च पृथग्विधम् ।
विविधाश्च पृथक्चेष्टा दैवं चैवात्र पञ्चमम् ।

a. अधिष्ठान् - (जीवात्मावालो आधारु जावुनऽसिल्ले प्राणन्यि मन्नान्यि युक्त् जावुनऽसिल्ले शरीर्)।
b. कर्तावु - कर्म सर्वै अनुष्ठान् कोर्चो।
c. इन्द्रिय् - विभिन्न् जावुनऽसिल्ले करण्।
d. व्यापार् - प्रत्येक् विधानऽसिल्ले सर्व प्रवृत्तीयि।
e. देवु - दैवाधीन्।

येंत् सांख्य सिद्धांन्तांतु संङ्गिन्ने सर्व प्रवृत्तीचेयि सिद्धीकरिस्सल्ले ५ (पांञ्च्) कारण्।

१५. शरीरवाङ्मनोभिर्यत्कर्म प्रारभते नरः ।
न्याय्यं वा विपरीतं वा पञ्चैते तस्य हेतवः ।

शरीर् उत्त्र्, म्न्न् हज्जान् म्नीषु–न्यायु–अन्यायु जावुनऽस्सिल्ले क्स्स्ले प्रवृत्ति केल्यारीयि तज्जे हेतु (कारण् सर्वै) ये पाञ्चेयि त् (शरीर्, कर्तावु, इन्द्रिय्, व्यापार्, देवु ये त् ते)।

१६. तत्रैवं सति कर्तारमात्मानं केवलं तु यः ।
पश्यत्यकृतबुद्धित्वान्न स पश्यति दुर्मतिः ।

ये त्श्शियस्सिल्ले वेलारि (खंचे कर्माक्यि मुक्कारि सङ्गिल्ले ५ (पाञ्च) ते कारण् ह्मोणसिल्ले वेलारि) बुद्धि संस्काराचे शून्यतेन् (संस्कारु नत्तिल्लेन्) कोणकी केवलु जावुनऽसिल्ले आत्मावाक् कर्तावु जावुनु (कोरोंचो जावुनु) दर्शन् कर्ता, तो दुर्बुद्धि शरि जावुनु दर्शन् क्र्ना।

१७. यस्य नाहंकृतो भावो बुद्धिर्यस्य न लिप्यते ।
हत्वापि स इमाँल्लोकान्न हन्ति न निबध्यते ।

कोणकी तग्गेलि प्रवर्ति क्र्त जल्यारीयि हांव् ह्मोल्लोलो अहङ्गारु नत्तिन्नेयि, एक्कांतूयि आसक्ति नत्तिन्ने बुद्धियस्सिल्लोयि जत्तवे तो ये लोकांक् (जनांक्) हनन् कोर्च्चे जावुनु लोकद्रष्टींतु दिक्कू एयलेरीयि तो हनन् क्र्न। तज्जे फलान् (हनन् केल्लेले निमित्तान्) तो बद्धूयि जायिना।

१८. ज्ञानं ज्ञेयं परिज्ञाता त्रिविधा कर्मचोदना ।
करणं कर्म कर्तेति त्रिविधः कर्मसंग्रहः ।

ज्ञान् ज्ञेय् (ज्ञान विषयू) ज्ञातावु एश्शि तीनि विध् त् कर्म कोरूकस्सिन्ने हेतु (प्रेरण-Inspiration)। करण् (कोर्काजल्लेने) कर्म (प्रवृत्ति); कर्तावु (कोर्काजल्लोलो) ये तीनि विध् त् कर्माक् (कर्म कोरूक्) आश्रय् जावुनऽस्सिल्ले कैरिं।

१९. ज्ञानं कर्म च कर्ता च त्रिधैव गुणभेदतः ।
प्रोच्यते गुणसंख्याने यथावच्छृणु तान्यपि ।

ज्ञान्, कर्म, कर्तावु (कोर्च्चो) इत्यादीक्यि (सत्वादि) गुणंचे भावभेदु प्रकारि सांख्य शास्त्रांतु तीनि विथानि जावुनूचि सङ्गिन्नस्स्। तेवेयि श्रद्धेन्ऽय्क्कुका।

२०. सर्वभूतेषु येनैकं भावमव्ययमीक्षते ।
अविभक्तं विभक्तेषु तज्ज्ञानं विद्धि सात्त्विकम् ।

वेग् वेगले जावुनु दिक्कू एंचे सर्व जीवजालांतूयि अव्यय्यि, अविभक्त्यि जावुनऽसिल्ले (दिक्कू एावुनत्तिन्नेयि, जल्यारि वेग्गले कोर्नु रब्बोंचाक् जावुनत्तिन्नेयि) एक्भाव् खंचेकी ज्ञानान् दिक्कूएत्त तक्क सात्विक् जावुनऽसिल्ले ज्ञान् ह्मोण् मन्नांकोरुका।

२१. प्रथक्त्वेन तु यज्ज्ञानं नानाभावान्पृथग्विधान् ।
वेत्ति सर्वेषु भूतेषु तज्ज्ञानं विद्धि राजसम् ।

खंचेकी ज्ञानान् सर्व जीवजालांतूयि विविध् जावुनऽस्सिल्ले भाव् (नानाभाव्-नानात्व) दिक्क्त ते ज्ञान् राजस्स् ह्मोण् मन्नांकोर्का।

२२. यत्तु कृत्स्नवदेकस्मिन्कार्ये सक्तमहैतुकम् ।
अतत्त्वार्थवदल्पं च तत्तामसमुदाहृतम् ।

एक्कैरेंतु तेंचित् संपूर्ण ह्मोणु भ्रमिजावुनु आसक्त् जंचेयि, युक्तिविरुद्ध्यि (युक्तीक् योजिजावुनत्तिन्नेयि) सत्यविरुद्ध्यि, क्षुद्र्यि जावुनऽसिल्ले ज्ञान् खंचेकी तेंत् तामस्स् जावुनऽस्सिल्ले ज्ञान्।

२३. नियतं सङ्गरहितमरागद्वेषतः कृतम् ।
अफलप्रेप्सुना कर्म यत्तत्सात्त्विकमुच्यते ।

फलासक्ति नत्तिल्ल्यान् (कोर्चे कर्माचे फल् मेळ्का ह्मोण् आग्रहु कोर्नात्तिल्लो कोणकी तो) सङ्गरहित् जावुनूयि (द्रढजावुनऽस्सिल्ले मन्नान्) रागद्वेष् नत्तिन्नेयि कोर्चे नियत् (नियन्त्रित्) जावुनऽस्सिल्लि प्रवृत्ति खंचेकी तें 'सात्विक्' जावुनऽस्सिल्ले 'कर्म' ह्मोण् सङ्गतायि।

२४. यत्तु कामेप्सुना कर्म साहंकारेण वा पुनः ।
क्रियते बहुलायासं तद्राजसमुदाहृतम् ।

कर्म फलांतु आग्रहु, अहंकारु ये अस्सिल्ले व्यक्तीन् अत्यन्त प्रयासान् कोर्च्चे कर्म् "राजस्स् कर्म्" ह्मोण् सङ्गतायि।

२५. अनुबन्धं क्षयं हिंसामनवेक्ष्य च पौरुषम् ।
मोहादारभ्यते कर्म यत्तत्तामसमुच्यते ।

भावि फलाक्यि, नाशक्यि, परहिंसाक्यि, पौरुषाक्यि लेक्कूनत्तिन्ने केवल् मोहान् आरंभु कोर्च्चे कर्म् "तामस्स् कर्म्" ह्मोणु सङ्ग्तायि।

२६. मुक्तसङ्गोऽनहंवादी धृत्युत्साहसमन्वितः ।
सिद्ध्यसिद्ध्योर्निर्विकारः कर्ता सात्त्विक उच्यते ।

आग्रहूयि अहम्भावूयि नत्तिल्लोयि धैर्य्, उत्साहु ये सर्वैअस्सिल्लोयि फल्लाभाचे सिद्धींतूयि असिद्धींतूयि (कर्म फल् लाभान् मेल्लेरीयि नाजल्यारीयि) निर्विकारु जावुनऽस्सिल्लो मनीषु त् सात्त्विक कर्तावु।

२७. रागी कर्मफलप्रेप्सुर्लुब्धो हिंसात्मकोऽशुचिः ।
हर्षशोकान्वितः कर्ता राजसः परिकीर्तितः ।

बायिल्, पुत्रु आदींतु सर्वै अमित् रागु (तात्पर्य) अस्सिल्लोयि, कर्मफलांतु आग्रहूयि, लुब्दूयि, वेगलेले धनांतु (स्वत्तांतु) आग्रहु अस्सिल्लोयि वेगलेंक् पीढदिंचोयि, शुचित्व्नत्तिल्लोयि, लाभु मेल्लाफडेन् होड् संतोषस्सिल्लोयि,

मेल्नत्तिन्ने जाय्नाफडेन् शेक् (सङकड्) दक्कोंचोयि जावुनऽसिल्लो कर्त्तावु (कर्म कोच्चों) "राजस्स् कर्त्तावु" ह्मोण् (मनुष्याक्) कीर्त्तिमेल्लिया।

२८. अयुक्तः प्राकृतः स्तब्धः शठोऽनैष्कृतिकोऽलसः ।
विषादी दीर्घसूत्री च कर्ता तामस उच्यते ।

प्रवृत्तींतु श्रद्धनत्तिल्लोयि, चांगिबुद्धि नत्तिल्लोयि, विनय् नत्तिल्लोयि कोपूयि निर्बन्ध्यि दक्कोंचोयि प्रवृत्तिकोरूक् अल्सायि अस्सिल्लोयि, (अलसूयि), शेकशीलूयि, दीर्घसूत्रीयि (सर्वै मग्गीरीक् दोव्वोच्चोंयि) जावुनऽसिल्लो मनीषुत् तामस्स् जावुनऽसिल्लो कर्तावु।

२९. बुद्धेर्भेदं धृतेश्चैव गुणतस्त्रिविधं शृणु ।
प्रोच्यमानमशेषेण प्रथक्त्वेन धनञ्जय ।

हे धनञ्जय बुद्धीचेयि धृतीचेयि, मनोधैर्याचेयि (सात्विकादि) गुणनुसरण् जावुनु तीनिविध् जावुनऽसिल्ले भेदाक् प्रत्येक् जावुनूयि (निशेष् जावुनूयि) पूर्ण् जावुनूयि हांव् तुक्क सङ्गून्दीन् ऐक्कुका।

३०. प्रवृत्तिं च निवृत्तिं च कार्याकार्ये भयाभये ।
बन्धं मोक्षं च या वेत्ति बुद्धिः सा पार्थ! सात्त्विकी ।

हे पार्था, प्रवृत्तीक्यि निवृत्तीक्यि (धर्माक्यि अधर्माक्यि) कार्याक्यि अकार्याक्यि (कर्तव्याक्यि–कर्तव्य नय्जल्यारीयि) भयाक्यि अभयाक्यि, बन्धाक्यि मोक्षाक्यि खंचेकी (कोणकी) मन्नांकर्त ती बुद्धित् सात्विक् जावुनऽस्सिल्लि बुद्धि।

३१. यया धर्ममधर्मं च कार्यं चाकार्यमेव च ।
अयथावत्प्रजानाति बुद्धिः सा पार्थ राजसी ।

हे पार्था; क्स्सल् की बुद्धीन् धर्माक्यि अधर्माक्यि, कैर्याक्यि कैरिं नत्तिल्लेक्यि यथार्त्थ रूपांतु नंत्न– शरिजावुनु नन्त्न मन्नांकर्त तें राजस्स् जावुनऽस्सिल्लि बुद्धि त्।

३२. अधर्मं धर्ममिति या मन्यते तमसावृता ।
सर्वार्थान्विपरीतांश्च बुद्धिः सा पार्थ तामसी ।

हे पार्थ, तमस्सान् (कल्क्कान्) आवृत् जावुनु खंचेकी बुद्धि अधर्माक् धर्म् जावुनूयि सर्वै कैर्यांतूयि विपरीत् जावुनूयि मन्नांकर्त ती बुद्धि तामस बुद्धि त्।

३३. धृत्या यया धारयते मनःप्राणेन्द्रियक्रियाः ।
योगेनाव्यभिचारिण्या धृतिः सा पार्थ सात्त्विकी ।

हे पार्था, एल्त पेल्तांतु धावुनत्तिन्ने द्रढमन्नान् खंचे की धृतीन्, शरिजावुनऽसिल्ले योगसहायान् मन्नाचेयि प्राणंचेयि, इन्द्रियांचेयि क्रियांक् (प्रवृत्तींक्) म्नीषु नियन्त्रण् कर्त, ती धृति (मनोबल्) सात्त्विक् त्।

३४. यया तु धर्मकामार्थान्धृत्या धारयतेऽर्जुन ।
प्रसङ्गेन फलाकाङ्क्षी धृतिः सा पार्थ राजसी ।

हे पार्थ, अर्जुना खंचेकी धृतीन् मनीषु धर्मार्त्थ कामाक् मन्नांकर्ता (धारण कर्ता) तंतस्सिल्ले होड् आग्रहान् फलाकांक्षि जावुनु व्त्ता। ती धृति राजस्त्।

३५. यया स्वप्नं भयं शोकं विषादं मदमेव च ।
न विमुञ्चति दुर्मेधा धृतिः सा पार्थ तामसी ।

हे पार्त्था दुर्बुद्धिऽस्सिल्लो मनीषु खंचे की धृतीन् निद्र, भय्, शोक्, विषाद्, मद् अक्क (ये) सर्वै प्र् घालना ती धृति तामस धृति त्।

३६. सुखं त्विदानीं त्रिविधं शृणु मे भरतर्षभ ।
अभ्यासाद्रमते यत्र दुःखान्तं च निगच्छति ।

३७. यत्तदग्रे विषमिव परिणामेऽमृतोपमम् ।
तत्सुखं सात्त्विकं प्रोक्तमात्मबुद्धिप्रसादजम् ।

हे भारत श्रेष्ठा, अनीक् तीनि प्रकारियस्सिल्ले सुख् इत्तिकी ह्मोण् ऐक्कुक। खंचेकी सुखांतु प्रयत्नान् रमिजाव्प्यि दुखावसानाक् प्राप्य् जाव्प्यि, खंचेक् प्रथम् जावुनु (आध्य् जावुनु) विष् मतिरीन्यि अवसानकालु जाय्नाफडेन्

अमृत तुल्य्यि जत्तायीचि तश्शि अस्सिल्या आत्मबुद्धियांले प्रसादांधक्कून्-मन्नां धक्कून् परमात्मज्ञानान् उद्भविजंचे ते सुख् त् सात्विक सुख् ह्मोण् सङ्गुचे।

३८. विषयेन्द्रियसंयोगाद्यत्तदग्रेऽमृतोपमम् ।
परिणामे विषमिव तत्सुखं राजसं स्मृतम् ।

विषयांचेयि इन्द्रियांचेयि संयोगन् खंचेकी आरंभारि अमृता मतिरीन्यि अवसानकालु जाय्नाफडेन् (परिणमारि) विषामतिरीन् दुखयि भाविजत्त तें सुख् राजस सुख् ह्मोण् सङ्गतायि।

३९. यदग्रे चानुबन्धे च सुखं मोहनमात्मनः ।
निद्रालस्यप्रमादोत्थं तत्तामसमुदाहृतम् ।

आरंभारीयि तक्क लगूनूयि बुद्धीक् मोहु जनन् कोर्चोयि, निद्रा अल्सायि प्रमाद् (मन्नाचे भ्रमु) हंतुधक्कून् उद्भवु जंचेयि सुख् तामस सुख् ह्मोण् सङ्गतायि।

४०. न तदस्ति पृथिव्यां वा दिवि देवेषु वा पुनः ।
सत्त्वं प्रकृतिजैर्मुक्तं यदेभिः स्यात्त्रिभिर्गुणैः ।

भूमींतु जावो स्वर्ग्गंतु देवाले कूटांतु जावो प्रकृतींतु धक्कून् जनन् घेंचे ये तीनि गुणांतु धक्कून् वेग्ग्ले जावुनु एक् जीव जाल्यि अस्सुन्नायीचि।

४१. ब्राह्मणक्षत्रियविशां शूद्राणां च परंतप ।
कर्माणि प्रविभक्तानि स्वभावप्रभवैर्गुणैः ।

हे परंतप ब्राह्मण् क्षत्रिय्, वैश्य्, शूद्र् हंगेलि प्रवर्त्ति सर्वै तंग तंगेले स्वभावांतु धक्कून् एंचे सत्व रजस् तमो गुणानि विभजन् केल्लेया त् (वेग वेगले केल्लेया त्)।

४२. शमो दमस्तपः शौचं क्षान्तिरार्जवमेव च ।
ज्ञानं विज्ञानमास्तिक्यं ब्रह्मकर्म स्वभावजम् ।

मनशान्ति, बाह्येन्द्रिय संयम् (इन्द्रियांक् धोरु रब्बोंचाक् अस्सिल्ले सामर्थ्य्) बाह्याभ्यन्तर शुचित्व्, क्षम, आर्ज्जव् ज्ञान् विज्ञान् आस्तिक्य् ये सर्वै त् स्वाभाविक् जावुनु ब्राह्मण कर्म्।

४३. शौर्यं तेजो धृतिर्दाक्ष्यं युद्धे चाप्यपलायनम् ।
दानमीश्वरभावश्च क्षात्रं कर्म स्वभावजम् ।

शौर्य (कोपु) तेजस्स् वेगल्यानि आक्रमण् कोरू जावुनत्तिल्ले धैर्य्; कार्य सामर्थ्य्, युद्धांतु धक्कून् मगलेन् वोच्चूनत्तिन्ने रब्ब्प्, दान्, प्रभुत्वभाव् ये सग्गयि त् क्षत्रियांले स्वभावान्ऽस्सिल्लि प्रवृत्ति (कर्म्)।

४४. कृषिगौरक्ष्यवाणिज्यं वैश्यकर्म स्वभावजम् ।
परिचर्यात्मकं कर्म शूद्रस्यापि स्वभावजम् ।

कृषि, गेरक्षण् (गैचिसेवक्र्प्) वाण्ज्यि, येंत् स्वाभाविक् जावुनऽसिल्ले वैश्य कर्म्। वेगलेंक् सेव कोर्चे त् शूद्राले स्वाभाविक् जावुनऽस्सिल्ले कर्म्।

४५. स्वे स्वे कर्मण्यभिरतः संसिद्धिं लभते नरः ।
स्वकर्मनिरतः सिद्धिं यथा विन्दति तच्छृणु ।

तग् तगेले स्वभावान् कर्मांतु द्रढनिष्ठु जावुनऽसिल्लो म्नीषु सिद्धीक् प्राप्य् जत्त (तक्क परम् सिद्धि मेल्त)। स्वकर्मांतु निरत् जावुनऽसिल्लेक् सिद्धि मेल्त क्शिश ह्मोण् हांव् सङ्गून् दीन् ऐक्कुका।

४६. यतः प्रवृत्तिर्भूतानां येन सर्वमिदं ततम् ।
स्वकर्मणा तमभ्यर्च्य सिद्धिं विन्दति मानवः ।

क्सल्यांतु धक्कून् की (खंत्यि धक्कून् की) जीवजालांले प्रवर्ति सर्वै जत्त, कस्सल्यान् की (कोण् की) ये लोकांतु सग्गलेंचि भोर्नस्स् तंक (ते देवाक्) स्वकर्मीं (प्रवर्त्तीन्) दुस्स्रीय् दुस्स्रीय् अर्च्चन् कोर्नु (पूज कोर्नु) मनीषु सिद्धीक् प्राप्य् जत्ता।

४७. श्रेयान्स्वधर्मो विगुणः परधर्मात्स्वनुष्ठितात् ।
स्वभावनियतं कर्म कुर्वन्नाप्नोति किल्बिषम् ।

स्वन्त् प्रवर्त्ति प्रयोजन् जावुनऽत्तिल्लें (विगुण्–गुण् नत्तिल्ले) जलयारीयि चांग् प्रकारि अनुष्ठान् कोर्चे वेगल्याले कर्म पश्शि श्रेष्ठ्त्। स्वभावाक् अनुसरण् जावुनऽस्सिल्लि प्रवर्त्ति देवा अठोवुनु (देवाक् अर्पण् कोर्नु) कोर्चेंक् पाप् भोग्गुका जंना।

४८. सहजं कर्म कौन्तेय सदोषमपि न त्यजेत् ।
सर्वारम्भा हि दोषेण धूमेनाग्निरिवावृताः ।

हे कौन्तेय, स्वकर्म दोष युक्त् त् जल्यारीयि तें उपेक्ष कोरूक् प्‌ण। (कोर्नत्तिन्ने रब्बूक् प्‌ण)। इत्तिकी ह्मल्लेरि सर्व प्रवर्त्तीयि अग्नीक् धुवरान् पङ्गुर्चे मतिरीन् (इत्तिजल्यारीयि) दोषान् पङ्गूरस्त्‌ने। (आवरण् कोर्नु अस्त्‌ने)।

४९. असक्तबुद्धिः सर्वत्र जितात्मा विगतस्पृहः ।
नैष्कर्म्यसिद्धिं परमां संन्यासेनाधिगच्छति ।

सर्व कैरेंतूयि आग्रहु नत्तिल्ले आत्मावाक् जयिजावुनु कर्म वासन सर्वै उपेक्ष केल्लोलो (कर्म वासन त्य्ज् केल्लोलो-सोल्लोलो) जावुनु रब्बुचो (कर्म फल्) संन्यासान् होड् नैष्कर्म सिद्धीक् प्राप्य् जत्ता।

५०. सिद्धिं प्राप्तो यथा ब्रह्म तथाप्नोति निबोध मे ।
समासेनैव कौन्तेय निष्ठा ज्ञानस्य या परा ।

हे कौन्तेय नैष्कर्म सिद्धि प्राप्य् जल्लेलेक् क्शि ब्रह्म लाभू मेल्तोलो (ब्रह्मावस्थेरि पंतोलो) ह्मल्लेल् पस्सून् स्वल्प् (सन्‌चि) जावुनु हांव् सङ्ग्त अय्क्कुक। ज्ञानाचो होड् अर्थु तें त्।

५१. बुद्ध्या विशुद्धया युक्तो धृत्यात्मानं नियम्य च ।
शब्दादीन्विषयांस्त्यक्त्वा रागद्वेषौ व्युदस्य च ।

५२. विविक्तसेवी लध्वाशी यतवाक्कायमानसः ।
ध्यानयोगपरो नित्यं वैराग्यं समुपाश्रितः ।

५३. अहङ्कारं बलं दर्पं कामं क्रोधं परिग्रहम् ।
विमुच्य निर्ममः शान्तो ब्रह्मभूयाय कल्पते ।

निष्क्कलङ्ग बुद्धीन् युक्तु जावुनु धैर्यान् आत्म–नियन्त्रण् कोर्नु शब्दादि विषयांतु श्रद्ध दीव्‌नत्तिन्ने, रागूयि द्वेषूयि प्र्घाल्नु एकान्त- परिशुद्ध (कोण्नत्तिल्ले कडे शुद्ध जावुनऽसिल्ले) स्थलारि बेस्सूनु मिताहारु खावुनु, म्न्न्, उत्त्र्, देह्, हक्क सग्गयि नियन्त्रण् कोर्नु नित्य ध्यान योगारि,

वैराग्यान्–अहङ्गारु, ब्ल्, मुष्क्, दर्प्, काम्, क्रोध्, हक्क सर्वै त्यज् कोर्नु एक्कालग्गीयि ममत नत्तिल्लोयिं, शान्तु जल्लोलोयि जावुनऽसिल्लो म्नीषु "ब्रह्म स्वरूप्" जावुनु परिणमु मेळूक् अर्हु जत्ता।

५४. ब्रह्मभूतः प्रसन्नात्मा न शोचति न काङ्क्षति ।
समः सर्वेषु भूतेषु मद्भक्तिं लभते पराम् ।

तश्शि ब्रह्म भूतु जावुनु (ते देह्–तो) प्रसन्नात्मावु जावुनु दुखयि क्र्न, कांयिपुणै आग्रहूयि क्र्न। सर्व भूतांतूयि सर्व दर्शि जावुनऽसिल्ले तक्क मिज्जेरि होडि भक्तीयि मेळ्ता।

५५. भक्त्या मामभिजानाति यावान्यश्चास्मि तत्त्वतः ।
ततो मां तत्त्वतो ज्ञात्वा विशते तदनन्तरम् ।

ते भक्तीन् हांव् कोण् ह्मोणूयि क्श्शिऽस्सिल्लो ह्मोणूयि तो तात्विक जावुनु–शरिजावुनु मन्नां कर्ता। तश्शि मक्क शरिजावुनु मन्नां केल्लेले उपरांते तो मिज्जेरीचि प्रवेशन् कर्ता।

५६. सर्वकर्माण्यपि सदा कुर्वाणो मद्व्यपाश्रयः ।
मत्प्रसादादवाप्नोति शाश्वतं पदमव्ययम् ।

स्ग्ग् वेलारीयि सर्व प्रवर्त्तीयि कोर्नु रब्बीलो जल्यारीयि मक्क आश्रयु कोर्च्चो तो मिग्गेले प्रसादान् (अनुग्रहान्) शश्वत्यि अव्यय्यि जावुनऽसिल्ले स्थानारि पंव्ता (देवाले पय्यांकडे पंव्ता)।

५७. चेतसा सर्वकर्माणि मयि संन्यस्य मत्परः ।
बुद्धियोगमुपाश्रित्य मच्चित्तः सततं भव ।

चेतसान् (भक्तीन्) सर्व प्रवर्त्तीयि (कर्मयि) मिज्जेरि समर्पण् कोर्नु, बुद्धियोगु दोर्नु (वेग्गेलो न्यि ह्मल्लेले भावान्) मिज्जेरीचि सग्ग् वेलारीयि मन्न् द्रढ् कोर्नु दोवोर्का।

५८. मच्चित्तः सर्वदुर्गाणि मत्प्रसादात्तरिष्यसि ।
अथ चेत्त्वमहंकारान्न श्रोष्यसि विनङ्क्ष्यसि ।

तश्शि तू मिज्जेरि म्न् द्रढ केल्लेरि तुग्गेले सर्व दुःख्यि मिग्गेलनुग्रहान् तारण् कोरुयात्। जल्यारि तू अहंकारान् मिग्गेलुत्त्र् अनुसरण् केल्लेना जल्यारि तुक्क नाशु पंव्तोलो।

५९. यदहङ्कारमाश्रित्य न योत्स्य इति मन्यसे ।
मिथ्यैष व्यवसायस्ते प्रकृतिस्त्वां नियोक्ष्यति ।

अहङ्कारान् हांव् युद्ध कोर्ना ह्मोणु तु विचारु कर्त्त जल्यारि तुग्गेले तें सङ्कल्प् प्रयोजोनु नत्तिल्ले व्त्त्ने। इत्तिकी ह्मल्लेरि तुग्गेले क्षत्रिय प्रकृति त्। ते प्रकारि (ते लेक्कान्–तक्कनुसरण् जावुनु) तू तुग्गेले कर्म् कोर्का जल्लेने त्।

६०. स्वभावजेन कौन्तेय निबद्धः स्वेन कर्मणा ।
कर्तुं नेच्छसि यन्मोहात्करिष्यस्यवशोऽपि तत् ।

हे कौन्तेय (कुन्तीपुत्रा) स्वाभाविक् जावुनूचि स्वकर्मान् बन्धु जावुनऽसिल्लो तू मोहान् स्वकर्म कोरूक् आग्रहु क्र्न जल्यारीयि तेंचि कर्म् तू नज्ज् नज्ज् जावुनु स्वभाव प्रेरितु जावुनूयि कोरुका जत्त्ने।

६१. ईश्वरः सर्वभूतानां हृद्देशेऽर्जुन तिष्ठति ।
भ्रामयन्सर्वभूतानि यन्त्रारूढानि मायया ।

हे अर्जुना, देवु सर्व जीवजालांचेरीयि स्वमायेन् यन्त्रान् कोर्च्चे मतिरीन् (यन्त्रारूढा मतिरीन्) विभ्रमु दीवुनु तंगेले हृदयांतु भित्तेरि रब्ब्ता।

६२. तमेव शरणं गच्छ सर्वभावेन भारत ।
तत्प्रसादात्परां शान्तिं स्थानं प्राप्स्यसि शाश्वतम् ।

हे भारत, ते देवाक्चि सर्व प्रकारेणयि (सर्व विधान्यि) सर्वात्मना तूं शराण् पांव्। तग्गेले अनुग्रहान् होडि शान्तीयि शाश्वत स्थान्यि मेळ्त्ने। (होडि शान्तीचि जावुनऽसिल्ले शाश्वतस्थान् तुक्क मेळ्त्ने)।

६३. इति ते ज्ञानमाख्यातं गुह्याद्गुह्यतरं मया ।
विमृश्यैतदशेषेण यथेच्छसि तथा कुरू ।

ये प्रकारीन् रहस्यांतु दोव्वोरु होड् रहस्य् जावुनऽसिल्ले ज्ञान् (योगतत्व) तुक्क हांव् उपदेशु कोर्नु दिल्लो। तें पूर्ण जावुनु आलोचन् (विमर्शन्) कोर्नु इत्तिकी चांग् ते लेक्कान् (इष्ट्लेक्कान्) कोरुका (कोरुयात्)।

६४. सर्वगुह्यतमं भूयः शृणु मे परमं वचः ।
इष्टोऽसि मे दृढमिति ततो वक्ष्यामि ते हितम् ।

अनिक्यि ओल्ले रहस्य जावुनऽस्सिल्ले मिग्गेले परम् वाक्यि (होड्जावुनस्सिल्ले उत्त्र्) अय्क्कुक। तू मक्क अत्यन्त (केदनायि– आदि धक्कून् अन्त्य परेन्) स्नेहु अस्सिल्लो दुक्कून् (प्रियुजावुनऽसिल्लो पसावत्) तुक्क हित् जावुनऽस्सिन्ने (जांका जल्लेने) हांव् सङ्गून् दीन्।

६५. मन्मना भव मद्भक्तो मद्याजी मां नमस्कुरु ।
मामेवैष्यसि सत्यं ते प्रतिजाने प्रियोऽसि मे ।

म्न्न् दृढ् जावुनु मिज्जेरि दोवोर्नु एकाग्र भक्तीन् मिग्गेल्बगेक्चि जावुनु यागु कोरुक। मक्क नमस्कारु कोरुक। तव्लि (ते समयारि–at that time) तू मिज्जेरि पंव्तोलो ह्मोणु हांव् सत्य जावुनु प्रतिज्ञ कड्त (प्रतिज्ञ कर्त)। इत्तिकी ह्म्ल्लेरि तू मक्क प्रियु त्।

६६. सर्वधर्मान्परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज ।
अहं त्वा सर्वपापेभ्यो मोक्षयिष्यामि मा शुचः ।

सर्व धर्म्यि त्यज कोर्नु मक्काचि तूं शराण् पांव्क। हांव् तुक्क सर्व पापांतु धक्कूनूयि मोचन् क्रीन्। तू दुखितु जावुनक्का (तूं दुखितु जांकानक्का)।

६७. इदं ते नातपस्काय नाभक्ताय कदाचन ।
न चाशुश्रूषवे वाच्यं न च मां योऽभ्यसूयति ।

तुक्क दिल्लोलो यो उपदेशु तपोनिष्ठ नत्तिल्लेक्यि, भक्ति नत्तिल्लेक्यि, अय्क्कूक् आग्रहु नत्तिल्लेक्यि (न्यि जल्यारि गुरु शुश्रूष नत्तिल्लेक्यि) मक्क निन्द कोर्चेक्यि तू एक्क् कालाक्यि (केदनायि जल्यारीयि) उपदेशु कोरुक् पाणा।

६८. य इमं परमं गुह्यं मद्भक्तेष्वभिधास्यति ।
भक्तिं मयि परां कृत्वा मामेवैष्यत्यसंशयः ।

मिज्जेरि अत्यन्त् भक्तीन् ये होड् रहस्याक् मिग्गेले भक्तांक् कोणकी उपदेशु कर्त तो मिज्जे लग्गि पंव्त। ते कैरेक् संशयु ना।

६९. न च तस्मान्मनुष्येषु कश्चिन्मे प्रियकृत्तमः ।
भविता न च मे तस्मादन्यः प्रियतरो भुवि ।

मनुष्यांतु तज्जेपश्शि (गीतोपदेष्टावापश्शि) च्ड् मक्क स्नेहु दिंचो वेग्गेलो कोण् पुणै ना। भूमींतु तज्जे पश्शि प्रिय् जावुनु मक्क वेग्ग्ले कोण्ऽस्सुन्ना।

७०. अध्येष्यते च य इमं धर्म्यं संवादमावयोः ।
ज्ञानयज्ञेन तेनाहमिष्टः स्यामिति मे मतिः ।

धर्माक् अडिस्थान् जावुनऽसिल्लो अंगेलो यो संवादु (परस्पर् उल्लेय्लेले उत्त्र्) कोण्की सिक्क्त, तो ज्ञान यज्ञान् मक्क (अर्पण् कर्त) यजमानु जावुनु कड्त ह्मोणु त् मिग्गेलो अभिप्रायु।

७१. श्रद्धावाननसूयश्च शृणुयादपि यो नरः ।
सोऽपि मुक्तः शुभाँल्लोकान्प्राप्नुयात्पुण्यकर्मणाम् ।

केदनायि श्रद्ध अस्सिल्लोयि, असूयनत्तिल्लोयि (मिज्जेरि बल्लाव्प्ण् अठोवुनत्तिल्लोयि) जावुनु कोणकी एक्कोलो यो "गीतोपदेशु" अयिक्क्त मात्र जल्यारीयि कर्त, तोव्यि मुक्तु जावुनु पुण्य् केल्लेलेंले कूटांतु चांग् (शुभ्) लोकांक् पंव्तोलो।

७२. कच्चिदेतच्छ्रुतं पार्थ त्वयैकाग्रेण चेतसा ।
कच्चिदज्ञानसंमोहः प्रनष्टस्ते धनञ्जय ।

हे पार्था, एक्मन्नान् (समाधानान्–श्रद्धेन्) तू ये अयिक्कीने नवे? हे धनञ्जय, तुग्गेलो अज्ञानानऽस्सिल्लो मोहु निश्शेष् जावुनु गेल्लोनवे।

अर्जुन उवाच–

७३. नष्टो मोहः स्मृतिर्लब्धा त्वत्प्रसादान्मयाच्युत !
स्थितोऽस्मि गतसन्देहः करिष्ये वचनं तव ।

अर्जुनान् सङ्गीने्–

हे अच्युता, मिग्गेलो मोहु नशिं जल्लो। आत्मविषयकर् जावुनऽस्सिल्ले स्मृति मक्क मेल्लि। देवालनुग्रहान् संशयु नत्तिन्ने सुस्थिर् जावुनऽस्सिल्ले एाक् म्न्न् मक्क मेळ्ळें। देवालो उपदेशनुसरण्चि हांव् प्रवर्त्तन् कोर्त्तोनो।

सञ्जय उवाच–

७४. इत्यहं वासुदेवस्य पार्थस्य च महात्मनः ।
संवादमिममश्रौषमद्भुतं रोमहर्षणम् ।

ये वेलारि सञ्जयान् सङ्गीने– महात्मावु जावुनऽसिल्लो वासुदेवालोयि पार्थालोयि अद्भुतावह्यि रोमाञ्च् जंचोयि (तुत्तूले सब्बार् प्राथान्यस्सिल्ले) जावुनऽसिल्लो यो संवादु (संभाषण्) हांव् ये प्रकारि अयिक्कीने।

७५. व्यासप्रसादाच्छ्रुतवानेतद्गुह्यमहं परम् ।
योगं योगेश्वरात्कृष्णात्साक्षात्कथयतः स्वयम् ।

श्रीवेदव्यासाले अनुग्रहान् अत्यन्त् रहस्य् जावुनऽस्सिल्लो यो योगु योग देवु (ईश्वरु) जावुनऽस्सिल्लो श्रीकृष्णूचि स्वय् एावुनूयि अर्जुनालगि संङ्गुचे हांव् सम्कीचि ऐकीने।

७६. राजन्संस्मृत्य संस्मृत्य संवादमिममद्भुतम् ।
केशवार्जुनयोः पुण्यं हृष्यामि च मुहुर्मुहुः ।

महारय्या (धृतराष्ट्रालग्गि सञ्जयु सङ्ग्त) केशवार्जुनाले अद्भुतकर् जावुनऽस्सिल्लो यो पुण्य संवादु अठोवुनु हांव् दुस्स्रीयि दुस्स्रीयि आनन्दु फुल्लेत जत्ता (मक्क सन्तोषाचि निर्वृति जत्ता–हर्देतु सन्तोषु भर्त्ता)।

७७. तच्च संस्मृत्य संस्मृत्य रूपमत्यद्भुतं हरेः ।
विस्मयो मे महान् राजन्! हृष्यामि च पुनः पुनः ।

देवाले (श्रीकृष्णले अत्यद्भुत् जावुनऽसिल्ले ते रूप् (विश्वरूप्) अठोवुनु अठोवुनु (स्मरण् कोर्नु-स्मरण् कोर्नु) मक्क महत् (होड्) जावुनऽसिल्ले विस्मय् जनिजल्लेया (अतिशयु जनिजल्लेया)। हांव् (मक्क) तव् तव्लि सन्तोषान् आंग् फुल्लेंचे अवस्थेरि जल्लो।

७८. यत्र योगेश्वरः कृष्णो यत्र पार्थो धनुर्धरः ।
तत्र श्रीर्विजयो भूतिर्ध्रुवा नीतिर्मतिर्मम ।

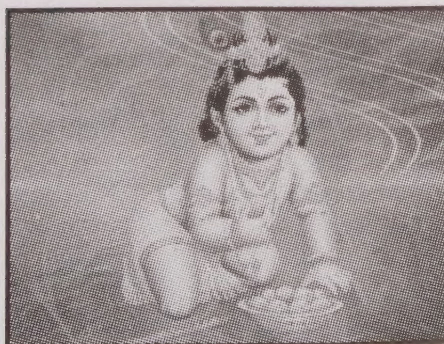
खंत्यि की योगेश्वरु जावुनऽस्सिल्लो देवु श्रीकृष्णु, खंत्यि की धनुस्स् धोव्र्ळोलो अर्जूनु, धंगाचित् ऐश्वर्ययि महालक्ष्मीयि, सर्व कैरेंतूयि विजय्यि, अक्षय् जावुनऽसिल्ले (एक्क् कालाक्यि क्षयि जावुनत्तिल्ले) नीतीयि ह्मोणु हांव् अठेय्ता (मन्नांकर्ता)।

ॐ तत्सदिति श्रीमद्भगवद्गीतासूपनिषत्सु ब्रह्मविधायां
योगशास्त्रे श्रीकृष्णार्जुन संवादे मोक्षसंन्यासयोगो
नामाष्टादशोऽध्यायः।

त्शिश, "ॐ तत् सत्" ह्मोणु– भगवद्गीतांतूले उपनिषत्तांतूले ब्रह्मविध्यांतूले, योगशस्त्रांतूले श्रीकृष्णार्जुन संवादांतूले मोक्षसंन्यास योगु ह्मोल्लोलो अध्यायु आषा (१८) समाप्त्।

हरि ॐ तत् सत् श्रीकृष्णार्पणमस्तु
ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः

*****







Vijaya Rajkumar Prabhu

(D/o. Late Sri.K.Sreenivasa Pai & Padmavathiamma,
Kallar, Pattom Colony, Idukki.)
Sreeragam, VMC VI/250A, Vainavelil Vadakkethil,
Vaikom P.O., Kottayam Dist.
Kerala. Ph: 9600541291

e of birth	:	02-02-1949.
lification	:	BA, JDC, Sanscrit Studies in Leading College, Pampady, Kottayam. KGTE Typewriting English & Malayalam Higher, Short hand English lower.
upation	:	Served as Assistant Manager in Kerala State Co-operative Agricultural & Rural Development Bank Ltd., Thiruvananthapuram. Retired from service in 2007.
erience in other activities	:	1. Submitted Essays in various subjects & broadcasted in All India Radio, Thiruvananthapuram. 2. Ist prizes for Essay Writing Competitions from - a) "Vaishnava Ratne" a G S B Magazine. b) Co-operative training Centre, Trissur. c) Bank Employees Federation, Thiruvananthapuram. d) G S B Maha Sabha, Thiruvananthapuram. e) G S B Sabha, Vaikom-Thalayolapparambu, Vaikom P.O.
ily	:	Husband : **Sri. N. Rajakumara Prabhu.** Retired from Govt. service in 1999. Playing Mridamgam.
er Daughter	:	**Priya R Pai** - Carnatic Music Vocalist. Graded artist in AIR, Thiruvananthapuram. Award Winner of Junior & Senior Scholarship for Carnatic Music from CCRT & HRD., Govt. of India. Husband : **Ramesh Pai,** working in Godrej as Finance Manager, residing at Ernakulam. Daughters : Shradha & Shreya - Students & Singers.
nger Daughter	:	**Praveena Santosh Naik.** Husband : **Santosh Naik**, both working in BOSCH, Coimbatore. Daughter : Sampratha - Student.

